दण्ड शास्त्र

लेखक—

प्रकाशनारायण सक्सेना बी० एस० सी०

चीफ़ प्रोबेशन आफ़िसर

प्रकाशक—

दी यू. पी. डिसचार्ज्ड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी

कौंसिल हाउस, लखनऊ

प्रथम वार ३००० } मार्च १९४२ { मूल्य १।)

प्रकाशक

श्री हरिश्चन्द्र, आई० सी० एस०

आनरेरी सेक्रेटरी

दी यू. पी. डिसचार्ज्ड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी,

कौंसिल हाउस, लखनऊ

मुद्रक

पं० मदनमोहन शुक्ल

साहित्य-मन्दिर प्रेस लिमिटेड, लखनऊ

भूमिका

दी यू० पी० डिसचार्ज्ड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी का एक मुख्य उद्देश्य जनता में अपराध, अपराधियों और अपराधियों की ओर समाज के कर्त्तव्य के विषय में जानकारी बढ़ाना है। क्योंकि बिना जनता की सहानुभूति और सहायता के सोसाइटी कैदियों का सुधार या उनकी सहायता नहीं कर सकती। हिंन्दुस्तानी भाषाओं में इस विषय पर पुस्तकों का बिलकुल अभाव है। इस कारण सोसाइटी ने पिछले वर्ष इस विषय पर सबसे अच्छी पुस्तक लिखने वाले को इनाम देने की घोषणा की थी। मुझे हर्ष है कि यह इनाम श्री प्रकाश नारायण सक्सेना को प्राप्त हुआ जो सोसाइटी की ओर से उस समय कानपुर में प्रोवेशन आफ़िसर का काम करते थे, और अब लखनऊ में सोसाइटी के असिस्टेन्ट सेक्रेटरी और चीफ़ प्रोबेशन आफ़िसर हैं। इस पुस्तक के पढ़ने से उपर्युक्त विषय का सरल ज्ञान सब किसी को प्राप्त हो सकेगा और उनको इससे यह भी ज्ञात हो जावेगा कि इस सोसाइटी से समाज को क्या लाभ हो सकता है। जिन लोगों का जेल या कैदियों से सम्बन्ध है उनको इस पुस्तक से विशेष लाभ होने की सम्भावना है। पहिले यह विचार था कि यह पुस्तक ऐसी भाषा में लिखी जावे कि हिन्दी और उर्दू दोनों के जानने वाले

अच्छी तरह समझ सकें। किन्तु इसमें अधिक सफलता नहीं हुई। इस कारण इसकी भाषा में कुछ परिवर्तन करना पड़ा। कहीं कहीं जहाँ कुछ अशुद्धियाँ थीं उनको भी शुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। उर्दू जानने वालों के लिये उर्दू में भी यह पुस्तक छापी जा रही है। मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक हिन्दी और उर्दू जानने वाली जनता का ध्यान अपराध और अपराधियों की ओर आकर्षित करने में सफलता प्राप्त करेगी।

कौन्सिल हाउस, लखनऊ।
१४ मार्च १९४२

हरिश्चन्द्र

प्राक्कथन

[श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव, एम० एल० ए०
सभापति यू० पी० डिस्चार्ज्ड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी]

अपराध करने का क्या कारण है ? समाज में पूर्वकाल से ही इस विषय पर मतभेद रहा है, भांति-भांति के मत उपस्थित किए गए और किये जा रहे हैं। पूर्वकाल के लोग अपराध का सम्बन्ध जादू टोने और पाप से मानते थे। हिन्दुस्तान में भी पुराने समय में अपराधी को ईश्वर का कोप-भाजन समझते थे। अभी २०० वर्ष भी नहीं हुए जब इंगलैंड में हिस्टीरिया का उपचार केवल न्यायालय ही कर सकता था। इस रोग से पीड़ित स्त्री को डायन समझा जाता था और साधारणतया उसको उतना ही कड़ा दंड दिया जाता था जितना आजकल एक हत्यारे को दिया जाता है।

ज्ञान की उन शाखाओं में जिनके द्वारा समाज के प्रति मनुष्य के व्यवहार की शिक्षा प्राप्त होती है, कदाचित् अपराध का ज्ञान ही एक ऐसी शाखा है जिसके प्रति सबसे कम ध्यान दिया गया है। सच तो यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम बीस वर्ष से ही इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है। और तब से इस ज्ञान में पर्य्याप्त उन्नति हुई है।

अब अपराधी को न तो ईश्वर का कोप भाजन समझा जाता है और न उसका सम्बन्ध जादू टोने से ही माना जाता है। विज्ञान से यह सिद्ध हो गया है कि अपराधी सामाजिक परिस्थितियों का शिकार है।

यदि समझ बूझकर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जायँ जिनसे उसके व्यक्तित्व को लाभ पहुँचे और उसकी प्रवृत्ति समाज की ओर की जा सके, तो उसे बहुत कुछ ठीक किया जा सकता है। वैज्ञानिक ढंग से देखा जाय तो अपराधी को जो दंड दिया जाता है वह दंड नहीं वरन इस बात का एक अवसर होता है कि उसके द्वारा अपराधी को फिर से समाज में ठीक तरह से रहने के योग्य बनाया जाय, जिससे समाज और अपराधी दोनों का ही लाभ हो।

नए २ प्रयोगों से जो अनुभव प्राप्त हुए हैं उनसे अपराध और अपराधी दोनों की संख्या में पर्याप्त कमी हुई है। नई खोज और पढ़ाई द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर नए नए सिद्धान्त बन गए हैं और नए नए ढंग निकाले गए हैं। परन्तु इस बात में भी हमारा देश बहुत पीछे है। हमारे यहाँ अब भी जेल में रहने वालों की संख्या बहुत बड़ी है। परन्तु हमको इससे निराश नहीं होना चाहिए और न साहस ही छोड़ना चाहिए। यह निर्विवाद सत्य है कि हमारे यहाँ जेलों में रहनेवालों की संख्या बहुत है। केवल हमारे सूबे के क़ैदियों की संख्या ही इंगलैंड से तिगुनी है। परन्तु इस बात पर विचार करते समय हमको यह भी न भूलना चाहिए कि हिन्दुस्तान और पश्चिमी देशों की अपराध परिस्थितियों में बहुत अन्तर है। हमारे देश के जेलों में बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की नहीं है जो स्वभावतः अपराध करते हैं या जान बूझकर समाज के विरुद्ध कार्य करते हैं। वरन उनमें से अधिकतर इस कारण जेल में होते हैं कि उनके पास जीवन बिताने का कोई साधन नहीं है या उन्हें इस बात का अवसर नहीं मिलता

कि वे समाज के माने हुए नियमों के अनुसार साधारण जीवन व्यतीत कर सकें। प्रायः बढ़ती हुई दरिद्रता और अविद्या ही उन्हें जेल पहुँचा देती है।

समाज के आर्थिक संगठन में आवश्यक परिवर्तन हो जाने पर और शिक्षा के ऐसे उपयोगी हो जाने पर, कि जिससे वह साधन उत्पन्न हो सकें जिनके द्वारा मनुष्य साधारण रूप में अपना जीवन बिता सके, हमारे यहाँ की जेलों में रहने वालों की संख्या में बहुत कमी हो सकती है। परन्तु फिर भी बहुत से क़ैदी रह जायँगे जिनका वैज्ञानिक ढंग पर ही उपचार करना आवश्यक होगा। यू० पी० सरकार अपनी आय का २२ प्रतिशत अर्थात् २ करोड़ ६६ लाख रुपया पुलिस, न्यायालय और जेलों पर व्यय करती है। इस कारण अपराध की जो स्थिति हमारे सूबे में है उसपर बहुत अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए और गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

यह सत्य है कि अपराध और दंड संबंधी विचारों की प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ है और पढ़े लिखे लोगों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। वे चाहते हैं कि अपराध कम हों और जेलों में अपराधियों की संख्या कम हो। परन्तु साथ ही यह मानना पड़ेगा कि इसका प्रभाव अभी बहुत कम हुआ है। अतएव अपराधों की संख्या में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है। मेरी समझ में इसका कारण स्पष्ट है। जब तक जनता आज कल के अपराधों के कारणों को भली भाँति जान और समझ न ले और जो कानूनी, सामाजिक और वैज्ञानिक कार्यवाहियाँ दूसरे देशों में समाज और अपराधी दोनों के हित में की जा रही हैं उनका उसे ज्ञान न हो जावे तब तक इस अपराध की समस्या का सुलझना कठिन जान पड़ता है।

यू० पी० डिस्चार्ज्ड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी ने श्री प्रकाशनारायण

सक्सेना की इस पुस्तक को इसलिए प्रकाशित किया है कि लोगों को इस विषय के अध्ययन में प्रोत्साहन मिले। सोसाइटी ने इस विषय पर सर्वोत्तम पुस्तक लिखने वाले को जो पारितोषक देने की घोषणा की थी वह श्री सक्सेनाजी को ही मिला था। एक समिति ने जिसके सदस्य मेरे अतिरिक्त श्री हरिश्चन्द्र आई० सी० एस० जुडिशल सेक्रेटरी यू० पी० सरकार और जेलों के इन्स्पेक्टर जनरल लेफ़्टेनेन्ट कर्नल ए० एच० शेख़ आई० एम० एस० थे, उन पुस्तकों में से जो सोसाइटी के पास आई थीं श्रीसक्सेनाजी की पुस्तक को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है।

श्री सक्सेनाजी ने इस पुस्तक में बड़े ढंग से विवरण के साथ इस बात की चेष्टा की है कि साधारण पढ़ा लिखा भी सरलता से समझ सके। मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक लोगों को इस विषय का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कराने के लिये प्रोत्साहन देगी और दूसरों को भी इस विषय पर और बड़ी पुस्तकें लिखने के लिए उत्सुक करेगी जो इसी विषय के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विशेष और विस्तार रूप से प्रकाश डाल सकेंगी। मुझे आशा है कि इस पुस्तक के पढ़ने से जनता का, जिसके ही ऊपर पुलिस जेल और न्यायालय के भारी व्यय का भार है, और ख़ास तौर पर मजिस्ट्रेट एवं जेल एवं पुलीस में काम करनेवाले लोगों का इस विषय पर ज्ञान बढ़ेगा। जब तक अपराध रोकने के आजकल के नये नियमों जैसे पैरोल, प्रोबेशन इत्यादि को न समझा जायगा और जब तक इस बात की जानकारी न प्राप्त कर ली जावेगी कि लोंब्रोसो (Lombroso) के पैदाइशी अपराधीवाले मत से किस प्रकार समाज का दृष्टिकोण उन्नति और परिवर्तन करके आजकल के दंड शास्त्रज्ञों के नगर सुधारवादी विचारों तक पहुँच गया है तब तक आगे उन्नति की आशा करना बेकार है।

मैं इस छोटे से प्राक्कथन को समाप्त करने से पहले पाठकों को

इस विषय के महान पंडित रगल्स ब्राइस के उन विद्वतापूर्ण और सत्यवादी शब्दों की स्मरण दिलाऊँगा जिनमें उन्होंने कहा है कि जब तक उन बहुत से मनुष्यों की न रुकने वाली चुप चाप गति जारी है जिनको जेल के सीखचों के भीतर ही आराम मिलता है और जिनका जेल से छुटकारा केवल वहाँ वापस लौटने के लिये ही होता है तब तक सामाजिक उन्नति की बात करना व्यर्थ और बेमाने हैं।

नज़रबाग़, लखनऊ
१९, फरवरी, १९४२ } गोपीनाथ श्रीवास्तव

विषय सूची

विषय			पृष्ठ
१. सज़ा का विकास	....	...	१
२. सज़ा के तरीक़े	....	....	१२
३. सज़ा के तरीक़े—मौत की सज़ा	...	....	१६
४. मौत की सज़ा के तरीक़े—आजकल के		....	२०
५. मौत की सज़ा—पक्ष विपक्ष की दलीलें		....	२५
६. सज़ा के तरीक़े—देश निकाला या काला पानी			२६
७. सज़ा के तरीक़े—जेलों का इतिहास शुरू से १८२४ तक			४०
८. जेलों का इतिहास १८२५ से १८६०		...	५३
९. जेलों का इतिहास १८६० से १६४०		....	६८
१०. जेल प्रबन्ध व नियम	....	....	८७
११. क़ैदियों का वर्गीकरण	....	....	६६
१२. मुजरिम बच्चे	....	...	१०६
१३. रिफ़ारमेटरी स्कूल	...	....	११८
१४. बच्चों के जुर्म करने के कारण	....	....	१२४
१५. युवा अपराधी और बोर्स्टल	....	....	१४३
१६. बालिग क़ैदी	....	...	१६५

१७. एकबारा और दीवानी क़ैदी	....	....	१७१
१८. दुबारा क़ैदी	....	....	१७७
१९. मन्द बुद्धि क़ैदी	....	....	१८४
२०. जरायम पेशा जातियाँ	....	....	१९५
२१. जेल की मशक़्क़त	....	....	२१०
२२. क़ैदियों की शारीरिक और नैतिक भलाई		....	२२९
२३. प्रोबेशन या आजमाइशी रिहाई		....	२४१
२४. पैरोल	....	....	२५४
२५. बिना मियाद की सज़ा	....	...	२६२
२६. छूटे हुए क़ैदियों की सहायता	....	....	२६६

पहिला परिच्छेद

सज़ा का विकास

आदमी सामाजिक प्राणी है। साथ साथ रहने की आदत सभ्यता के शुरू से चली आती है। क़ुदरत ने आदमी को कोमल बनाया है। आदमी के न तो दांत पैने और नुकीले हैं, न नाखून तेज़ हैं और न उसके सर पर सींग ही हैं जिनसे मौके पर वह अपनी बचत कर सके। सालों परवरिश करने के बाद आदमी का बच्चा इस काबिल हो पाता है कि वह कोई काम कर सके इन बातों को देखने से पता चलता है कि यदि आदमी में साथ रहने की आदत न होती तो वह जानवरों का राजा होने का दावा करना तो दूर रहा मामूली जंगली जानवरों और कुदरत की साधारण मुसीबतों का भी सामना न कर सकता।

यह मानी हुई बात है कि अगर आदमी साथ संघ में न रहते तो मामूली सामान भी न मुहैइया हो पाता, न मकान ही बनते, न खेती ही हो सकती, न कपड़े ही बनवा सकते और तब आदमी बिलकुल जानवरों की तरह रह सकता। लेकिन कुद-रत ने जो कमियाँ आदमी को दी थीं, उसे उसने अपने दिमाग़

से और अपने साथ साथ रहने के तरीक़े से जीत लिया। पहिले उसने जंगली जानवरों को फ़तह किया, फिर कुछ जानवरों का पालना शुरू किया, उसके बाद खेती करना शुरू किया। धीरे धीरे क़ुदरत के रहस्यों को सीखा और उन्हें अपने काम में लाया। पानी से भाफ बनाई और उस भाफ से रेल और जहाज़ को चलाया। बिजली को आदमी ने ढूंढ़ निकाला और उसे दुनियाँ के फ़ायदे के हज़ारों काम में लिया। दुनियाँ के नये नये देशों को ढूँढ़ा और उसमें जाकर बस गये। यह जितने भी कार्य थे वह तभी सफल हो सके जबकि आदमियों ने मिलकर उन्हें किया और एक आदमी के तजुर्बे से दूसरे ने फ़ायदा उठाया।

आदमियों के साथ साथ रहने से समाज बना। समाज में अमन और शांति रहना आवश्यक था। इस शांति को क़ायम रखने के लिये नियमों का बनाया जाना ज़रूरी हो गया। हर एक आदमी के अधकार या हक़ को स्थिर किया गया। समाज ने यह ज़रूरी समझा कि उसके नियमों का पालन किया जाय और समाज के रहने वाले सब आदमी और औरतों के हक़ों की हिफाज़त की जाय। जैसे जैसे सभ्यता फैलती गई और ज़्यादा आदमियों का एक दूसरे से सम्बन्ध होने लगा, समाज के नियम भी बढ़ते गये और नियमों को लागू रखने की योजना भी बनाई गई। इस प्रकार के नियमों ने क़ानून का रूप अख़्तियार कर लिया और समाज ने

इस बात की कोशिश की कि सब लोग इन क़ानूनों पर अमल करें और जो लोग इन क़ानूनों के ख़िलाफ़ आचरण करें उन्हें पकड़ा जाय और क़ानून पर न चलने की सज़ा दी जाय।

क़ानूनी नुक़्ते नज़र से यदि कोई आदमी क़ानून के ख़िलाफ़ कार्य करता है तो वह जुर्म करता है। इस परिभाषा में ग़लत-फ़हमी की गुंजाइश है। एक मनुष्य की हत्या करना भी कानून के खिलाफ़ आचरण करना है, और बायें ओर की बजाय दाहिनी ओर सड़क पर गाड़ी चलाना भी क़ानून के ख़िलाफ़ आचरण करना है। दोनों ही जुर्म हैं, एक भारी है, दूसरा हल्का। तरक़्क़ी करने वाले समाज में नये नये क़ानून बनते हैं और इसी प्रकार नये नये जुर्म बनते हैं। मानना पड़ेगा कि बिना क़ानून के जुर्म नहीं हो सकता।

१९३८ में हमारे सूबे के कुछ ज़िलों में शराबबन्दी का क़ानून बनाया गया था। उसके पहिले उन ज़िलों में लोग शराब पी सकते थे और रख सकते थे लेकिन क़ानून के बन जाने के बाद शराब का रखना व पीना जुर्म क़रार दे दिया गया। जो चीज़ १९३८ में जुर्म मानी गई वह पहिले जुर्म न थी और उन चन्द ज़िलों को छोड़ कर दूसरे ज़िलों में उस समय भी जुर्म नहीं थी। सामाजिक दृष्टिकोण से जुर्म की क़ानूनी परिभाषा में काफ़ी कमी है।

कुछ विद्वानों ने जुर्म की सामाजिक परिभाषा भी बनाने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि जुर्म वह कर्म है

जिसके बारे में उन लोगों के द्वारा जो समाज के ख़्यालातों को समाज पर लागू करते हैं, यह ख़्याल किया जाता है कि वह समाज के लिये हानिकर है और जिस कर्म के लिये उन्होंने पहिले ही से सज़ा तजवीज़ कर ली हो। इस परिभाषा में तीन चीजों पर ज़ोर दिया गया है।

(१) इस बात का ख्याल कि अमुक कार्य समाज के लिये नुक़सान देने वाला है।

(२) यह ख़्याल उन लोगों का हो जो समाज पर अपने ख़्यालात लागू कर सकते हों।

(३) और इस ख़्याल के ख़िलाफ कार्य करने पर सज़ा तजवीज़ कर चुके हों। यह बात ज़रूरी नहीं है कि यह ख़्याल सही है या ग़लत और यह ख़्याल किस तरह पैदा हुआ। ख़्याल आदमी की मनोवृत्तियों पर निर्भर हो सकते हैं और आदमी के पुराने रीति रवाज, पुरानी प्रथाओं, चोचलों और मनगढ़न्त क़िस्सों पर निर्भर हो सकते हैं। किन्तु इस प्रकार के ख़्यालात समाज के तजुर्बों का नतीजा हैं। और इन्हीं ख़्यालात के ज़रिये समाज का नियंत्रण किया जाता है, इस लिये यह परिभाषा जुर्म की सामाजिक परिभाषा भी कही जा सकती है।

किसी कार्य के बारे में यह ख़्याल कि वह समाज के लिये अहितकर है कैसे उत्पन्न हुआ इसकी खोज करना बेकार है। कुछ कार्य तो इसलिये जुर्म माने जाते हैं क्योंकि वह हमारी

ईमानदारी और दया के भावों पर चोट करते हैं। कुछ कार्य केवल इसलिये जुर्म माने जाते हैं कि जो दल समाज के ऊपर हुकूमत करता है वह उसे ग़लत या अहितकर समझता है। अधिकतर जुर्म, दुष्कर्म या बुरे काम माने जाते हैं। साधारण हालत में किसी को क़त्ल करना धर्म के ख़िलाफ़ बुरा काम है और कानून के भी ख़िलाफ़ है। लेकिन लड़ाई में क़त्ल करना या अपने बचाव में क़त्ल करना धर्म और कानून दोनों ही में ठीक माना गया है। झूठ बोलना बुरा काम है लेकिन झूठ बोलना कानून में सिर्फ़ तभी जुर्म है जब हल्फ़िया झूठा बयान देकर दरोग़हल्फ़ी की जाय। बुरे काम ज़्यादातर करने वालों ही लिये नुक़्सानदेह होते हैं, दूसरों को कम नुक़्सान पहुँचाते हैं। लेकिन कुछ धर्म विरुद्ध बुरे काम दूसरों को भी नुक़्सान पहुँचाते हैं। शराब पीनेवाले आदमी के घर के लोग भी दुख झेलते हैं। अक्सर उनके पड़ोसी भी दुख उठाते हैं। बुरे काम और जुर्म में इतना ही फ़र्क़ है कि बुरे कामों के बारे में समाज की राय सख़्त नहीं पड़ी है और उन्हें समाज अपने लिये इतना अहितकर नहीं समझती है कि उसके करनेवालों को कोई सज़ा दे बल्कि बुरे काम करनेवाले को जाति से निकालकर या समाज में उनका अपमान करके या पद से हटाकर रोकने की कोशिश करती है।

जुर्म और बुरे काम में काफ़ी रद्दोबदल होता रहा है। कुछ कार्य पहिले जुर्म थे अब केवल बुरे समझे जाते हैं। कुछ काम

पहिले सिर्फ बुरे समझे जाते थे किन्तु अब जुर्म क़रार दिये गये हैं।

पुराने ज़माने में बाप का हुक्म न मानना जुर्म समझा जाता था और इस तरह के अपराधी लड़कों का हाथ काट लिया जाता था, लेकिन आज कल के ज़माने में बाप का कहना न मानना बुरा काम ज़रूर समझा जाता है लेकिन क़ानून के ज़रिये जुर्म नहीं समझा जाता है। पिछले ज़माने में सती की प्रथा का रिवाज था आजकल सती होने की कोशिश करना या उसमें मदद देना जुर्म है।

जुर्म और धर्म में भी पहिले अधिक सम्बन्ध था। आज कल कम हो गया है। किसी समय यूरोप में धर्म के विरुद्ध कोई कार्य करना या बात कहना जुर्म था। गलैलियो को इस लिये फांसी दे दी गई क्योंकि उसने दूरबीन बनाकर कहा था कि सूरज में काले धब्बे हैं जबकि बाइबिल में लिखा था कि सूरज आग का गोला है।

समाज ने अपनी हिफ़ाज़त के लिये क़ानून बनाये हैं और क़ानून के ख़िलाफ़ कामों को जुर्म क़रार दिया गया है। जुर्मों की बहुत सी क़िस्में हैं, जुर्म संगीन है या मामूली, उनके लिये जो सज़ा तय की गई है, उनसे मालूम पड़ सकता है। राज या देश के ख़िलाफ़ बग़ावत और हत्या करने के जुर्म में फांसी की सज़ा है। चोरी करने के जुर्म में जेल की सज़ा है, सड़क पर ग़लत और मोटर चलाने पर केवल जुर्माने की

सज़ा है, इन सजाओं से पता चलता है कि कौन जुर्म मामूली और कौन संगीन है। मोटे तौर पर जुर्म इतने तरह के होते हैं।

१—जायदाद के ख़िलाफ जुर्म।

२—समाज के अमन चैन के ख़िलाफ जुर्म।

३—धर्म के ख़िलाफ जुर्म।

४—परिवार के ख़िलाफ जुर्म।

५—सदाचार के ख़िलाफ जुर्म।

६—समाज की मालियत की हिफ़ाज़त के ख़िलाफ़ जुर्म।

जुर्म करने वाले को मुजरिम कहते हैं। क़ानूनी रूप से मुजरिम वह आदमी है जिसे किसी जुर्म करने के कारण सज़ा मिले। सामाजिक रूप से मुजरिम वह है जो किसी सामाजिक रीति रस्म के ख़िलाफ काम करे। देखा यह जाता है कि कुछ लोग जुर्म नहीं भी करते हैं, किन्तु अदालत दुबारा उन्हें सज़ा देती है और कुछ लोग जो दरअसल जुर्म करते हैं, या तो पकड़े ही नहीं जाते और अगर पकड़े भी जाते हैं तो उन्हें अदालत से दुबारा सज़ा नहीं मिल पाती क्योंकि उनके जुर्म का माक़ूल सबूत अदालत के सामने नहीं पहुँच पाता। क़ानूनी रूप में वे ही मुजरिम है जिन्हें अदालत में सज़ा मिले। सामाजिक रूप से वह मुजरिम है जो समाज के क़ानून के ख़िलाफ काम करे।

जानवरों की तरह आदमी में भी चोट के ख़िलाफ़ नारा-

ज़गी ज़ाहिर करने की भावना होती है। कुत्ते की अगर पूंछ दबाई जाये तो वह काटने लगता है। आदमी में अधिक अक़्ल है। चोट के ख़िलाफ़ अपनी नाराज़गी दिखाने के उसके तरीक़े भी सुधर गये हैं और उसने जुर्मों के साथ साथ उनकी सज़ायें तथा सज़ा देने के तरह तरह के तरीक़े भी ईजाद कर लिये हैं। पुराने ज़माने में मौत, देश निकाला, अंग भंग करना और जुर्माने की सज़ा दी जाती थी। एक ही वंशज के होने के कारण आदमी एक साथ रहते थे और यही कारण था कि मुजरिम की सज़ा की सख्ती में कुछ नर्मी हो जाती थी। दूसरी ओर जहालत और डर के कारण मुजरिमों के साथ सख्ती होती थी और ऐसे जुर्मों में भी कड़ाई के साथ सज़ा दी जाती थी जिनसे समाज का ज़्यादा नुक़्सान नहीं भी हो सकता था।

पहिले ज़माने में जुर्मों के लिये सज़ायें तय नहीं थीं। जिस आदमी को नुक़्सान पहुँचता था वह अपनी ताक़त के हिसाब से नुक़्सान पहुँचाने वाले को सज़ा देता था या सज़ा देने की कोशिश करता था। वह और उसके घरवाले ही यह तय करते थे कि नुकसान पहुँचानेवाले को कितनी और क्या सज़ा दी जाय। इन सज़ाओं में बदला लेने ही का मक़सद था। खुद बदला लेने का रवाज आज कल के समाज में ग़ैर क़ानूनी करार दिया गया है। लेकिन पहिले ज़माने के इतिहास में हज़ारों मिसालें मिलती हैं, जब जुर्म करनेवाले को वही

आदमी या उसके खानदान वाले सज़ा देते थे, जिसे नुक़सान पहुँचाया जाता था। अब भी यह रिवाज बहुत सी अर्द्ध सभ्य जातियों में जारी है और बदला लेने का अख़्तयार एक जाति को दूसरी जाति के ख़िलाफ़ है अगर उस जाति के किसी आदमी को दूसरी जाति के किसी भी आदमी से नुकसान पहुँचे।

ख़ुद बदला लेने के तरीके में बहुत से नुक़सान फ़ौरन ही नज़र आने लगे। पहिली बात तो यह थी कि ग़रीब और कमज़ोर आदमी, अमीर और ताक़तवर आदमी से बदला नहीं ले पाते थे चाहे उन्हें नुक़सान क्यों न पहुँचाया गया हो। दूसरी बात यह थी कि एक झगड़े का कभी निपटारा नहीं हो पाता था और दो खानदानों में एक झगड़े के कारण पुश्तों तक लड़ाई चलती रहती थी जिससे समाज के अन्दर कमज़ोरी आती थी। तीसरे एक ही तरह के क़सूर के लिये तरह तरह की सज़ायें बदला लेने वालों के द्वारा दी जाती थीं। इन दिक़्क़तों को आदमियों ने अपने तजुर्बे से सीखा और इस तरह के तरीक़े निकाले जिनसे इन ख़ूनी कार्यवाहियों की रोक थाम हो सके।

पहिला तरीक़ा यह था कि अगर किसी आदमी से कोई जुर्म हो जाय और वे लोग जिनका नुक़सान हुआ हो उससे बदला लेना चाहें तो मुजरिम किसी भी पाक जगह में अपने को छिपा सकता था और वहाँ रह कर उसे यह अख़्तियार

था कि वह अपनी सफ़ाई दे कि जो जुर्म उसने किया है वह इत्तिफ़ाक़िया हो गया है, और जब तक इस बात का फ़ैसला न हो जाय तब तक उस आदमी को उस पाक जगह में रहने की इजाज़त रहती थी और बदला लेनेवाले उसको वहाँ सज़ा नहीं दे सकते थे।

दूसरा तरीका यह था कि वह आदमी जिसे नुक़सान पहुँचाया गया हो या उसके घरवाले, मुजरिम या उसके घर वालों से किसी भी जुर्म के बारे में आपसी समझौता कर सकते थे। हर तरह के जुर्मों के बारे में माक़ूल समझौता हो सकता था। अगर किसी का क़त्ल हो जाता तो भी मुजरिम या उसके घरवाले मरने वाले के रिश्तेदारों को रुपया इत्यादि हर्जाना देकर राज़ी कर लेते थे।

यूरोप में १०वीं व ११वीं शताब्दियों में अराजकता फैली हुई थी। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली मसल के मुताबिक़ लोग काम कर रहे थे। आये दिन झगड़े होते थे। उन दिनों गिरजाघरों के अधिकारियों ने यह कोशिश की कि इस अराजकता की रोक थाम करें। उन्होंने हुक्म दिया कि नवाब लोग ग़रीब प्रजा को न सतायें और किसानों को न लूटें। लड़ाई के लिये निश्चय किया गया कि सिर्फ़ दिन ही दिन में हुआ करे। फिर इस बात को उन्होंने बढ़ाया और शनीचर की दोपहर से सोमवार तक कोई लड़ाई करने की मनाही कर दी। फिर कुछ दिनों बाद पादरियों ने लड़ाई की रोक थाम का वक़्त

बुधवार की शाम से सोमवार तक बढ़ा दिया। गिरजाघरों की इन मुनादियों ने समाज में फ़साद पैदा करने वाले लोगों की कारगुज़ारियों को काफ़ी रोका।

जब समाज में हुकूमत करने वालों की ताक़त बढ़ी तो उन्होंने समाज के अन्दर फ़साद करने वाले लोगों को क़ाबू में लाने की कोशिश की और जुर्म की समस्या को हल करने के लिये अदालतें, पुलिस, जेल वग़ैरह को ईजाद किया। राजाओं ने बहुत मेहनत करके जुर्म करने वालों को माक़ूल सज़ा देने के तरीक़े निकाले। फिर भी अक्सर झगड़े खड़े हो जाते और लोग राजा के हुक्म और तरीकों को न मान कर मुजरिम को खुद सज़ा देने की कोशिश करते। धीरे धीरे मुजरिम को सज़ा देने का हक़ मज़हबी और व्यक्तिगत हाथों से राजसत्ता के हाथों में प्राप्त हो गया।

दूसरा परिच्छेद

सज़ा के तरीक़े

सज़ा के तरीक़ों में लगातार तबदीली होती आई है। पुराने ज़माने से सज़ा में बदला लेने की भावना ही ख़ास बात थी। क़त्ल की सज़ा आमतौर पर मौत ही होती थी और यह सज़ा उसी से दिलवाई जाती थी जिसका रिश्तेदार क़त्ल होता था। हाथ पैर की चोट की सज़ा अपराधी के हाथ पैर काटकर दी जाती थी। अगर मुजरिम नहीं मिलता था तो यह सज़ा उसके एवज़ में उसके किसी रिश्तेदार को भुगतनी पड़ती थी।

समाज में फिर इस भावना ने ज़ोर पकड़ा कि जुर्म एक छूत की बीमारी है और अगर मुजरिम को समाज से अलग नहीं किया गया तो वह छूत सारे समाज में फैलकर उसे ख़राब कर देगी। जिस तरह छूत की बीमारी से पीड़ित बीमार को अलग कर दिया जाता है, जिस तरह इन्सान के बदन से सड़ा गला अंग काट कर फेंक दिया जाता है ताकि समाज के अन्य लोग, या बदन का बाक़ी हिस्सा, तन्दुरुस्त रह सके, वही गति

और वही इलाज मुजरिम के साथ बर्ता जाने लगा। उस काल में ज़्यादातर मुजरिमों को मौत ही की सज़ा नसीब होती थी चाहे उनका जुर्म कम या ज़्यादा संगीन हो। इसी रिवाज के अनुसार यूरोप में जादू टोना करने वाली स्त्रियों को फांसी की सज़ा दी जाने लगी।

देश निकाले की भी प्रथा बहुत पुरानी है। जिन मुजरिमों को मौत की सजा किसी वजह से नहीं दी जा सकती थी, वह समाज या राज्य से निकाल दिये जाते थे। यह समझा जाता था कि अगर मुजरिम समाज में रहेगा तो समाज का नुक़्सान तो करेगा ही और इसके अलावा औरों को समाज के विरुद्ध चलने के लिये उकसायेगा, इसलिये उसकी माक़ूल सज़ा मौत है किन्तु किसी वजह से उसके ऊपर अगर रहम दिखाया जाय, या अन्य किसी कारण से मौत की सज़ा न दी जा सके तो यही हो सकता था कि उसे देश से निकाल दिया जाय। देश निकाले में भी तकलीफ़ कम न होती थी क्योंकि मुजरिम को अपनी जायदाद और सम्बन्धियों को छोड़ कर जाना पड़ता था और दूसरे देश में विदेशियों की तरह बसना पड़ता था जो कि दुश्मन ही माने जाते थे।

किसी समय में मामूली जुर्मों की सज़ायें भी बहुत ही सख़्त होती थीं और तुरन्त ही दे दी जाती थीं। चोरों के हाथ काट दिये जाते थे। झूठी गवाही देनेवालों की जीभ काट दी जाती थी या सूजा भोंक दिया जाता था। बलात्कार करने वाले को

नपुंसक बना दिया जाता था। गाँव में गाली बकनेवाले के मुँह पर पट्टा बंधवा दिया जाता था, नाक या कान या ओंठ कटवा लेना एक मामूली सज़ा समझी जाती थी। इन सज़ाओं का मतलब यह था कि मुजरिम हमेशा पहिचाना जा सके और उसे अपने कुकृत्यों और अपनी सज़ा का हमेशा ध्यान रहे। और दूसरे लोग उसे देखकर अपराध करने से डरें। गरम लोहे से दाग़ने की सज़ा भी उन दिनों चालू थी। चोरों के माथे या बाहों पर दाग़ बनाया जाता था।

इस प्रकार की सज़ाओं के पीछे जो ख़्यालात थे वह उन दिनों के रीति रिवाज के ही बमूजिब थे। जादू टोने का उन दिनों रिवाज था। यह यक़ीन किया जाता था कि अगर किसी आदमी की मूर्ति बना ली जाय और उसके ऊपर मंत्रों वगैरह से जाप किया जाय तो उसका असर असली आदमी पर पड़ेगा। इस तरह यह भी यक़ीन किया जाता था कि अगर किसी आदमी को उसी तरह की सज़ा दी जाय जिस तरह का जुर्म या क़सूर उसने किया हो तो मुजरिम की क़सूर करने की आदत बदल जायगी। इस तरह की सज़ा का दिया जाना तब बंद हुआ जब लोगों के इस तरह के विचार में तबदीली हुई और यह मालूम हुआ कि जिस काम की इन सज़ाओं के ज़रिये होने की आशा की जाती थी वह नहीं हुआ। और बाद को यह भी पता चला कि जिस आदमी को इस तरह की सज़ा दी जाती थी वह अपने मन में समाज की तरफ़ एक

बेइन्साफ़ी का भाव रखता था और उस वजह से समाज से बदला लेने की कोशिश करके और दूसरे जुर्म करता था।

पुराने ज़माने में जब झाड़ा फूंकी, जादू टोना, मंत्रों और जाप में लोगों का यक़ीन ज़्यादा था तो यह चीज़ें भी मुजरिम को सज़ा देने में इस्तेमाल की जाती थीं। आमतौर से इन चीजों का इस्तेमाल तब किया जाता था जब मुजरिम अमीर या ताक़तवर होता था और फ़रियादी के पास न इतना धन होता था न इतनी ताक़त या जुर्रत होती थी कि उसे खुल्लमखुल्ला सज़ा दिलवा सके।

मुजरिम की आम लोगों के सामने बेइज़्ज़ती करना भी सज़ा का एक पुराना तरीक़ा था। मुजरिम का मुँह काला करके उसे गधे पर सवार करके गाँव या शहर में घुमाना, गले में जूतों की माला डालना, दूसरों के जूतों को सर पर लदवाना वग़ैरह तरह तरह की सज़ायें दी जाती थीं। इस तरह की सज़ायें अब क़ानूनन जायज़ नही हैं, फिर भी कहीं-कहीं समाज में बिरादरी या पंचायतों के ज़रिये कुछ अंशों में जारी है।

तीसरा परिच्छेद

सज़ा के तरीक़े

मौत की सज़ा

मौत की सज़ा सबसे पुरानी सज़ा है। इन्सान के इतिहास में शुरू ही से मौत की सज़ा का ज़िक्र मिलता है। इसका बताना मुश्किल है कि सबसे पहले मौत की सज़ा कहां से शुरू हुई या सबसे पहिले यह सज़ा किसे दीगई। मौत की सज़ा के पीछे बदला लेने की भावना छिपी हुई है। जिस आदमी का नुक़सान होता था तो वह मुजरिम से बदला लेना चाहता था। बदला लेने का सबसे आसान तरीक़ा मौत की सज़ा समझी जाती थी क्योंकि अगर मुजरिम को कुछ कम सज़ा देकर छोड़ दिया जाय तो उसकी तरफ़ से अन्देशा रहता था कि वह कहीं दुबारा बदला न ले ले।

मौत की सज़ा देने के भी बहुत से तरीक़े थे और आज भी दुनियाँ के बहुत से हिस्सों में मुख़्तलिफ़ तरीक़े जारी हैं। नीचे लिखे तरीक़ों से पुराने ज़माने में मौत की सज़ा दी जाती थी।

१. मारपीट कर—मुजरिम को मारपीट कर बेदम कर

कर दिया जाता, उसका सर लाठी या गदा से कुचल दिया जाता था और पीटना तब तक जारी रक्खा जाता था जब-तक मुजरिम की मौत न हो जाय।

२. सर काटकर—तलवार से मुजरिम का सर धड़ से अलग कर दिया जाता था। सर काटने के भी कई तरीके थे। मुजरिम को खड़ा कर दिया जाता था और तलवार से सर काटते थे या मुजरिम को ज़मीन पर लिटा दिया जाता था और कुल्हाड़ी या फर्से से सर काट दिया जाता था।

३. जला देना—मुजरिम को बाँधकर लकड़ी की चिता पर लिटा दिया जाता था और फिर चिता में आग लगा दी जाती थी। फ्रांस की देवी जोन और नाना साहब की लड़की मैना को इसी तरह की सज़ा दी गई थी।

४. काटना—कुछ मुल्कों में मुजरिम के हाथ-पैर और बदन के टुकड़े टुकड़े करवा कर मौत की सजा देने का रिवाज था।

५. लटकाना—मुजरिम के हाथ पैर कीलों के ज़रिये एक लकड़ी की टिकटी पर गाड़ दिये जाते और आदमी को मरने के लिये छोड़ दिया जाता था। हज़रत ईसामसीह साहब को इसी प्रकार सूली पर लटकाया गया था।

६. पानी में डुबोकर—पानी में डुबोकर मौत की सज़ा भी इटली में जारी थी। आमतौर पर इस तरह की सज़ा स्त्रियों को दी जाती थी।

७. जंगली जानवरों से—मुजरिम को भूखे जंगली जान-

वर शेर या चीते के कटहरे में डाल दिया जाता था और वह जानवर मुजरिम को खाजाता, इस तरह की सजा नीरो बादशाह के ज़माने में ईसाइयों को दी जाती थी।

८. खाल खिंचवा कर—मुजरिम के जीतेजी खाल खिंचवा ली जाती थी और उसे तकलीफ़ से मरने के लिये छोड़ दिया जाता था।

९. फाँसी देकर—मुजरिम के गले में रस्सी बाँधकर लटका दिया जाता था। उसकी गर्दन फँस जाती थी और साँस न लेने के कारण मौत हो जाती थी।

१०. सूली देना—मुजरिम को एक लोहे के पैने खम्भे पर जो नीचे की ओर मोटा और ऊपर की ओर पतला होता चला जाता था यहाँ तक कि बिलकुल सिरे पर एक तेज़ नोक रह जाती थी, बैठा दिया जाता था और वह अपने वज़न से नीचे धसकने लगता था। लोहे की नोक से उसका शरीर चिरता चला जाता था और आख़िर में उसकी मौत हो जाती थी। महात्मा मन्सूर को इसी प्रकार की सज़ा दी गई थी।

११. पहाड़ से पटकना—ऊँची चट्टानों या पहाड़ से पटक कर भी मौत की सज़ा दी जाती थी। कहा जाता है ईसप को जिसने बच्चों के लिये बहुत नसीहतदार कहानियाँ लिखी हैं, इसी प्रकार सज़ा दी गई थी।

१२. पत्थर मारकर—यहूदियों में यह रिवाज था कि क़ैदियों को पत्थर मारकर या बड़े बड़े पत्थरों से कुचल कर

सज़ा दी जाती थी। दूसरे की पत्नी के साथ व्यभिचार करने, ईश्वर के ख़िलाफ़ प्रचार करने, मूर्ति पूजा करने, माँ-बाप की बेइज्ज़ती करने वग़ैरह के क़सूर में यह सजा दी जाती थी।

१३. ज़हर देकर—ज़हर खिलाकर भी मौत की सजा दी जाती थी। ग्रीस में महात्मा सुकरात को इसी प्रकार से सज़ा दीगई थी।

१४. गला घोटकर—मौत की सज़ा देने के लिये मुजरिम का इस तरह गला घोट दिया जाता था जिससे उसकी साँस रुक जाती थी और दम घुटने के कारण मौत हो जाती थी।

१५. गोली मारकर—बारूद की ईजाद के बाद बंदूक की गोली के ज़रिये मारकर कुछ मुल्कों में मौत की सज़ा देने का रिवाज था। मुजरिम को खड़ा कर दिया जाता था और उसके सर पर या छाती पर गोली मार दी जाती थी।

चौथा परिच्छेद

मौत की सज़ा के तरीक़े

आजकल के

आजकल भी मौत की सज़ा जारी है। थोड़े से मुल्कों में मौत की सज़ा बिलकुल बंद करदी गई है। मौत की सज़ा के पुराने और आजकल के तरीक़ों में फ़र्क़ हो गया है। पिछले ज़माने में मुजरिम को मरने के वक़्त जिस तरह सबसे ज़्यादा तकलीफ़ हो, उसी तरह मौत की सज़ा दी जाती थी। दूसरे मुजरिम को बेइज़्ज़त भी किया जाता था। तीसरे मौत की सज़ा सब लोगों के सामने दी जाती थी ताकि दूसरों पर डर ग़ालिब हो जाय और अक्सर मुजरिम का सर चौराहों पर टांग दिया जाता था। आजकल यह कोशिश की जाती है कि मुजरिम को मरते समय जितनी कम तकलीफ़ हो सके उतनी ही उसे दी जाय। सब लोगों के सामने फांसी देने का रिवाज बिलकुल उठ ही सा गया है, और फांसी के समय बिना-ख़ास इजाज़त के कोई मौजूद भी नहीं रह सकता है। इसका भी ख़्याल रक्खा जाता है कि फांसी के पहले मुजरिम को किसी

भी बात की तकलीफ़ न हो और बाद को उसकी लाश बेइज़्ज़त न की जाय।

आजकल मौत की सज़ा के जो तरीक़े दुनियाँ में काम में लाये जा रहे हैं, वे इस प्रकार हैं।

फांसी—फांसी का तरीक़ा आम तौर पर मुल्कों में जारी है। इङ्गलैंड और हिन्दुस्तान दोनों ही में यह तरीक़ा बर्ता जाता है। फांसी पहिले लोगों के सामने चौक में दी जाती थी और मुजरिम का सर और बदन कई दिनों तक लटके रहते थे ताकि दूसरों को इससे नसीहत मिले। आजकल फांसी छिपी हुई जगह में दी जाती है। चारों ओर ऊंची दिवालों से घिरा आंगन होता है। उसके बीच में कुए की तरह गहरी एक कोठरी बनाई जाती है। कोठरी का मुँह लकड़ी के दो किवाड़ों से ढका रहता है। लकड़ी के किवाड़ों में नीचे कब्ज़े लगे रहते हैं जिनसे किवाड़ सधे रहते हैं। एक ओर एक लीवर लगा रहता है जिसको खींचने से कब्ज़े अलग हो जाते हैं और लकड़ी के दोनों किवाड़ खुलकर नीचे गिर पड़ते हैं। जिस आदमी को फांसी दी जाती है उसे इसी लकड़ी के किवाड़ों पर खड़ा कर दिया जाता है। उसके हाथ पैर रस्सी से बांध दिये जाते हैं। उसके सरपर एक कनटोप पहिना दिया जाता है ताकि वह कुछ देख न सके। उसके गले में एक सरकनी रस्सी बांध दी जाती है जिसमें एक पीतल का छल्ला पड़ा रहता है। रस्सी का दूसरा सिरा लोहे के एक कुंडे से

गुज़रता है और उसके सिरे पर एक मोटी गांठ होती है जो कुंडे के भीतर से नहीं गुज़र सकती। लोहे का कुंडा लकड़ी के किवाड़ों के ऊपर एक लोहे की पटरी में लगा रहता है जो दो सीधी लोहे की रेलों पर सधा होता है। लिवर हटाते ही किवाड़ खुल पड़ते हैं उनपर खड़ा हुआ मुजरिम ज़ोरों से नीचे गिरता है, रस्सी थोड़ी नीचे खिसकने के बाद गांठ के स्थान पर लोहे के कुंडे में अटक जाती है, इससे गिरने वाला आदमी झटका खाकर केवल रस्सी के बल लटक जाता है। झटके के कारण गर्दन के पास पीछे की ओर रीढ़ की हड्डी पीतल के छल्ले से धक्का खाकर टूट जाती है, और आदमी की फ़ौरन मृत्यु हो जाती है। लाश आध घंटे तक लटकाई जाती है और फिर फांसी पाये हुए आदमी के रिश्तेदारों को आख़िरी कार्य के लिये दे दी जाती है। आदमी के वज़न के हिसाब से रस्सी की लम्बाई रक्खी जाती है, जितना भारी आदमी होता है उतनी ही छोटी रस्सी काम में लाई जाती है

फांसी की सज़ा देने में दो दिक़्क़तें पेश आती हैं, एक तो रस्सी के टूट जाने का अंदेशा रहता है, वैसी हालत में आदमी को दुबारा लटकाना पड़ता है। लेकिन आजकल फांसी देने के पहिले, आदमी के वज़न के बराबर का बोझा उस रस्सी से लटका कर देख लिया जाता है कि रस्सी मज़बूत है या नहीं। दूसरी दिक़्क़त यह होती है कि यदि झटका हल्का लगा और रीढ़ की हड्डी न टूटी तो आदमी की मौत दम घुटकर होती

है और इसमें देर भी लगती है और मरने वाले को तकलीफ भी अधिक होती है।

अमेरिका की बहुत सी रियासतों में अब मौत की सज़ा फांसी के ज़रिये नहीं दी जाती। बिजली के प्रचार होने की वजह से, मौत की सज़ा बिजली के ज़रिये दीजाने लगी है। मुजरिम को एक लोहे की कुर्सी पर हाथ पैर और पीठ बांध कर बैठा दिया जाता है। कुर्सी के एक पाये से बिजली का एक तार जमीन में गाड़ दिया जाता है। मुजरिम के सर के बाल घुटवा दिये जाते है और उसके सर के ऊपर एक लोहे की टोपी रख दी जाती है, एक बटन दबाने पर उस लोहे की टोपी के ज़रिये बहुत ज़बरदस्त बिजली की धारा आदमी के बदन से गुज़रती है और उसकी उसी वक्त मौत हो जाती है

अमेरिका की कुछ रियासतों में ज़हरीली हवा के ज़रिये मौत की सज़ा दी जाने लगी है। मुजरिम के हाथ पैर बांध कर उसे एक छोटी कोठरी में बंद कर देते हैं। और उस कोठरी में हाईड्रोसाइनिक एसिड गैस छोड़ दी जाती है। मुजरिम अपनी सांस के साथ उस ज़हरीली गैस को भी अन्दर ले जाता है और उसी वक्त उसकी मौत हो जाती है।

फ्रांस में सिर काट कर अभी तक मौत की सज़ा दी जाती है। इस तरीके को गिलेटीन कहते हैं और फ्रांस की राज्य क्रांति के वक्त डाक्टर गिलेटोन साहब ने इसको ईजाद किया था। मुजरिम को खड़ा कर दिया जाता है और उसकी गर्दन एक

लकड़ी के तख्ते पर झुका दी जाती है। गर्दन के ऊपर एक बड़ा लोहे का तेज़ फरसा जोरों से गिरता है जो बात की बात में गर्दन को सिर से अलग कर देता है। डाक्टर साहब ने यह तरीका इसलिये ईजाद किया था कि मुजरिमों को मरते वक्त कम तकलीफ़ हुआ करे लेकिन उनके देश वासियों ने उन्हें उसी तरीक़े से ख़ुद सज़ा देकर उनकी इस ईजाद का इनाम दिया।

जर्मनी और रूस में फांसी की सज़ा गोली मार कर दी जाती है।

पांचवां परिच्छेद

मौत की सज़ा

पक्ष विपक्ष की दलीलें

मौत की सज़ा के तरीके में बहुत तबदीली हो गई है। सभी मुल्कों ने इस बात की कोशिश की है, कि मौत का तरीक़ा जितना कम तकलीफदेह हो सके बनाया जाय, मुजरिम और उसकी लाश को बेइज़्ज़ती से बचाया जाय और मौत की सज़ा एक पोशीदा जगह पर दी जाय। साथ ही साथ यह भी सुधार किया गया है कि केवल बहुत ही संगीन जुर्म में ही मौत की सज़ा दी जाया करे। मामूली समय में मौत की सज़ा, क़त्ल के जुर्म या राज्य के ख़िलाफ लड़ाई ठानने के जुर्म में ही दी जाती है। बहुत से मुल्कों ने मौत की सज़ा को बिलकुल बन्द ही कर दिया है।

आज कल के विद्वानों में अभी तक तसफिया नहीं हो सका है कि मौत की सज़ा क़ायम रक्खी जाय या बंद कर दी जाय। दोनों ओर से माक़ूल दलीलें दी जा रही हैं। जो

लोग इस तरफ़ हैं कि मौत की सज़ा जारी रहे उनका कहना है कि मौत की सज़ा ही एक ऐसा तरीक़ा है जिसके ज़रिये समाज ऐसे आदमियों से अपना पिंड छुड़ा सकता है जो समाज के दुश्मन हैं और जिनके सुधरने की बिलकुल आशा नहीं है। मौत ही की सज़ा सबसे भयावनी सज़ा है और इसी का उन लोगों के दिलों पर असर पड़ता है जो जुर्म करने की इच्छा रखते हैं। जो लोग समाज के दुश्मन हैं उनके खिलाने पिलाने और क़ैद में रखने का खर्च समाज पर डालना अनुचित है। मौत की सज़ा ही एक तरीका है जिसके ज़रिये उन लोगों की तादाद कम की जा सकती है जो लोग आदमी की जान की क़द्र नहीं करते हैं, और जिनका अधिक ज़िन्दा रहना उस प्रकार के आदमियों की तादाद को बढ़ाता है। यह किसी भी प्रकार साबित नहीं होता कि मौत की सज़ा जुर्मों को बढ़ाती है और लोगों को संगदिल करती है।

जो लोग इस पक्ष के हैं कि मौत की सज़ा बंद कर दी जाय, उनका कहना है कि मौत की सज़ा दे देने के बाद फिर कोई चारा नहीं है। अक्सर जजों से भूल हो जाती है और बेगुनाहों को फांसी की सज़ा हो जाती है। फांसी लग जाने के बाद फिर कुछ नहीं किया जा सकता और बेगुनाहों को कोई मुआविज़ा नहीं दिया जा सकता। फांसी की सज़ा में बदला लेने की भावना है। जान के बदले जान लेने का भाव है। तजुर्बे ने यह सिखाया है कि सज़ा में अगर बदले की

भावना को तरजीह दी जायेगी तो समाज की ठीक हिफ़ाज़त न हो सकेगी। फांसी की सज़ा के ज़रिये मुजरिम का कुछ भी सुधार नहीं हो सकता क्योंकि जब आदमी ही न रहेगा तो फिर सुधार किसका किया जायगा। यह कहना कि जिसे मौत की सज़ा दी जाती है वह आदमी सुधर ही नहीं सकता, नहीं मानी जा सकती। मौत की सज़ा भय भी नहीं पैदा करती इसका सबूत यही है कि मौत की सज़ा जिन मुल्कों में मौजूद है वहाँ क़त्ल की तादाद नहीं कम हो रही है। अगर मौत की सज़ा से दूसरों के दिलों में डर पैदा होता है तो फिर क़त्ल की तादाद कम होनी चाहिये। यह भी देखा गया है कि जुर्म साबित होने पर भी जज या जूरी मुजरिम को बरी कर देते हैं, अगर वह यह देखते हैं कि जुर्म सावित होने पर मुजरिम को मौत की सज़ा दी जायगी। मौत की सज़ा, हत्या करने का एक भद्दा तरीक़ा है, और वह उन लोगों के दिल के भावों को जो उसमें भाग लेते है वहशियाना बना देती है। उन लोगों का यह भी कहना है कि जब आदमी में इतनी ताकत नहीं है कि वह किसी में जान डाल सके तो उसे किसी की जान लेना ही न चाहिये।

इस बात का सबूत मौजूद है कि कुछ लोग स्वभाव ही से समाज के दुश्मन होते हैं। उन्हें चाहे जितना सुधारने की कोशिश की जाय उन पर कुछ असर नहीं होता। इसलिये अगर मौत की सज़ा जारी ही रक्खी जाय तो सिर्फ़ उन्हीं

लोगों के लिये रहे, जिनकी शारीरिक और मानसिक दशा और उनके पुराने चाल चलन और रवैये को देखकर यह साफ़ पता चल गया हो कि इन लोगों का सुधरना बिलकुल नामुमकिन है और जो जेल में भी रह कर न सुधर सके हों। यह बात ज़रूर सही है कि आज कल हमारा ज्ञान इतना अधिक नहीं है कि यह बात ज़ोर से कही जा सके कि एक आदमी अब संम्हलेगा या नहीं। लेकिन फिर भी इस प्रकार के छूटे हुए मुजरिमों को यदि मौत की सज़ा दे दी जाय तो समाज को अधिक हिफ़ाज़त होगी बनिस्बत इसके कि उन्हें सार्वजनिक खर्चे पर खिलाया पिलाया जावे और इस बात का जोखम उठाया जाय कि अपनी मीयाद काट कर या भाग कर क़ैदी जेल के बाहर आये और समाज से बदला ले। यह भी याद रखना चाहिये कि जिन लोगों का दिमाग़ कमजोर है या जो पागल हैं या जिन्हें किसी प्रकार की दिमाग़ी बीमारी है, उन लोगों को अलग कर लिया जाये और उचित संस्थाओं में उनका इलाज कराया जाय तो मुजरिमों की संख्या बहुत घट जायगी और मौत की सज़ा केवल उन मुजरिमों ही को दी जा सकेगी जो पक्के मुजरिम होंगे, जो न बाहर न जेल के अन्दर रक्खे जा सकेंगे और जिनका दिमाग़ दुरुस्त होगा।

छठा परिच्छेद

सज़ा के तरीक़े

देश निकाला या कालापानी

देश निकाले की सज़ा बहुत पुरानी है। राजा दशरथ ने रामचन्द्रजी को १४ वर्ष के लिये बनवास की सज़ा दी थी जो एक प्रकार से देश निकाला ही था। पांडव लोगों को भी १२ वर्ष के लिये, जुए में हारने के बाद जंगलों में रहना पड़ा था। पुराने ज़माने की बहुत सी कहानियों में इस सज़ा का ज़िक्र आया है। यूनान और रोम में भी इस तरह की सज़ायें दी जाती थी। ज़्यादातर राजनैतिक क़ैदियों को ही इस तरह की सज़ाएँ दी जाती थीं। मौजूदा ज़माने में देश निकाले की सज़ा इङ्गलैण्ड ही से शुरू हुई।

सोलहवीं या सत्तरहवीं सदी में इङ्गलैंड के आर्थिक और सामाजिक ज़िंदगी में बहुत सी तबदिलीयां हो गई थीं। तिजारत बढ़ी और कारख़ानों का बनना शुरू हो गया था। गाँव उजड़ कर शहर बस रहे थे। पुराने ज़माने का देहाती

रहन सहन ख़त्म हो रहा था और शहरातू ज़िंदगी शुरू हो रही थी। देहाती किसान शहर में बस तो रहे थे लेकिन उनमें ग़रीबी बहुत थी जिसकी वजह से जुर्म भी बढ़ रहे थे। दूसरे मुल्कों से तिजारत और खेती का काम बढ़ने से मुल्क की आबादी बढ़ गई थी। मज़हब की ओर से जो पाबंदियाँ लगी थीं वह भी ढीली पड़ने लगी थीं। कैदियों के रहने के लिये जगह सब भर गई थीं। जो सज़ायें उन दिनों दी जाती थीं उनसे जुर्म घटने के बजाय बढ़ ही रहा था। उन्हीं दिनों अमेरिका को ढूंढ लिया गया था। वहाँ के जंगलों को साफ़ करना था। इस काम के लिये आदमियों की ज़रूरत थी। एक ही ढेले से दो चिड़ियाँ मारने की कोशिश की गई, एक ओर तो इस तरह के मुजरिमों को इङ्गलैण्ड के बाहर कर दिया गया, दूसरी ओर इन लोगों को अमेरिका भेज कर काम लिया जाने लगा। इङ्गलैण्ड के मेगना कारटा में बयान किया गया था, कि कोई भी आज़ाद अंग्रेज़ देश से बाहर न निकाला जाय। लेकिन इस क़ानून के खिलाफ कई तरह से काम किया जाने लगा। जिन लोगों को मोत की सज़ा का हुक्म होता था उनसे कहा जाता था कि वे अगर अमेरिका जाकर बसना चाहें तो उन्हें माफ़ी दी जा सकती है। सन् १६१६ में पहले पहल कुछ क़ैदी अमेरिका भेजे गये। महारानी एलिज़ाबेथ के ज़माने में आवारागर्दी के क़ानून के मुताविक़ कुछ लोग देश से निकाल कर अमेरिका भेजे गये।

दूसरे चार्ल्स के ज़माने में क़ैदियों को अमेरिका भेजे जाने के लिये बाज़ाबता क़ानून बनाया गया। इस क़ानून में भी मौत की सज़ा पाये हुए क़ैदियों को यह हक़ दिया गया था कि मौत की सज़ा और देश निकाले में जो सज़ा वह पसन्द करना चाहें करलें। पहिले जार्ज के ज़माने में १७१८ में इस क़ानून में कुछ तरमीम की गई। और इसके ज़रिये तीन साल से ज़्यादा देश निकाले की सज़ा पाये हुए, अमेरिका में फ़ार्मों पर काम करने के लिये भेजे जाने लगे। शुरू शुरू में क़ैदियों को अमेरिका पहुँचाने के लिये ठेका दे दिया जाता था और यह ठेकेदार लोग इन क़ैदियों को सात साल से चौदह साल तक खेतों पर रखा देते थे और उनकी तनख़्वाह ख़ुद ले लेते थे। १७६७ में जब जेलों में अमेरिका भेजे जाने वालों की तादाद बहुत बढ़ गई और जेलें उन क़ैदियों से खचाखच भर गईं तौ इन क़ैदियों को सरकारी ख़र्च पर अमेरिका भेजने के लिये एक क़ानून पास किया गया। फिर भी अमेरिका में सस्ते मज़दूरों की इतनी अधिक माँग जारी रही कि वहाँ लोग ज़बरदस्ती भगा भगा कर भेजे जाते थे। अमेरिका में क़ैदियों का भेजा जाना लगातार जारी रहा। १७६७ में जब अमेरिका में राज्य क्रान्ति हुई और अमेरिका इङ्गलैंड से स्वतंत्र हो गया तब अमेरिका में क़ैदियों का जाना बंद हुआ।

जब अमेरिका को क़ैदियों का जाना बंद हुआ तौ फिर यह सवाल उठा कि क़ैदी कहाँ भेजे जायँ। जेलों में उनको

रखने की जगह न थी इसलिये उन क़ैदियों को टूटे जहाज़ों में रक्खा जाने लगा जो हल्क्स कहलाते थे। यह जहाज़ समुद्र के किनारे किनारे चक्कर लगाते थे और क़ैदी लोग किनारे पर आकर दिन में काम करते थे। कोड़ों ही के बल पर क़ैदियों से काम लिया जाता था। सन् १८५८ में क़ैदियों को इन टूटे जहाज़ों में रखने का तरीक़ा बंद कर दिया गया।

१७७० ई० में कप्तान कुक ने आस्ट्रेलिया को ढूँढ़ निकाला। इङ्गलैंड से क़ैदी फिर आस्ट्रेलिया को भेजे जाने लगे। १७६० में क़ैदियों का पहला जत्था आस्ट्रेलिया पहुँचा, इस जत्थे में १०३० क़ैदी थे। १७६० में दूसरा जत्था पहुँचा। इन क़ैदियों से काम लिया जाता था और थोड़े दिन बाद बसने की पूरी इजाज़त दे दी जाती थी। आस्ट्रेलिया में छूटे हुए क़ैदियों की काफ़ी तादाद हो गई थी। गैर क़ैदी बसने वालों से क़ैदियों की तादाद अधिक थी। इस वजह से वहाँ कुछ ऐसे झगड़े शुरू हो गये जो अमेरिका में कभी भी नहीं खड़े हुए थे। इन झगड़ों की वजह से १८४० ई० में आस्ट्रेलिया में क़ैदियों का भेजा जाना बंद कर दिया गया।

फ्रांस में भी देश निकाले की सज़ा थी। फ्रांस के क़ैदी अल्जेरिया जो उत्तरी अफ्रीका में है और गायना जो दक्षिणी अमेरिका के उत्तर में भेजे जाते थे। अल्जेरिया को क़ैदी सिर्फ़ एक साल भेजे गये फिर बंद कर दिये गये। गायना में फ्रांस के रहने वालों का स्वास्थ्य ठीक न रहा। १६२६ से वहाँ भी क़ैदियों

का जाना बंद कर दिया गया है। न्यू केलिडोनिया टापू को जो दक्षिणी पैसफ़िक महासागर में है, कुछ दिनों तक फ्रांस से क़ैदी भेजे गये लेकिन १८९४ से वहाँ भेजा जाना बन्द कर दिया गया।

रूस में भी ज़ार के ज़माने में देश निकाले की सज़ा थी। रूस से अधिकतर राजनैतिक क़ैदी साइबेरिया के सर्द मुल्कों में भेजे जाते थे। उन्हें हज़ारों मील का सफ़र बरफ़ के ऊपर बेड़ी पहनकर तय करना पड़ता था। इन क़ैदखानों में क़ैदियों को इतनी तकलीफ़ भुगतनी पड़ती थी जिसका ज़िक्र भी नहीं किया जा सकता। सोवियट सरकार के ज़माने में भी आरकेंजल और साइबेरिया में राजनैतिक क़ैदियों का भेजा जाना जारी है।

हिन्दुस्तान में देश निकाले की सज़ा अंग्रेज़ों के आने पर शुरू हुई। इस सज़ा को काले पानी की भी सज़ा कहते हैं। हिन्दुस्तान में इस सज़ा को ईजाद करने का श्रेय सर इस्टाम-फ़ोर्ड रैफ़ेल को हासिल है। उन्होंने १७८७ में सुमात्रा टापू में हिन्दुस्तानी क़ैदियों को भेजना शुरू किया। उन दिनों सुमात्रा का टापू अंग्रेज़ों के पास था। १८२५ ई० में सुमात्रा का टापू हालैंड वालों को दे दिया गया। तब हिन्दुस्तान से क़ैदी सिंगापुर और मलाया भेजे जाने लगे। २५ साल तक क़ैदी सिंगापुर भेजे गये। १८५७ में हिन्दुस्तान में बहुत बड़ा ग़दर हुआ था। राजनैतिक क़ैदियों की तादाद बहुत

बढ़ गई और उनका हिन्दुस्तान में रखना भी मुनासिब नहीं समझा गया। १८५८ में अन्डमान के टापू में हिन्दुस्तानी क़ैदियों का भेजना जारी किया गया और पोर्ट ब्लेयर में एक बड़ा जेल बनाया गया। अन्डमान के टापू बंगाल की खाड़ी में कलकत्ता और मद्रास से ८०० मील दूरी पर वाक़ै है। यह क़रीब २०० टापू हैं। टापू पहाड़ी हैं और घने जंगलों से भरे हैं। उनमें जंगली क़ौमें आबाद हैं जो अभी तक बिलकुल ही असभ्य हैं। इन टापुओं में वर्षा बहुत होती है और समुद्र के नज़दीक होने के कारण आबहवा मातदिल रहती है। इन टापुओं में क़ैदियों के भेजने का रिवाज कारगर नहीं हो सकता। इसका कारण यहाँ की आबहवा है। यहाँ पानी बहुत बरसता है और इस वजह से मलेरिया की बीमारी बहुत होती है। दूसरा कारण यह था कि यहाँ औरतों की तादाद बहुत कम थी और इससे बहुत सी बुराइयाँ पैदा हो गईं। पहले क़ैदियों को अपने घर की औरतों को बुलाने की माक़ूल सहूलियतें प्राप्त न थीं। जो सज़ायाफ़्ता औरतें वहाँ जाती थीं वह घर बसाने के लायक़ नहीं थीं। तीसरे क़ैदियों में कोई सुधार का काम नहीं किया गया। उन्हें बहुत सख़्ती से रक्खा जाता था। लड़कों और आदमियों के साथ व्यभिचार बहुत फैला हुआ था। इन सब कारणों से क़ैदियों की नैतिक हालत बहुत ही गिरी हुई थी।

१९२० में भारत सरकार ने जो जेल कमेटी बनाई थी उसने

अंडमान की ख़ूब जांच पड़ताल की और उसके बाद सब बातों को नज़र में रखते हुए, इस बात की सिफ़ारिश की कि अन्डमान में क़ैदियों का भेजा जाना बन्द कर दिया जावे और जो क़ैदी वहाँ हैं उन्हें वापस बुला लिया जाय। भारत सरकार ने इस सिफ़ारिश को मान लिया और वहाँ क़ैदियों का भेजा जाना बन्द कर दिया गया।

१९३० में पंजाब और बंगाल में क्रांतिकारी आन्दोलन बहुत बढ़ गया था तो सरकार ने राजनैतिक क़ैदियों को, जिन्हें हिंसा करने के अपराध में सज़ा दी गई थी, फिर भेजना शुरू कर दिया। लेकिन देश में इसके ख़िलाफ़ आन्दोलन बराबर जारी रहा। असेम्बली के कुछ सदस्यों को सरकार ने वहाँ जाँच के लिये भेजा। अन्डमान में राजनैतिक क़ैदियों ने बराबर भूख हड़ताल की, इन सबका नतीजा यह हुआ कि सरकार को राजनैतिक क़ैदियों को अन्डमान से वापस बुलाना पड़ा।

सज़ा की सख़्ती के हिसाब से काले पानी की सज़ा, मौत की सज़ा के बाद सबसे कड़ी सज़ा है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इङ्गलैण्ड के रिवाज के मुताबिक़ १८वीं सदी में यह सज़ा हिन्दुस्तान में शुरू की गई। १८३२ में जो जेल कमेटी बनी थी उसने सिफ़ारिश की थी कि जिन लोगों को उम्र भर की सज़ा मिली हो उन्हीं को काले पानी भेजना चाहिये। १८६८ से १८७४ तक यह सज़ा ख़ूब प्रयोग में लाई

गई। १८६८ में मिस्टर हावेल ने यह शिकायत की कि इस सज़ा का प्रयोग ठीक से नहीं हो रहा है और लोगों को सिर्फ़ इसलिये सज़ा दी जा रही है कि अंडमान की बस्ती कम ख़र्च पर बसाई जा सके और इस तरह सज़ा की सख्ती का असर कम हो रहा है। उसने इस पर भी एतराज़ किया कि सात साल की सज़ा पाये हुए क़ैदियों को क्यों अंडमान भेजा जाता हैं। १८७७ की जेल कमेटी ने भी इस सज़ा पर एतराज़ किया। इस कमेटी ने यह बतलाया कि जेल की सख़्त सज़ा काले पानी की सज़ा से ज़्यादा सख़्त है। १८८६ की कमेटी ने राय दी कि काले पानी की सज़ा अब दूसरों को जुर्म करने से रोकने के लिये भी काफ़ी नहीं है। उन्होंने कहा कि सज़ा का मतलब सिर्फ़ बदला लेना रह गया है इसलिये इसे उठा देना चाहिये।

काले पानी की सज़ा का मतलब ताज़ीरात हिन्द बनाने वालों की राय से मालूम होता था कि क़ैदियों को समुद्र के पार किसी टापू में भेजा जावे। हिन्दुओं के लिये इस सजा का असर यह होगा कि वे हमेशा के लिये ज़ात से निकाल दिये जायँगे और दूसरों को भी काले पानी की सज़ा सुनते समय अपने दिलों में डर और भय मालूम हो कि काले पानी के देश में उनके साथ जाने किस तरह का सलूक होगा और उन्हें अपने रिश्तेदारों और साथियों को हमेशा के लिये छोड़कर जाने किस तरह की ज़िन्दगी बितानी पड़ेगी। इस काले पानी

की सज़ा का मंशा मुजरिम और आम लोगों के बीच भय पहुँचाना ही था

१६२० की जेल कमेटी ने तय किया था कि अंडमान में रहनेवाले क़ैदियों को वापस बुला लिया जाय और सिर्फ़ ऐसे क़ैदियों को वहाँ रक्खा जाय जिनके बारे में यह ख़्याल किया जाता है कि वे ख़ास तौर से ख़तरनाक हैं और जिनको हिन्दुस्तान में भाग जाने या छुड़ा लिये जाने का डर है। इस कमेटी ने यह भी राय दी थी कि काले पानी की सज़ा का दिया जाना ही बन्द कर दिया जाय और ख़तरनाक क़ैदी भी तभी वहाँ भेजे जायँ जब अंडमान के टापू को सुधारने और ख़ास तौर पर वहाँ मलेरिया को रोकने का अच्छा प्रबन्ध कर लिया जाय। कमेटी के एक मेम्बर ने यह भी राय दी थी कि काले पानी को कोई भी क़ैदी न भेजा जाय।

देश निकाले या काले पानी की सज़ा के बारे में विद्वानों के दो मत हैं लेकिन अधिक लोगों की राय है कि इस सज़ा को हटा देना चाहिये। जो लोग यह कहते हैं कि सज़ा को जारी रक्खा जाय, उनका कहना है कि मौत की सज़ा अगर बन्द कर दी जाय तो फिर सिर्फ़ देश निकाले ही से समाज की रक्षा हो सकती है। उनका कहना है कि पक्के आदतन चोर, आवारागर्दी और आदतन जुर्म करने वाले लोगों को काले पानी भेजना चाहिये। उन लोगों का कहना है कि जलवायु, रहन-सहन, संगी-साथियों के बदलने के

कारण ऐसे आदमियों को नई जिन्दगी शुरू करने का अवसर मिलता है और उनके सुधरने की अधिक आशा की जा सकती है।

लेकिन काले पानी की सज़ा में बहुत सी बुराइयाँ हैं। सबसे ख़राब क़ैदी तो काले पानी की सज़ा को स्वर्ग समझते हैं और अच्छे क़ैदी नर्क से भी बुरा समझते हैं। इस सज़ा से न तो किसी को नसीहत मिलती है और न किसी को डर ही लगता है। और अगर जेलों का इन्तज़ाम ठीक हो तो ख़तरनाक क़ैदियों को देश के अन्दर भी हिफ़ाज़त से रक्खा जा सकता है। काले पानी की सज़ा सब प्रकार से नाकामयाब सिद्ध हुई है। इसमें ख़र्चा भी अधिक हुआ है, भेजे हुए आदमियों की आदतें भी नहीं सुधरीं, और न जानेवालों को इस सज़ा से डर ही लगा। इस सज़ा ने कोई फ़ायदा नहीं किया और उन देशों के जहाँ क़ैदी भेजे जाते हैं ईमानदार और क़ानून के अन्दर चलनेवाले आदमियों की जान और माल को ख़तरे में डाल दिया।

हिन्डल ने अन्डमान की जाँच की थी। उसका कहना है कि हिन्दुस्तान की जेलों के मुक़ाबिले में अन्डमान में मौतों की संख्या दुगुनी है, ख़र्चा भी अन्डमान में ज़्यादा है। हिन्दुस्तान में क़ैदियों के ज़रिये जो आमदनी होती है उससे सालाना ख़र्च ६० रुपया ज़्यादा है, अन्डमान में १०० रुपया साल अधिक है। जो क़ैदी वहाँ भेजे जाते हैं वह फिर वहाँ

बसते नहीं हैं। कुल ६० हज़ार क़ैदी अन्डमान भेजे गये थे जिसमें सिर्फ़ वहाँ ६०० बसे थे। इन ६०० में २६६ अपना जीवन ख़ुद बसर करते हैं। इन २६६ में से १४६ खेती करते हैं। इन सब बातों से पता चलता है कि कालेपानी की सज़ा से अब कोई लाभ नहीं है।

सातवां परिच्छेद

सज़ा के तरीके

जेलखाना

जेलों का इतिहास—शुरू से १८२५ तक

यह मालूम करके लोगों को अचम्भा होगा कि जो काम आजकल जेलों से लिया जा रहा है, शुरू में जेल इस काम के लिये नहीं बनाई गई थी। उन दिनों जेल में क़ैदियों को अपनी जुर्म की सज़ा काटने नहीं भेजा जाता था। जेलों का काम केवल मुक़द्मे के दौरान में क़ैदी को हिफ़ाज़त से रखना था। जैसा कि पहिले बताया जा चुका है कि पुराने ज़माने में जो सज़ायें दी जाती थीं, मौत की सज़ा, देश निकाला, अंग भंग करना, जुर्माना या बेंत, इनमें जेल काटने की सज़ा नहीं थी। लेकिन जबतक कि मुक़द्मा फ़ैसल न हो जाय तब तक के लिये जेलखाने में मुजरिमों को रक्खा जाता था। लेकिन जब मौत की सज़ायें कम हुईं और देश निकाले की सज़ा का रिवाज बंद हुआ, तब क़ैदियों के साथ हमदर्दी दिखाने के लिये, जेल में

सज़ा के लिये उनको रक्खा जाने लगा। जेलख़ाना वास्तव में हमदर्दी दिखाने की जगह थी, या नहीं यह सवाल पीछे तय किया जायगा। इस समय तो केवल इतना ही लिखना ठीक होगा कि उन दिनों लोग यक़ीन करते थे कि जेल में रखना क़ैदियों के साथ हमदर्दी दिखाना है।

जेलख़ानों का सिर्फ़ यही मक़सद था कि उनमें उस समय तक मुजरिम हिफ़ाज़त से रक्खे जायँ कि जब तक उनके मुक़-दमे का फ़ैसला न हो जाय, और उन्हें अगर किसी सज़ा के मिलने का हुकुम हुआ है तो वह सज़ा उन्हें दे दी जाय। ऐसी हालत में क़ैदी की हिफ़ाज़त के अलावा किसी और बात पर ध्यान न दिया जाना कोई अचम्भे की बात नहीं है। उन दिनों के जेलों की कोई ख़ास इमारत न होती थी। किसी भी बड़ी इमारत का तहख़ाना काफ़ी होता था जिसमें न रोशनी जाती थी और न हवा जाती थी। मुलज़िमों को लोहे की ज़ंजीरों से जकड़ कर रक्खा जाता था। औरतें आदमी और बच्चे एक साथ रख दिये जाते थे। खाने और कपड़ों का कोई ठीक प्रबन्ध न था। मुलज़िम को पहिले ही से मुजरिम क़रार दे दिया जाता था और क़ैदख़ाने के भीतर जाते ही उसे तरह तरह की तकलीफ़ें दी जाने लगती थीं।

इंग्लैंड में तो जेलख़ाने की दशा और भी ख़राब थी। जेल ख़ानों का इन्तजाम म्युनिसिपैलटियों के ज़रिये होता था या वहाँ के बैरन लोग जो एक प्रकार के नवाब होते थे, उनके

सिपुर्द होता था। लेकिन आमतौर पर जेलों को ठेके पर उठा दिया जाता था। ठेकेदार को क़ैदियों की रक्षा की ज़िम्मेदारी लेनी पड़ती थी। क़ैदियों से ही सब खर्चा वसूल किया जाता था। खाने के दाम क़ैदियों को देने पड़ते थे। जो नहीं दे सकते थे उन्हें भूखों मरना पड़ता था। हथकड़ी बेड़ी के पहिनाने की भी फ़ीस थी, उनके उतारने की भी फ़ीस थी। बहुत से मुलज़िम अदालत से बेगुनाह कहकर छोड़ दिये जाते थे लेकिन जेल की तरह तरह की फ़ीसों के न अदा करने की वजह से उन्हें फिर भी जेल ही में सड़ना पड़ता था। क़ैदखानों में सफ़ाई का कोई इन्तज़ाम न था। छूत की बीमारी जेल ही से फैलती थी। क़ैदी निहायत गंदी दशा में रहते थे। सब तरह के क़ैदियों को, सब उम्र के क़ैदियों को, औरतों और मर्दों को एक ही जगह रक्खा जाता था। जिनके पास रुपया होता था वह जेल में थोड़ी बहुत सुविधा पा जाते थे, जिनके पास रुपया न होता था उन्हें अपनी जिन्दगी से हाथ धोना पड़ता था।

इंग्लैंड में होवर्ड साहब ने पहिले पहल जेलों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने इंग्लैंड और यूरोप के जेलखानों का मुआइना किया और जेलों की हालत सुधारने के लिये भरसक आन्दोलन किया। उनके उद्योग का फल यह हुआ कि १७७४ में दो क़ानून बनाये गये।

१—क़ैदियों की तन्दुरुस्ती ठीक करने और जेलों की सफ़ाई के लिये, जिससे बीमारी न फैले।

२—उन मुलज़िमों की रिहाई के लिये जिन्हें अदालतों ने बरी कर दिया था लेकिन जिनको जेल की फ़ीस न देने के कारण जेलों में रहना पड़ रहा था।

जब इंग्लैंड के क़ैदियों का अमेरिका जाना बन्द हो गया तो इस बात की फ़िक्र पड़ी कि इन क़ैदियों को कैसे रक्खा जाय। पहिले तो इन क़ैदियों को टूटे जहाज़ में रखने की तरकीब निकाली गई लेकिन उससे काम नहीं चला। १७७६ में दो सज्जनों ने जिनका नाम ग्लेडस्टोन और ईडन था, इस विषय पर एक बिल तैयार किया। उस बिल में चन्द और ऐसी बातों का ज़िक्र था जो जेलों के इन्तज़ाम में महत्वपूर्ण साबित हुईं। एक यह था कि क़ैदी आपस में न मिलें और उन्हें अलग अलग कोठरियों में रात को रक्खा जाया करे और दिन में काम और खाने के समय उनके ऊपर माकूल पहरा रहा करे। दूसरी बात यह थी कि जो काम क़ैदी करें उस पर उन्हें मुनाफ़े में हिस्सा दिया जाया करे। तीसरे सज़ा की समाप्ति पर क़ैदी को हिम्मत दिलाई जाया करे और यदि हो सके तो उसे नौकरी भी दिलाई जाया करे। १७७६ में तो यह कानून पास कर दिया गया लेकिन इसपर अमल न हो सका। क्योंकि इस तरह के जेलख़ाने थे ही नहीं। १५ साल बाद सरकार ने जरमी वेन्थम को जेलखाना बनाने का ठेका दिया। वेन्थम ने अपने रुपयों से जेलख़ाना बनाने की कोशिश की लेकिन वह बना न सका। १८१२ में सरकार ने मिलबेक में अपने ख़र्चे से जेल बनवाई।

आस्ट्रेलिया को भी क़ैदियों का जाना बन्द हो गया तब इंग्लैंड में अधिक क़ैदियों के रखने की ज़रूरत पड़ी। मिस्टर विलियम क्राफ़र्ड को अमेरिका वहाँ के जेलख़ानों को देखने के लिये भेजा गया और उनके वहाँ से लौटने पर अमेरिका के जेलों के मुताबिक़ इंग्लैंड में जेलें बनाई जाने लगीं।

अमेरिका के सामने क़ैदियों की नई समस्या थी। इङ्गलैंड वाले अपने क़ैदियों को अमेरिका भेजकर छुट्टी पा जाते थे। अमेरिका वाले अब अपने क़ैदियों को कहाँ भेजें। अमेरिका में सबसे पहिले प्रयोग पेन्सिलवेनिया नामक रियासत में हुआ। विलियम पेन जिसने इस रियासत को बसाया था ख़ुद जेल में रह चुका था। उसने हालैंड में जाकर वर्क हाउसों को देखा था और उन्हीं के नमूनों पर वह जेलों को बनवाना चाहता था। उसने जेलों में मार-पीट और तरह-तरह के दुःखों का देना बन्द करा दिया और उनकी जगह पर सख़्त काम, बेत, जुर्माना व चक्की की सज़ा रक्खी। रानी एन ने इन तजवीज़ों को रद्द कर दिया लेकिन पेन्सिलबेनिया की रियासत ने उन्हें क़ानून का रूप दे दिया और १७१२ तक जब विलयम पेन का देहान्त हुआ, यही क़ानून जेलख़ानों में लागू रहे।

जब बहुत से जुर्मों से मौत की सज़ा हटा दी गई और छोटे जुर्मों के लिये जो बेत या जुर्माने की सज़ा दी जाती थी वह सख़्त मुजरिमों के लिये नाकाफ़ी समझी गई। तब सवाल उठा कि पक्के मुजरिमों को क्या सज़ा दी जाया करे। पेन्सिल-

बेनिया रियासत ही ने इसकी सबसे पहिले तरकीब निकाली। मौत की सज़ा केवल चार जुर्मों के लिये रक्खी गई। क़त्ल, राजद्रोह, बलात्कार और आग लगाने के जुर्मों में मौत की सज़ा ही क़ायम रखी गई बाक़ी जुर्मों के लिये यह तय किया गया कि मुजरिमों को बेत लगाये जायँ या वह जेल में बन्द रक्खे जायँ या उनसे सख्त काम लिया जाय। क़ैदियों को रखने की फिर समस्या थी। फिलेडेलफ़िया में जो जेल थे उनकी दशा इङ्गलैंड के उन दिनों के जेलों से अच्छी न थी जिनके विरुद्ध हावर्ड ने आन्दोलन किया था। इन्हीं जेलों को सुधारने के लिये १०० साल पहिले विलियम पेन ने आन्दोलन किया था। क़ैदियों से सड़कों और रास्तों पर काम लिया जाने लगा लेकिन नतीजा अच्छा न निकला। क़ैदियों से हमेशा डर रहता था कि वे भाग जायँगे और पास पड़ोस के लोगों को नुक़सान पहुँचायेंगे। क़ैदियों के पैरों में ज़ंजीर पड़ी रहती थीं, गले में लोहे की हँसली पड़ी रहती थी। धारी पड़ा हुआ कपड़ा पहिनाया जाता था, उनका सर घुटवा दिया जाता था और यह इसलिये किया जाता था कि अगर क़ैदी भाग जाय तो इन सब पहिचानों से जल्दी पकड़ में आ जाय। क़ैदियों के ऊपर पहरा भी ख़ूब रहता था। फिर भी क़ैदी सड़कों पर बुरी बुरी गाली बकते और सड़क पर चलनेवालों को बेइज़्ज़त करते थे। इसलिये सज़ा का यह तरीक़ा छोड़ देना पड़ा और दूसरे तरीक़ों की खोज की गई।

१७९० में पेन्सिलबेनिया की धारा सभा में यह तय किया गया कि पुराने जेलों से क़ैदी वालनट स्ट्रीट के जेलख़ानों में भेजे जायँ। यहाँ पर क़ैदियों का वर्गीकरण किया गया। जुर्मों के हिसाब से क़ैदियों को छाँटा गया। पक्के मुजरिमों को कोठरियों में अकेले बन्द किया गया। मामूली मुजरिमों को कमरे में रक्खा गया। जो लोग कोठरियों में रक्खे गये उनसे कोई काम नहीं लिया जाता था। बाक़ी क़ैदी एक साथ बैठकर काम करते थे। किसी तरह की हथकड़ी, बेड़ी या ज़ंजीरें इस्तेमाल नहीं की जाती थीं। वार्डरों को हिदायत थी कि किसी क़ैदी को न मारो न जेल के अन्दर बेत की सज़ा ही दी जाती थी। काम और खाने के समय क़ैदी आपस में बात-नहीं कर सकते थे, रात को सोने के कमरे में बोल सकते थे। औरतों को बोलने की हर जगह इजाज़त थी। क़ैदियों के साथ हमदर्दी का बर्ताव रक्खा जाता था। काम के घंटे अधिक नहीं थे। क़ैदियों को मज़दूरी दी जाती थी। जब तक कि क़ैदियों की संख्या कम रही इस तरीक़े में खूब सफलता मिली।

अमेरिका में इस प्रकार जेल का मुहकमा जारी हुआ। चालीस साल तक फिलेडेलफ़िया का जेलख़ाना और जेलों के लिये आदर्श बना रहा। फिलेडेफ़िया में बड़ा जोश था। हर जगह इस बात की चर्चा थी। अमन क़ायम हो गया था। सड़कों पर बहुत थोड़े से क़ैदी काम करते थे। पुराने जेल में

सन १७८९ में १३१ क़ैदी आये थे, १७९३ में केवल ४५ आये। नये जेल के खुलने के पहिले चार साल में पुराने जेलख़ाने से १०४ क़ैदी भाग गये थे। वालनट स्ट्रीट के जेलख़ाने से चार वर्ष के भीतर एक भी क़ैदी नहीं भागा था। वालनट स्ट्रीट का जेलख़ाना क़ैदियों के सुधार की बड़ी भारी संस्था मानी जाती थी।

किन्तु थोड़े ही दिनों में वालनट स्ट्रीट के जेलख़ाने की दशा बिगड़ने लगी और कुछ ही साल में वह बिल्कुल ही बिगड़ गई। क़ायदे ढीले पड़ गये थे, जेल में बेअमनी फैल गई और सुधार की जगह वह जुर्म सिखाने का केन्द्र हो गया। इस नाकामयाबी के कारण यह थे—

(१) बढ़ती हुई तादाद के कारण पहिले की तरह नियमों की पाबन्दी नहीं हो सकी।

(२) क़ैदियों की तादाद इतनी बढ़ गई थी कि वहाँ के हाकिम क़ैदियों को समझाने के लिये पूरा समय नहीं दे सकते थे।

(३) तादाद के बढ़ने के कारण क़ैदियों का काम मुनाफ़े पर नहीं चल सका।

(४) राजनैतिक उलट फेर से जेल की इन्तज़ामिया कमेटी में बेजा उलट फेर होने लगे।

शुरू शुरू में वालनट स्ट्रीट के जेलख़ाने को जो सफलता प्राप्त हुई उसकी देखादेखी अमेरिका में कई जेलख़ाने और

उसी तरह के खोले गये। न्यूयार्क में न्यूगेट जेलख़ाना बनाया गया। बोस्टन में चार्ल्स टाउन में जेल बना। न्यूयार्क में शुरू शुरू में औबर्न का जेलख़ाना भी इसी नमूने का था। कहना नहीं होगा कि सब जेलख़ाने नाकामयाब हुए। न्यूगेट के जेल-ख़ाने से जब काम पूरा नहीं हुआ तो न्यूयार्क में ओबर्न का नया जेलख़ाना १८०६ में तैयार किया गया। १८१६ में दो जेल बनकर तैयार हुए। १८२२-२३ में जो बुराइयाँ वालनट स्ट्रीट के जेलख़ाने में दिखाई पड़ी थीं यहाँ भी ज़ाहिर होने लगीं। पेनसिलवेनिया रियासत में जेलख़ाने के दुख दूर करने के लिये फिलेडेलफ़िया सोसाइटी नाम की एक संस्था थी। वालनट स्ट्रीट के जेलख़ानों के असफल होने के बाद उसने आन्दोलन किया कि सुधार की योजना के साथ जेलख़ाना बनाया जाये। १८१८ में सोसाइटी ने इस आन्दोलन को शुरू किया। उसी साल उसकी योजना को मान लिया गया। और पश्चिमी ओर रियासत में एक जेल बनवाया गया। यहाँ नई योजना से काम लिया गया। सब क़ैदियों को कोठरियों में अलग अलग बन्द कर दिया गया और उन्हें कोई काम भी करने के लिये नहीं दिया गया। १८२१ में वालनट स्ट्रीट का जेलख़ाना बेंच डाला गया और रियासत के पूर्वी ओर दूसरा जेलख़ाना बनाया गया। यह जेल १८२६ में बनकर तैयार हुआ। तब तक पिट्सबर्ग के जेलख़ाने में क़ैदियों को बिना काम कोठरी में बन्द करके रखने की बुराई ज़ाहिर हो गई थी,

इसलिये इस जेलख़ाने में क़ैदियों को कोठरियों में तौ अकेले रक्खा गया लेकिन उनको कोठरियों में काम करने के लिये दिया जाने लगा।

१८२१ में औबर्न के जेलख़ाने में क़ैदियों को जुर्म के हिसाब से छांटकर कोठरी में रक्खा गया, उनसे कोई काम नहीं लिया जाता था। बालनट स्ट्रीट के जेलख़ाने की तरह यह तरीक़ा भी असफल रहा।

अमेरिका में जेलख़ाने के दो तरीके साथ साथ चल रहे थे। एक औबर्न जेल का तरीका और दूसरा फिलेडेलफ़िया की पूर्वी जेल का तरीक़ा। वर्षों तक विद्वानों में बहस होती रही कि कौन सा तरीक़ा ज्यादा अच्छा है।

हिन्दुस्तान में भी अंग्रेजों के आने के पहिले जो जेलख़ाने थे वह इसी मतलब के लिये थे कि मुलज़िमों को जब तक उनके मुकदमे का फ़ैसला न हो जाय या अगर उन्हें सज़ा का हुक्म हुआ हो तौ तब तक उन्हें वह सजा न दे दी जाय हिफ़ाजत से रख सकें। केवल सज़ा काटने के लिये जेलख़ाने में क़ैदी नहीं रक्खे जाते थे। जेलखाने किलों के भीतर, तहखानों में बनाये जाते थे और क़ैदियों को हथकड़ी बेड़ी और ज़ंजीरों से जकड़ कर रक्खा जाता था।। अंग्रेज़ी सलतनत के क़ायम होने पर कुछ दिनों तक तौ क़ैदी पुराने क़िलों के अन्दर के जेलख़ानों में रक्खे गये। बाद को इंग्लैंड ही के ढंग पर जेलख़ाने बनवाये गये।

किन्तु जो ख़राब हालत और बद इन्तज़ामी इंग्लैंड के जेलख़ानों में थी वैसी अंग्रेज़ी हुकूमत के ज़माने में हिन्दुस्तान में कभी नहीं थी।

संयुक्त प्रांत के अपने सूबे में पहिले कोई सेन्ट्रल जेल नहीं थी पर हर ज़िले में एक एक डिस्ट्रिक्ट जेल था। क़ैदियों से जेल के बाहर सड़कों और पुलों के बनवाने का काम लिया जाता था। जेलों में कोई कारख़ाना न था। सेन्ट्रल जेलों को बने हुए ६० वर्ष हो गये हैं। कुछ डिस्ट्रिक्ट जेल बढ़ाकर सेंट्रल कर दिये गये थे और कुछ नये जेल बनवाये गये। सन् १८४८ में तीन सेन्ट्रल जेल बनवाने का हुक्म हुआ था। आगरे में सबसे पहिले सेन्ट्रल जेल बना था। आगरा उन दिनों सूबे की राजधानी थी। जेल उन दिनों कलेक्टरों के आधीन थे। जेलों में सुपरिन्टेनडेन्ट नहीं होते थे। दरोग़ा जेल का अफ़सर होता था और कलेक्टर की मातहती में काम करता था। जब जेलों की आबादी बढ़ने लगी तब कलेक्टर उनका काम न देख सके। मिस्टर वुडकाक आगरा जेल के पूरे समय के सुप-रिनटेनडेन्ट बनाये गये। आप आई० सी० एस० अफ़सर थे। १८४२ में बरेली सेन्ट्रल जेल भी बना। १८५४ में बनारस, मेरठ और जबलपुर के जेल, सेन्ट्रल जेल बनाये गये। मेरठ में उन दिनों में सेन्ट्रल जेल थी और जबलपुर इसी सूबे में लगता था। वुडकाक साहब ने बहुत अच्छा काम किया और वे सबसे पहिले इन्सपेक्टर जेनरल बनाये गये। उसके बाद

थार्नहिल और फिर मिस्टर विलियम इन्सपेक्टर जेनरल हुए। इलाहाबाद का सेन्ट्रल जेल पहिले मलाका में था लेकिन यह जगह ठीक नहीं समझी गई और फिर जमुना पार नैनी में एक सेन्ट्रल जेल बनवाया गया। लखनऊ का सेन्ट्रल जेल १८६१ में बना, उसी के साथ नागपुर में सेन्ट्रल जेल बना। फतेहगढ़ का सेन्ट्रल जेल सबसे बाद को बनवाया गया।

सूबे की सरकार ने बहुत ज़ोर लगवाकर सेन्ट्रल जेल खुलवाए थे उन्होंने दिखाया था कि सेन्ट्रल जेलों में क़ैदी रखने में बड़ी सुविधा होती है और ख़र्च कम होता है। सेंट्रल जेल उन स्थानों में बनवाये गये थे जहाँ अँग्रेज़ी फौज रहती थी जिससे यदि जेल के अन्दर कुछ गड़बड़ हो तो उसे आसानी से दबाया जा सके। पहिले पहिल आई० सी० एस० अफ़सर ही जेल के सुपरिन्टेनडेन्ट होते थे किन्तु बाद को यह समझा गया कि जेल में डाक्टर लोगों का रहना बहुत ही ज़रूरी है और इसीलिये आई० एम्० एस० अफ़सर जेल के सुपरिनटेनडेन्ट बनाये जाने लगे। यह नियम अभी तक चला आ रहा है। १८५६ में डाक्टर इस्टीवेन्स इलाहाबाद में जेल सुपरिनटेनडेन्ट बनाये गये। इनके बाद डाक्टर चीफ सुपरिन-टेनडेन्ट बनाये गये। बरेली सेंट्रल जेल के पहले सुपरिनटेन-डेन्ट डा० विलियम थे। सेंट्रल जेलों के बनने के बाद जेलों में फ़ैक्टरियाँ (कारख़ाने) खोले गये जिससे क़ैदी वहाँ जाकर काम कर सकें।

उन दिनों जेलों का सब काम जेलरों द्वारा होता था जो दरोग़ा कहलाते थे। जेलों में ख़ूब बीमारी फैलती थी। छूत की बीमारी अकसर जेलों ही से शुरू होती थी। १८६० में १४१ फ़ी हज़ार मौतों की संख्या थी। एक ही जेल में इतने क़ैदी मरते थे जितने कि अकसर अब सब जेलों में भी मिला-कर नहीं मरते हैं। ५० साल पहिले हर क़ैदी को अपनी जान का डर रहता था। हर साल पाँच सौ या छः सौ क़ैदियों के बेत लगते थे और तरह तरह की ग़ैर क़ानूनी सज़ायें दी जाती थीं।

आठवां परिच्छेद

जेलों का इतिहास—१८२५ से १८६०

पिछले अध्याय में अमेरिका के दो तरह के जेलों के तरीक़ों का थोड़ा सा हाल दिया गया है। इन्हीं दोनों तरीक़ों के ऊपर इङ्गलैंड और अमेरिका और उसके बाद हिन्दुस्तान के जेल के मुहकमे पर बहुत असर पड़ा। एक तरीक़ा औबर्न कहलाता है क्योंकि यह वह तरीक़ा था जो औबर्न के जेल में लागू किया गया था। दूसरा तरीक़ा पेन्सिलवेनिया जेल का तरीक़ा कहलाता है। इन तरीक़ों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

औबर्न—जेल की इमारत और इन्तज़ाम का तरीक़ा जो न्यूयार्क के रियासत में औबर्न नाम के गाँव के जेल में लागू किया गया था, औबर्न का तरीक़ा कहलाता है। सब क़ैदियों को एक साथ रखने का तरीक़ा और सबसे ख़राब क़ैदियों को कोठरियों में बन्द रखने का तरीक़ा असफल साबित हो चुका था। क़ैदियों को एक साथ काम पर रखने और एक ही जगह सोने देने का नतीजा बहुत बुरा निकला था। जेल में बलवा होने का इतना अन्देशा था कि फौज की एक टुकड़ी औबर्न के गाँव में रखनी पड़ी थी। जब १८२१ में कोठरियों की एक

क़तार बन गई तब क़ैदियों के वर्गीकरण का एक क़ानून बनाया गया। क़ैदियों को तीन दरजों में बाँटा गया। सबसे पक्के और सुधरनेवाले क़ैदी पहिले दरजे में रक्खे गये। इनको रात और दिन कोठरियों में रक्खा जाता था। इनसे कोई काम नहीं लिया जाता था। रात दिन अपने पुराने कुकर्मों पर सोचने के लिये ही इनके पास समय था। दूसरे दर्जे में वे क़ैदी रक्खे गये थे जो कम ख़राब थे। इन्हें रात को कोठरियों में बन्द रक्खा जाता था और दिन में थोड़े समय के लिये साथ में काम करने की आज्ञा थी। तीसरे दर्जे में वह क़ैदी थे जिनके सुधरने की आशा रक्खी जाती थी। इन्हें रात को अलग कोठरियों में बन्द किया जाता था और दिन में साथ में काम करना पड़ता था।

अधिकारियों का विचार था कि जेल में हर समय ख़ामोशी रक्खी जाय तो क़ैदी एक दूसरे को ख़राब न कर सकेंगे। पास रहने में तो कुछ हर्जा नहीं किन्तु यदि क़ैदी एक दूसरे से बोलेंगे तो बलवे और भागने का डर होगा। अगर क़ैदी हर समय ख़ामोश रहें तो काम एक साथ करने में क्या हानि हो सकती है। क़ैदियों से काम अवश्य लेना चाहिये। क़ैदियों को सख़्त काम करने ही के लिये जेल भेजा जाता है। अलग अलग काम लेने में धन की हानि होती है। एक साथ ही काम लेना चाहिये। जहाँ तक हो सके जेलों में क़ैदियों की मज़दूरी से सब ख़र्चा निकल आना चाहिये।

औबर्न के तरीक़ों में ख़ामोशी पर सबसे अधिक ज़ोर दिया जाता था। जेल के मसलों को हल करने के लिये ख़ामोशी ही पर सबसे अधिक आशा लगाई गई थी। साल ही भर के अन्दर औबर्न के जेल की काया पलट हो गई। काहिली का स्थान मेहनत मज़दूरी ने ले लिया। मेहनत से माल बनता था, क़ैदी तन्दुरुस्त होते थे और अपने पेट भरने का हुनर सीख लेते थे। मेहनत से सुधार भी होता था।

किन्तु जेल में यह ख़ामोशी और यह मेहनत वाला काम कैसे क़ायम किया जाय। सिवा सज़ा के और कोई तरीक़ा न था। क़ैदी चाहे कितना ही अच्छा काम करे, चाहे कितनी अच्छी तरह जेल के नियम और क़ानून पालन करे वह अपनी सज़ा का एक दिन भी कम नहीं करा सकता था। ख़राब क़ैदी के मुक़ाबिले उसे जेल से कोई फ़ायदा न था। जेल के क़ायदों की पाबन्दी डरा कर ही कराई जा सकती थी। काम कोड़ों ही के बल पर लिया जा सकता था। क़ैदियों को जिस तरह कुचल कर रखा जाता था, जिस तरह से उनसे काम लिया जाता था, जिस तरह से उनकी भावनाओं और शक्तियों को दबाया जाता था उसकी मिसाल कहीं भी नहीं मिलती। रात भर क़ैदी बन्द रहते थे, बाइबिल के अलावा कोई किताब उनके पास नहीं रहती थी। सबेरे उठकर फौजी ढंग से एक लाइन में पहरेदारों की छत्रछाया में काम करने की फैक्टरी को जाया करते थे। काम करके

दूसरे कमरे में जाते थे, जहाँ जलपान करते थे। बोलने की हर जगह सख्त मनाई थी। फुसफुसाहट भी सुनने को नहीं मिल सकती थी। खाने के लिए एक गोल क़तार में कुर्सियों पर बैठते थे। उनकी पीठ गोले के केन्द्र की तरफ होती थी। कुर्सियों के आगे मेज़ों पर खाना रखा जाता था। एक दूसरे से क़ैदी लोग इशारा भी नहीं कर सकते थे। जिसके पास अधिक खाना होता वह अपना बायाँ हाथ उठा देता, जिसको खाने की और आवश्यकता होती वह अपना दाहिना हाथ उठाता पहरेदार उस खाने को अदल बदल कर देता था। घंटी बजने पर खाना समाप्त कर दिया जाता, फिर क़तार बनाकर चुपचाप सन्तरी के पहरे में क़ैदी काम पर चले जाते थे। काम पर से क़ैदी उठने नहीं पाते थे। कोई मुआइना करने आता तो उसकी तरफ़ निगाह उठाकर भी नहीं देख सकते थे। सबेरे से रात तक खाना खाने की छुट्टी छोड़कर क़ैदियों को बराबर काम करना पड़ता था। अगर क़ैदी अपना काम समाप्त भी कर लेते तो भी उन्हें छुट्टी नहीं मिलती थी।

शाम को काम समाप्त करके फ़ौजी क़तार में क़ैदी उठते थे। रसोई घर से अपना मामूली खाना लेते थे खाना लेकर अपनी कोठरियों में जाते थे और रात भर के लिए बन्द कर दिए जाते थे। खाना खाकर अगर वह पढ़ना चाहते तो केवल बाइबिल पढ़ सकते थे और अपने पुराने कर्मों पर जी

भर कर विचार कर सकते थे। दूसरे क़ैदियों को ज़ोर से पढ़-कर भी अपनी आवाज़ नहीं पहुँचा सकते थे।

इसमें शक नहीं कि औबर्न का तरीक़ा लाभदायक था। कोड़ों के ऊपर यह लाभ निर्भर था। दिन भर चुप रहकर और रात को अलग बन्द करके, एक क़ैदी दूसरे को बहुत कम ही ख़राब कर सकता था। किन्तु यह तरीका, मारपीट की शक्ति ही पर निर्भर रहने के कारण क़ैदियों को किसी भी रीति से सुधार नहीं सकता था और चुप रहते रहते बहुतों का दिमाग़ भी ख़राब हो जाता था।

पेन्सिलवेनिया का तरीक़ा :—पेन्सिलवेनिया रियासत में फ़िलेडेलफ़िया के पूर्वीय जेल में यह तरीक़ा जारी था। इसमें हरएक क़ैदी कोठरी में अलग अलग बन्द किया जाता था। क़ैदी केवल अपने पहरेदार या पादरी से बोल सकता था। पहिले उससे काम भी नहीं लिया जाता था। किन्तु बिना काम के कोठरी में रहते रहते क़ैदियों की तन्दुरुस्ती और दिमाग़ दोनों ही ख़राब होने लगे। इसलिए क़ैदियों से काम लिया जाने लगा। इस तरह से अकेला या अलग क़ैदियों के रखने से यह आशा की जाती थी कि जेल में एक क़ैदी को दूसरे के द्वारा बिगड़ने का मसला हल हो जायगा।

इस पूर्वीय जेल में २५० क़ैदी रखे जाते थे। एक कोठरी में एक क़ैदी रहता था। एक कोठरी दूसरी कोठरी से अलग थी। कोठरी इतनी बड़ी होती थी कि उसी के अन्दर रहकर

काम कर सकते थे। कोठरियों के साथ साथ आठ फ़ीट चौड़ी २० फ़ीट लम्बी साढ़े ग्यारह फ़ीट ऊँची दिवालों से घिरी हुई कसरत करने की जगह थी। यहाँ क़ैदी को रोशनी और हवा नसीब होती थी और थोड़ी देर के लिए कसरत करने के लिये आने पाता था। ऊपर के जेलों की कोठरी के साथ कसरत की एक अलग कोठरी होती थी। सज़ा के आरम्भ से अन्त तक कोशिश यही रहती थी कि एक क़ैदी दूसरे क़ैदी की सूरत न देखे और न उससे मिल सके। क़ैदियों से केवल जेलर, सन्तरी और पादरी ही मिल सकते थे। फ़िलेडेलफ़िया की कुछ संस्थाओं के सदस्य जो क़ैदियों की भलाई से दिलचस्पी रखते थे, मिलने पाते थे। हरएक कोठरी में एक बाइबिल रहती थी। क़ैदी सिवा बाइबिल के और कुछ नहीं पढ़ सकते थे। घर को वे चिट्ठी भी नहीं डाल सकते थे और न घरवाले उनसे मिल ही सकते थे और न क़ैदियों को चिट्ठी डाल सकते थे।

पेन्सिलवेनिया के तरीक़े को लागू करनेवालों का विचार था कि यदि क़ैदियों को मिलने जुलने की आज्ञा होगी तो अधिक ख़राब क़ैदी अच्छे सुधरनेवाले क़ैदी को बिगाड़ देगा। तरह तरह के जुर्मों की तदबीरें रची जायँगी और जब क़ैदी छूटकर बाहर जायगा तो उसके जेल के साथी उसे पहिचान लेंगे और अपने जुर्मों में शरीक करने के लिए मजबूर करेंगे। यदि क़ैदी अलग अलग कोठरियों में रखे जायँगे और उन्हें

एक दूसरे से मिलने जुलने या चिट्ठी पत्री का अवसर नहीं दिया जायगा तो एक क़ैदी दूसरे को ख़राब न कर सकेगा। और क़ैदी केवल उन्हीं लोगों से मिल सकेगा जो उसका सुधार चाहते हैं तो उसके मन को सहज में बदला जा सकेगा। अपनी बदमाशी में और अधिक मज़बूत न हो सकेगा। रात दिन अलग रहने पर अपने कुकर्मों पर विचार करेगा और फिर कभी न आने का इरादा करेगा। कोठरी में काम करके अकेले में उसका समय बहलेगा, उसके ऊपर जो खर्च होता है वह कुछ पूरा होगा और मुमकिन है कि कुछ हद तक इस तरह का काम उसका सुधार भी कर सके। पूर्वीय जेलख़ानों में कोई और सज़ा नहीं दी जाती थी। कोड़ों की वहाँ कोई आवश्यकता न थी। किसी क़ैदी को जेल का नियम तोड़ने का कोई अवसर ही नहीं दिया जाता था। सज़ा शारीरिक नहीं थी किन्तु मानसिक और सामाजिक थी।

यह तरीक़ा उन दिनों इतना अच्छा माना जाता था कि इसकी ख्याति यूरोप तक फैल गई और यूरोप और इङ्गलैंड के जेलख़ानों का प्रबन्ध इसी तरीक़े से होने लगा। अमेरिका में औबर्न का ही तरीक़ा अधिकतर जारी रहा।

औबर्न और पेन्सिलवेनिया के तरीक़ों में अधिक अन्तर न था, अन्तर के विरुद्ध समता अधिक थी। दोनों तरीक़ों में एक क़ैदी एक दूसरे से मिल जुल नहीं सकता था। दोनों ही तरीक़ों में क़ैदी रात को अलग अलग बन्द होते थे। दोनों में

विशेष अन्तर यह था कि पेन्सिलवेनिया के तरीक़े में एक क़ैदी दूसरे से बिलकुल जुदा रहता था, एक दूसरे को पहिचानता भी न था। बाहर जाकर भी एक दूसरे को पहिचान नहीं सकते थे। औबर्न के तरीक़ों में क़ैदी एक दूसरे को पहिचान सकते थे यद्यपि एक दूसरे से बातचीत नहीं कर सकते थे। औबर्न के तरीक़े का जेल कम ख़र्च पर बन जाता था और क़ैदियों के काम से आमदनी अधिक होती थी।

उन्हीं दिनों इङ्गलैंड में नेपोलियन के युद्धों के पीछे जुर्म बहुत बढ़ रहे थे। जेल में क़ैदियों की तादाद भी बढ़ रही थी। सामाजिक झगड़े और कारख़ानों के झगड़े बढ़ रहे थे, राजनैतिक उथल पुथल मची हुई थी, इङ्गलैंड की आबादी दिन पर दिन बढ़ती जाती थी, लोगों पर तबाही आई हुई थी। शराबबाज़ी और ग़रीबी सर उठाये हुई थी। ऐसी दशा में जुर्मों का बढ़ना स्वाभाविक ही है। पुलिस का काम अच्छा होने लगा था। मौत की सज़ा कम जुर्मों में दी जाती थी, अधिक लोग जुर्म करने में पकड़े जाते थे और उन्हें जेल में रहना पड़ता था। पहिले ज़माने के सज़ा के तरीक़ों में मौत की सज़ा से जेल में बीमारी से, देश निकाले से, जेल की आबादी कम रहती थी। अब मौत की सज़ा बहुत कम जुर्मों में दी जाती थी देश निकाला बन्द हो गया था। जेलों की हालत में उन्नति हो गई थी। कम लोग जेलों में बीमारी से मरते थे। जेलों में उद्योग धंधे शुरू हो गये थे। कुछ जेलों में

काम बहुत मुनाफ़े पर हो रहा था। क़ैदियों की मज़दूरी से न केवल जेलख़ाने का पूरा ख़र्च ही निकल आता था बल्कि अपने घरों को भी कमा कर भेज सकते थे। इस तरह के जेलों की मुख़ालिफ़त शुरू हो गई थी और आलोचना यह हो रही थी कि जेल में सुधार पर कम और दूसरों पर डर और दह-शत पैदा करने पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

अब इङ्गलैंड के जेलों में क़ैदियों के रखने के तरीक़े पर बहस शुरू हुई। क़ैदियों को छाँटने का तरीक़ा असफल हो चुका था। क़ैदियों को अलग अलग रखने के तरीक़ों को लोग पसन्द कर रहे थे। अलग रखने वालों में भी दो भेद थे। कुछ लोग तो अमेरिका के अलग अलग कोठरियों में क़ैदियों को रखने के तरीक़े के पक्ष में थे जिसमें क़ैदी अलग अलग रात और दिन कोठरी में बन्द रहते हैं। खाना और बाइबिल दोनों ही सीकचों के बीच से पहुँचा देते थे। इङ्गलैंड में इस तरीक़े में कुछ सुधार हो गया था। क़ैदी लोग जेल के अफ़सरों से कुछ बातचीत कर सकते थे। और कसरत करने और गिर्जों में साथ साथ जाते थे किन्तु वहाँ भी किसी दूसरे क़ैदी से बात नहीं कर सकते थे। कसरत करने को हर क़ैदी के लिये अलग जगह थी और गिरजे में कोठरियाँ इस तरह की बनाई गई थीं कि क़ैदी को सिवाय पादरी और कुछ न दिखाई दे। यह तरीक़ा बिलकुल पेन्सिलवेनिया के तरीक़े पर था। तीसरा तरीक़ा औबर्न या ख़ामोशी का तरीक़ा था जिसमें रात में

क़ैदी कोठरियों में बन्द रहते थे लेकिन काम और खाने के समय साथ साथ रहते थे किन्तु तब भी आपस में किसी तरह की बातचीत नहीं कर सकते थे। इस तरीक़े को भी काम में लाया जाता था। किन्तु अधिक जेलों में पेन्सिलवेनिया का तरीक़ा ग्रहण किया गया था।

क़ैदियों से काम लिया जाय या नहीं इस पर भी बहुत बहस हुई और क़रीब क़रीब यह राय हो गई थी कि क़ैदियों से काम लिया जाय। कुछ लोगों की राय थी कि काम क़ैदियों के सुधार के लिये आवश्यक है और कुछ की राय थी कि काम कराकर जेलों का ख़र्चा पूरा करना चाहिये। किन्तु अब एक और नया दल उठ खड़ा हुआ जो कहता था कि काम डर पैदा करने के लिये कराया जाय। क़ैदियों से कठिन, तंग करने वाले, बेकार काम कराये जायँ जिससे क़ैदियों को जेल आने की ठीक सज़ा मिले। काम का पहिला उद्देश्य क़ैदियों को कष्ट पहुँचा कर दिया गया। क़ैदियों को कष्ट तब होगा जब काम सख्त हो, तंग करनेवाला हो, बेकार हो और एकसां हो जिसमें क़ैदी का मन न लगे क़ैदियों को पहिले कोल्हू चलाने के लिये दिया गया और फिर बाद को एक पहिया घुमाने के लिये कोठरियों में लगा दिया गया।

सन् १८४२ में पेन्सेलवेनिया के तरीक़े पर पेन्टोनविल जेल ख़ाना बनवाया गया। पेन्टोनविल जेलख़ाने के बाद ६ साल में ५४ जेलख़ाने इसी नमूने के बनवाये गये। इन क़ैदखानों में

११००० हज़ार कोठरियां थी। आस्ट्रेलिया को क़ैदियों का भेजा जाना बन्द हो गया था। टूटे जहाजों में क़ैदियों को नहीं रखा जाता था। जेलों में क़ैदियों के सुधार के तरीक़े पर काम होने लगे। सज़ा पाने पर १५, १८ महीने तक क़ैदी को कोठरी में, मिल बैंक या पिन्टोविल के जेलखानों में रहना पड़ता था। अगर उनकाचाल चलन ठीक रहता तो वे दूसरे जेलों या दूसरी जगहों को भेज दिये जाते थे जहाँ उन्हें काम के समय काम करना पड़ता था। काम का हिसाब रखा जाता था। अच्छा काम करने वाला जल्दी छूटकर आस्ट्रेलिया बसने जा सकता था। जब आस्ट्रेलिया का जाना बन्द हुआ तो इंगलैंड ही में क़ैदियों को पुलिस की निगरानी में कुछ शर्तों पर छोड़ा जाना शुरू कर दिया गया।

१८४० से १८६५ तक अलग अलग क़ैदियों के रखने के सुधार के लिये काम कराने के मसले ठीक तौर पर तय नहीं हुए थे अख़बार में इनके विरुद्ध ख़ूब आलोचनायें छप रही थीं। १८५० में एक कमेटी इन मसलों पर विचार करने के लिये बैठी। उसने क़ैदियों को अलग अलग रखने का समर्थन किया क़ैदियों से काम लेना भी ज़रूरी माना मगर राय यह दी कि काम ऐसा होना चाहिये जिसे करने में क़ैदियों को तकलीफ़ न मालूम हो और बेकार काम हो। कोई उद्योग धंधा क़ैदियों से न कराना चाहिये। औबर्न तरीक़े के जेलखाने इङ्गलैंड में बिलकुल ख़तम हो गये थे। १८५७ में दो ही जेल थे जिन में

औबर्न का तरीक़ा बर्ता जाता था बाक़ी सब जेलों में पेन्सिल-वेनिया का तरीक़ा लागू हो गया था।

१८६३ में लार्ड सभा की एक कमेटी जेलों के सम्बन्ध में बनाई गई। इसने अपना मत दिया कि जेलों का मुख्य मतलब जुर्म की रोकथाम और क़ैदियों के दिलों में डर पैदा करना ही है जिससे वे फिर कभी जुर्म न करें, और उनकी सज़ा से दूसरे नसीहत लें। क़ैदियों से कड़ा काम लेना चाहिये, उन्हें रूखा सूखा खाना मिलना चाहिये और कड़ी ही चीज़ पर सोने को मिलना चाहिये। पादरियों ने भी इस राय का समर्थन किया था। उनका कहना था कि सुधार जेलों का मुख्य उद्देश्य नहीं हो सकता, मुख्य उद्देश्य दूसरों को और क़ैदियों को डराना ही है। और साथ में सुधार हो जाय तो कोई हानि नहीं है। जजों की भी यही राय थी उनका कहना था कि सुधार और डर दोनों मतलब एक साथ पूरे नहीं हो सकते हैं, यह असम्भव है कि क़ैदी का सुधार भी हो और उसी तरीक़े से दूसरों को या उसी क़ैदी को दुबारा जुर्म करने से रोका भी जा सके। इन सिद्धान्तों को न मानते हुए पार्लियामेंट ने १८६५ का जेल क़ानून बना दिया। इस क़ानून के द्वारा छोटे छोटे जेलों को तोड़ दिया गया। हर जेल के लिये एक से नियम बनाये गये जिनका लागू होना आवश्यक कर दिया गया। हर एक जेल में कोठरियाँ बनवाई गईं। हर एक क़ैदी से सख़्त मेहनत लेने की तजवीज़ की गई। तीन महीने तक शुरू में

सब क़ैदियों को सख़्त मेहनत करनी पड़ती थी पीछे उनकी मेहनत कुछ हल्की कर दी जाती थी।

इङ्गलैंड में धीरे धीरे सब जेलों का प्रबन्ध एक साथ किया जाने लगा। पहिले जेलों का मुआइना करने के लिये निरीक्षक नियुक्त किये गये फिर उनसे त्रिमासिक रिपोर्ट मांगी गई। १८४४ में एक जेलों का बड़ा निरीक्षक बनाया गया। यह पद कर्नल सर जोशआजेब को मिला। इन्होंने पेनटोनविल का जेलख़ाना बनवाया था। १८५० में यही जेलख़ानों के डाइरेक्टरों के चेयरमैन बनाये गये। इङ्गलैंड के जेलख़ानों में जो तरीक़े वर्ते जाते थे उनका हिन्दुस्तान में भी बहुत असर पड़ा। यहाँ १८३६ में जेल सुधार के लिये एक कमेटी बनाई गई। लार्ड मैकाले उसके मेम्बर थे। इस कमेटी ने दो बरस के बाद अपनी रिपोर्ट दी। उसने राय दी कि जेलों की सफ़ाई, क़ैदियों के खाने और कपड़े, और बीमारों की देख रेख में इङ्गलैंड की जेलों का मुक़ाबिला हिन्दुस्तान के, जेल कर सकते हैं। जेल के छोटे छोटे अफ़सरों को बुराइयों, क़ैदियों में बद इन्तजामी और क़ैदियों से सड़कों पर काम लेने की ख़ूब आलोचना की। जेलों की बुराइयों को रोकने के लिये जेलों में सख़्ती करने की तजवीज़ की गई। क़ैदियों के नैतिक सुधार के सब तरीक़ों का जान बूझ कर विरोध किया गया। धर्म की शिक्षा, पढ़ाई या किसी भी तरह के इनाम की मनाही की गई। सेन्ट्रल जेलों को बनवाने की राय दी जहाँ क़ैदियों से ख़ूब कसकर काम लिया जाय।

काम कोई उपयोगी न होना चाहिये, बल्कि ऐसा होना चाहिये जो एक सा हो, थकाने वाला हो, जिसमें मन न लगे और बेकार हो और जिसमें क़ैदी यह न समझे कि अगर वह अच्छा या जल्दी काम करेगा तो उसकी रिहाई जल्दी हो जायगी। क़ैदियों से रोज़ गड्ढे खुदवाये जाते थे और मिट्टी उठाकर दूसरी जगह डलवाई जाती थी। दूसरे दिन वही मिट्टी उठवा कर गढ़े भरवा दिये जाते थे और यही सिलसिला जारी रहता था।

१८६४ से जेलों में मौतों की संख्या बढ़ते देखकर गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया ने एक और कमेटी बैठाई। इस कमेटी में कई विशेषज्ञ मेम्बर थे। इस कमेटी ने जेल के प्रबन्ध के विषय में अपनी रिपोर्ट दी। जेल के मुहकमे की तीसरी जाँच १८७७ में हुई। कलकत्ते में जनवरी के महीने में विशेषज्ञों की एक कानफ्रेंस हुई। कोई प्रश्न पहिले से नहीं भेजे गये और न कोई गवाही ली गई किन्तु जेल से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातों पर विचार किया गया। हर मसले की पक्ष और विपक्ष की दलीलों का ज़िक्र रिपोर्टों में किया गया है।

१८८८-८९ में भारत सरकार ने एक और कमेटी जेलों के रोज़मर्रा के कामों की जांच के लिये बनाई। जेल के बारे में जो सिद्धांत पहिले की कमेटियों ने तय कर दिये थे, उन पर इस कमेटी को फिर से विचार करने के लिये नहीं कहा गया था। इस कमेटी में से दो सदस्यों, डा० वाकर और डा० लेथब्रिज के सिपुर्द यह काम कर दिया गया था कि यह पता

लगावें कि जो सिद्धांत पुरानी कमेटियों के द्वारा तय कर दिये गये हैं उनके मुताबिक़ जेलों में काम हो रहा है या नहीं और जेलों के कामों में अनुकूलता लायें। डा० बाकर और डा० लेथब्रिज ने अच्छी ख़ासी रिपोर्ट तैयार की। इस रिपोर्ट को फिर एक कमेटी ने जाँचा और इसी की सिफारिश पर १८९४ का क़ानून बना।

नवां परिच्छेद

जेलों का इतिहास—१८६० से १६४० तक

पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि अमेरिका में कुछ दिनों की बहस के बाद औबर्न के तरीक़े पर काम होने लगा था। पैन्सिलवेनिया का तरीक़ा फिलेडेलफ़िया के पूर्वी जेलों में भी जहाँ वह शुरू हुआ था बंद कर दिया गया। अब भी अमेरिका में ओवर्न के तरीक़े पर काम हो रहा है। जो कुछ परिवर्तन हुआ भी है वह क़ैदियों के साथ मनुष्यता का बर्ताव करने, क़ैदियों का सुधार करने या उनको ठीक नियंत्रित करने के लिये किये गये हैं। जो ख़ास तबदीलियाँ हुई हैं वह इस प्रकार हैं।

१—क़ैदियों का चलने का तरीक़ा बदला गया। अब क़ैदी फ़ौजी ढंग से दो की कतार में चल सकते हैं।

२—खाना एक ही कमरे में खिलाया जाता है किन्तु खाने के समय ख़ामोशी रहती है।

३—जेलों की इमारतों में भी काफ़ी तबदीली हुई है किन्तु अब भी अधिकतर जेल कोठरियों ही के आधार पर बने हैं।

४—हर समय की ख़ामोशी के नियम का भी अन्त हो रहा है।

५—क़ैदियों का वर्गीकरण किया गया है किन्तु इसमें सफलता नहीं प्राप्त हुई। छोटे बच्चों औरतों और मर्दों के लिये अलग अलग जेलें बनाई गईं।

६—क़ैदियों की ख़ास तरह की वर्दी बनवाई गई।

७—जेलख़ानें के नियमों में सुधार किया गया।

८—क़ैदियों के भोजन में सुधार किया गया।

९—जेलों में पुस्तकालय खोले गये।

१०—चिट्ठी पत्री की आज्ञा हो गई।

११—क़ैदियों की पढ़ाई का प्रबन्ध किया गया।

१२—अच्छे क़ैदियों को सज़ा में छूट मिलने लगी।

१३—सज़ा के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया। बदला लेने और डराने के उद्देश्य को छोड़कर अब क़ैदियों के सुधार की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

१४—अच्छे क़ैदियों को जेल में कुछ आराम और अधिकार दिये जाने लगे हैं।

१५—क़ैदियों की मानसिक रोगों की जांच और इलाज का प्रबन्ध किया गया।

१६—उपयुक्त जेलों के कर्मचारी अपनी योग्यता के कारण छांटे गये और उनके लिये जेल के काम की शिक्षा का प्रबन्ध भी किया गया है।

इंगलैंड में भी जेल के विषय में ख़ूब उन्नति हुई है। १८७८ से १८९८ तक सर एडवर्ड डूकाने जेलों के डाइरेक्टर रहे।

उन्होंने बड़ी योग्यता से काम किया। जेलों में काफ़ी तबदीलियाँ हुईं किन्तु उनका प्रबन्ध पेन्सिलवेनिया ही के तरीके पर होता रहा। शुरू में जो क़ैदी जेल आता था उसे व्यर्थ और सख्त काम दिया जाता था। जब वह कुछ दिनों जेल में रह लेता था तब उसे उपयोगी काम करने को दिया जाता था। वहाँ के जेल का उद्देश्य दूसरों को डर दिलाना ही था। क़ैदी के सामने अच्छे चालचलन और मेहनत के लाभ रखे जाते थे अच्छे चालचलन से रहकर और मेहनत करके जेल की सख्ती में वह कुछ कमी करा सकता था। शुरू की सख्ती को सहन करने के पीछे उसे उपयोगी काम करने को मिल सकता था। लाइब्रेरी से किताबें पढ़ने को मिल सकतीं थीं। बाहर अपने मित्रों और सम्बन्धियों को वह पत्र लिख सकता था। छूटने पर उसे थोड़ा रुपया भी मिल सकता था क़ैदी को शुरू में बिछाने के लिये गद्दा नहीं मिलता था। पढ़ने के लिये किताबें नहीं मिलती थीं। फिर पीछे स्कूली किताबें मिलती थीं। किन्तु गद्दा कभी कभी मिलता था। फिर रोज़ गद्दा मिलने लगता था और लाइब्रेरी की सब किताबें पढ़ने को मिल सकती थीं। चिट्ठी पत्री और मुलाक़ात की आज्ञा हो जाती थी।

सन् १८९५ में जेलों की जांच के लिये एक कमेटी बनाई गई जिसके सभापति ग्लेड्स्टन थे। इस कमेटी ने बड़ी छान बीन की। जेल के मुहकमे पर जो दोष लगाये गये थे उन दोषों से कमेटी ने मुहकमे को बरी कर दिया। किन्तु ख़ास ख़ास

बातों पर कमेटी ने मुहकमे की कड़ी आलोचना की। उनका निचोड़ यह था कि क़ैदियों को अभी तक समाज का निकम्मा और बेकार हिस्सा समझ रक्खा गया है और जैसे ही क़ैदी जेल से रिहा किया जाता है जेलवालों की जिम्मेदारी उसी समय समाप्त समझी जाती है। उनका कहना था कि जेलों के प्रबन्ध का उद्देश्य यह होना चाहिये कि क़ैद के ज़माने में उन बातों पर ज़ोर दिया जाय जिससे क़ैदी के सुधरने में आसानी हो और जिन बातों से क़ैदी और भी नीचे गिरता हो उन्हें जेल से हटा देना चाहिये।

उन दिनों जेलख़ाने के मुहकमे को एक बात का घमंड था कि वह सब क़ैदियों के साथ एकसा बर्ताव करता है। सरएडवर्ड डूकाने के समीप एक क़ैदी, क़ैदी के सिवाय कुछ न था। किन्तु ग्लेड्स्टन कमेटी ने इस नियम की निन्दा की। उसने राय दी कि नियम ऐसा होना चाहिये जो हर प्रकार के क़ैदियों पर लागू हो सके। जिसमें हर प्रकार के क़ैदी के सुधारने की गुंजा-इश हो। जेल में बर्तावा और नियम ऐसे हों जिनसे क़ैदियों में अच्छी भावनायें जागृत हों, उनमें ठीक आचारों विचारों पर चलने की बुद्धि आवे उनमें काम करने और मेहनत मज़-दूरी करके ज़िन्दगी बसर करने की आदत पड़े और जहाँ तक हो सके जेल से छूटने पर, जेल में आने के समय से उनकी शारीरिक और मानसिक ज़िन्दगी में कुछ सुधार हो। इस कमेटी का विचार था कि क़ैदियों के सुधार का उद्देश्य सज़ा

की कड़ाई के साथ साथ भी पूरा हो सकता था। उनका कहना था कि सज़ा की कड़ाई ने वह उद्देश्य भी पूरा नहीं किया जिस के लिये वह जारी की गई थी। इस बात पर घमंड किया जाता था कि इस तरीके ने जेल की आबादी को घटा दिया था। इस कमेटी ने साबित कर दिया कि जेल की आबादी इसलिये घटी है कि सज़ायें कम मीयाद की दी जाने लगी हैं और क़ैदियों का दुबारा जुर्म करने की तादाद घटने के बजाय बढ़ रही है। बेकार कड़ी सज़ा का भी उन्होंने विरोध किया और सिफारिश की कि क़ैदियों से उपयोगी काम लिया जाया करे। फिर भी कमेटी चाहती थी कि काम कड़ा हो। उनका कथन था कि सज़ा का उद्देश्य सुधार और डर दोनों ही होना चाहिये। इस कमेटी ने क़ैदियों को अलग अलग रखने का भी विरोध किया और यह राय प्रगट की कि क़ैदियों को साथ २ काम करने की आज्ञा दी जाय, उससे किसी भी हानि का डर नहीं है। रात को अलग रहना जारी रहे। ख़ामोशी के नियम की भी उन्होंने निन्दा की। इस कमेटी ने छूटे हुए क़ैदियों की देख भाल और सुधार के लिये एक और कमेटी बनाने की तजवीज़ की और बाहरी संस्थाओं को क़ैदियों से मिलने और उनका सुधार करने की सलाह दी। कम उम्र के मुजरिमों के लिये और पेशेवर मुजरिमों के लिये विशेष प्रबन्ध की राय दी।

पार्लियामेंट ने ग्लेड्स्टन कमेटी की सिफ़ारिशों को मान

लिया। उनकी सिफ़ारिशों पर सन् १८९८ में जेल का कानून बना। सर एगल्स ब्राइस जेलों के डाइरेक्टर नियुक्त हुए और उन्हें यह काम सौंपा गया कि ग्रेडस्टन कमेटी की सिफ़ारिशों के मुताबिक़ काम करें। इङ्गलैंड में यह कानून अभी तक लागू है। इन सिफ़ारिशों से जो तबदीलियाँ हुईं वह इस प्रकार हैं।

१—सब जेलों के लिये नियम बनाने का अधिकार गृह मंत्री को दिया गया।

२—जेलों के मुआइने के लिये ग़ैर सरकारी लोग चुने गये।

३—बेंत की सज़ा बिना ग़ैर सरकारी कमेटी की सलाह के नहीं दी जाती।

४—बेकार की कड़ी सज़ायें उठा दी गईं।

५—एक महीने से अधिक सज़ा पाने वाले क़ैदियों को सज़ा में छूट मिलने लगी।

६—खाने का उचित प्रबन्ध किया गया।

७—उपयोगी दस्तकारी शुरू की गई।

सन् १९०७ में विलायत में प्रोबेशन एक्ट पास किया गया। इसके द्वारा अदालतों को अधिकार दिया गया कि कम उम्र के मुजरिमों को उनकी उम्र, चालचलन, पिछला रहन सहन, जुर्म के हलकेपन या जुर्म के कारण को देखते हुए, जुर्म साबित होने पर भी जेल भेजने के स्थान में, कुछ नियमों के साथ रिहाई दे दें। इस कानून से उन्हें उनके सम्बन्धियों के अतिरिक्त प्रोबेशन आफ़ीसर की सुपुर्दगी में भी रखा जा सकता है।

सन् १६०८ में एक कानून और बना जिसके द्वारा बोर्स्टल जेलों को खोला गया। इसके द्वारा छोटी उम्र के पक्के मुजरिमों को सुधारने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह तरीक़ा बोर्स्टल के नाम से मशहूर हुआ क्योंकि इसकी स्थापना सबसे पहले बोर्स्टल नाम के गांव में हुई थी। इस तरीके के अन्दर इस प्रकार के मुजरिमों को काम सिखाया जाता था। उसी साल पक्के क़ैदियों को रोकने के लिये एक और कानून बना जिसमें जजों को यह अधिकार दिया गया कि जो पक्के पेशेवर क़ैदी हों और उन्हें तीन साल के ऊपर की सज़ा दी जाय तो जज उन्हें दस साल तक की अधिक क़ैद दे सकता है। इस अधिक सज़ा के लिये एक नया कानून बनाया गया।

सन् १६१३ में पागलों और कम बुद्धि वाले मुजरिमों को अलग रखने का कानून बना। १६१४ में एक और कानून बना जिसके द्वारा उन लोगों को जिन्हें केवल जुरमाने की सज़ा हुई हो, प्रोबेशन आफ़िसर की सुपुर्दगी में छोड़ा जाने लगा जिससे वे अपना जुर्माना थोड़े दिनों के अन्दर किश्त के रूप में दे सकें और केवल जुरमाना न देने के कारण उन्हें जेल न भुगतना पड़े। सन् १६१४ से १६१८ तक बड़ी लड़ाई के बाद विलायत में जेल के मुहकमे में कोई बड़ी तबदीली नहीं हुई। ग्लेडस्टन कमेटी के बाद कोई दूसरी कमेटी भी नहीं बैठी। जो भी तबदीलियाँ और सुधार हुए हैं वह ग्लेड्स्टन कमेटी ही की सिफ़ारिशों पर हुए हैं। इधर सज़ा के सम्बन्ध में जो

विचारों में तबदीली हुई है उसका भी असर जेल के मुहकमे पर पड़ा है। अब जेल के अधिकारियों का विचार है कि क़ैदियों को सज़ा काटने के बाद आम लोगों के साथ मिलकर रहना पड़ता है, रिहाई में भी बहुत दिन नहीं लगते हैं, इस कारण क़ैदी को जेल के दौरान में ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे वह बाहर जाकर अच्छा नागरिक बन सके और समाज में अपनी क़ाबलियत के अनुसार स्थान पा सके। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि उसे जेल के अन्दर ऐसा हुनर सिखाया जाय और ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वह जेल से बाहर आकर अपनी रोजी इज्ज़त के साथ कमा सके। जेल में उसे आत्मसम्मान की भावना के साथ रहना सिखाया जाय और ऐसी सब कार्यवाहियों को रोक दिया जाय जिनसे क़ैदी की बेइज्ज़ती होती हो। जेल में शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिये। जो कार्यकर्ता अपने चालचलन और अपने प्रभाव से क़ैदियों को सुधार सकते हों उनको क़ैदियों से मिलने जुलने की आज्ञा दी जाती है। क़ैदियों के ऊपर भरोसा प्रगट किया जाता है जिससे उन्हें ज़िम्मेदारी से काम करना आ जाय। जल का काम सख्त होता है किन्तु उसमें दिक़ करने की भावना नहीं होती और काम उपयोगी होता है। इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि मानसिक और शारीरिक दोन तरह का काम लिया जाय।

जेलों का उद्देश्य समाज की रक्षा करना है। यह रक्षा दो

तरह से हो सकती है। एक तो मुजरिम को समाज से हमेशा के लिये या बहुत दिनों के लिये अलग कर दिया जाय। दूसरे क़ैदी में ऐसी तबदीली करदी जाय कि वह नेकचलन हो जाय और जुर्म करना छोड़ दे। पहिले तरीक़े को लोग अब पसन्द नहीं करते और सदियों के तजुर्बे के बाद वह निष्फल साबित हुआ है। इस कारण जेल में अब दूसरे तरीक़े पर ज़ोर दिया जाता है। यह कोशिश की जाती है कि जेल से बाहर जाने पर छूटा हुआ क़ैदी सच्चरित्र नागरिक बन जाय। जेलों का मतलब केवल सुधार ही नहीं किन्तु अच्छी नागरिकता की शिक्षा है।

इस नागरिकता की शिक्षा देने में और क़ैदियों को अच्छा आदमी बनाने में, क़ैदियों को अलग रखने, उनको चुपचाप रखने और उनसे बेकार कड़े काम लेने के तरीके बन्द कर दिये गये हैं। १९१९ में क़ैदियों को केवल दो हफ़्ते के लिये अलग कोठरियों में रखने का हुक्म हो गया था किन्तु १९३१ में अलग रखने का हुक्म बिलकुल ही हटा लिया गया। क़ैदियों को अब भी सज़ा के पहिले पन्द्रह दिन तक बिछाने के लिये गद्दा नहीं मिलता है। १६ वर्ष से कम और ६० वर्ष से ऊपर के आदमी और औरतों को गद्दा दिया जाता है। आशा की जाती है कि शीघ्र यह क़ायदा भी बदल जायगा और सब क़ैदियों को बिछाने के लिये गद्दा मिला करेगा। अब क़ैदी साथ साथ कसरत भी करते हैं साथ साथ पढ़ते और खेलते हैं, साथ साथ खाना खाते और साथ साथ काम करते हैं। इसलिये चुपचाप रहने के

नियम का लागू रखना असम्भव हो गया और इसी कारण वह नियम बन्द कर दिया गया।

हिन्दुस्थान में १८८६ की कमेटी के बाद १६२१ में भारत सरकार ने एक कमेटी जेलों की जाँच के लिये बनाई। इसके चेयरमैन सर अलेकजेन्डर काड्यू साहब थे। इस कमेटी ने सारे हिन्दुस्थान, बरमा अन्डमन, विलायत और अमेरिका का सफर करके एक रिपोर्ट तैयार की। इस रिपोर्ट में उन दिनों के जेलों की हालत का उपयोगी वर्णन है। इस कमेटी की ख़ास सिफ़ारिशें यह थीं।

१—जेल का प्रबन्ध विशेष योग्यता रखने वाले आदमियों के हाथ में होना चाहिये।

२—जेलों का सुपरिनटेनडेन्ट आई० एम० एस० अफ़सर होना चाहिये।

३—शिक्षित वार्डर भरती किये जाने चाहिये।

४—जेल डाक्टरों को जेल के मुहकमे के आधीन रहना चाहिये।

५—क़ैदियों को क़ैदी अफ़सर (पक्का नम्बरदार) इत्यादि कम तादाद में बनाना चाहिये।

६—पक्के दुबारा क़ैदियों को अलग जेल में रखना चाहिये।

७—यकबारा क़ैदियों को दो हिस्सों में बांटा जाना चाहिये (अ) स्टार क्लास (ब) मामूली। और इन दोनों प्रकार के क़ैदियों को अलग रखना चाहिये।

८—क़ैदियों को अलग अलग रखना या कटहेरों में रखने का तरीक़ा बन्द कर देना चाहिये ।

९—रात को क़ैदी अलग अलग रक्खे जायँ या साथ साथ रहें, इस बात पर कमेटी में मत भेद था ।

१०—जेल में क़ैदियों से काम उनके सुधार को उद्देश्य में रखते हुए लिया जाय ।

११—काम के लिये जेलों में मशीने लगवाई जायँ ।

१२—बेंत की सज़ा केवल बलबा करने या हमला करने के जुर्म में दी जाय ।

१३—अलग कोठरी की सज़ा बन्द कर दी जाय ।

१४—जेल के अन्दर रक्षा के लिये बेड़ी न पहिनाई जायँ और बेलचेन न डाली जाय ।

१५—छः महीने के ऊपर की सज़ा पाये हुए क़ैदियों को सज़ा में छूट दी जाया करे ।

१६—क़ैदियों को चिट्ठी पत्री लिखने और पाने की आज्ञा होनी चाहिये और साथ साथ उन्हें अपने सम्बन्धियों से मुलाकात करने का भी अधिकार मिलना चाहिये ।

१७—२५ वर्ष से कम उम्र के क़ैदियों को शिक्षा दी जाय ।

१८—जेलों में पुस्तकालय खोले जायँ ।

१९—खाने की चीजें अदल बदल कर मिलनी चाहिये ।

२०—खाना ठीक तरह से पकना चाहिये और गरम गरम ही बटना चाहिये ।

२१—दो जोड़ी कपड़े क़ैदियों को मिलने चाहिये।

२२—दो मेम्बरों ने राय दी थी कि हर क़ैदी की मानसिक अवस्था की जांच होनी चाहिये और पागल या कमज़ोर दिमाग़ के क़ैदियों को अलग जेल में रखना चाहिये।

२३—छूटने पर क़ैदियों को मदद मिलनी चाहिये।

२४—छोटे बच्चों और जवानों के लिये प्रोबेशन का क़ानून बनना चाहिये और प्रोबेशन अफ़सरों की नियुक्ति की जानी चाहिये।

२५—जवान मुजरिमों को अलग जेलों में रखना चाहिये या उनके लिये बोर्स्टल संस्थायें खोलनी चाहिये।

२६—क़ैदियों को पैरोल पर छोड़ा जाय और पैरोल अफ़-सरों की नियुक्ति की जाय।

२७—हवालाती क़ैदियों को अलग रखा जाय और उनसे काम न लिया जाय।

२८—ग़ैर सरकारी लोग जेलों के निरीक्षक बनाये जायँ।

२९—जेलों की इमारतों में सुधार किया जाय।

३०—क़ैदियों का अन्डमन भेजा जाना बन्द कर दिया जाय। केवल ऐसे क़ैदी जिनसे अधिक डर हो वहाँ रखे जायँ।

१९२१ में मान्टेगू चेम्सफ़ड सुधार स्कीम लागू होने के पीछे जेल का मुहकमा सूबे की हुकूमतों के अधिकार में कर दिया गया। किन्तु जनता के द्वारा जो मंत्री चुने गये थे उनके अधि-कार में जेल का मुहकमा नहीं था, बल्कि गवर्नर की कार्यकारिणी

के सदस्य के अधिकार में था। जनता के प्रतिनिधियों की राय का कम असर होता था। हर एक सूबे ने अपने सूबे की आवश्यकता के हिसाब से जेल के मुहकमे में सुधार किये। १९२० की जांच कमेटी की सिफ़ारिशों को सूबे की गवर्नमेंटों ने थोड़ा थोड़ा पालन किया। भारत सरकार ने कुछ समय के लिये अन्डमन में क़ैदियों का जाना भी बन्द कर दिया।

सन् १९३२ से क्रांतिकारी क़ैदियों का अंडमन भेजना फिर जारी कर दिया था लेकिन जनता में इसके विरुद्ध लगातार आन्दोलन हुआ और उन क़ैदियों को अन्डमन से वापस बुला लिया गया।

जेलखानों के सुधारों का बहुत कुछ श्रेय कांग्रेसमैनों को प्राप्त है। सन् १९२०, २२ के असहयोग आन्दोलन में कांग्रेस के अनुयायी हजारों की तादाद में जेल गये थे। वहाँ उन्होंने जेलों के भीतर बहुत से कानूनों का विरोध किया और जेल से छूटने पर उनके विरुद्ध आन्दोलन किया। सन् १९२५ से १९२७ तक बहुत से लोगों को क्रांतिकारी मामलों में सज़ा हुई थी। उन लोगों ने भी लम्बी लम्बी भूख हड़ताल करके जनता और सरकार दोनों ही का ध्यान जेलखानों की बुराइयों की ओर खींचा। सन् १९२९ में यू० पी० गवर्नमेंट ने एक कमेटी जेलों की जांच करने के लिये बनाई। सर लुई स्टुवर्ट इसके प्रधान और खां बहादुर हाफिज हिदायत हुसैन तथा पं० जगतनारायण मुल्ला सदस्य थे। इन लोगों ने एक विद्वता

पूर्ण रिपोर्ट लिखी। अँग्रेज़ और हिन्दुस्थानी क़ैदियों के साथ जो दो प्रकार का बरताव किया जाता था, उसका सख्त विरोध किया। उन्होंने शिक्षित और अच्छी हैसियत के आदमियों के लिये जेल में अच्छा व्यवहार करने के लिये सिफ़ारिश की।

सन् १६३० और १६३२ के सत्याग्रह आन्दोलन में फिर कांग्रेस वाले जेलों में गये और उन्होंने जेलों के अन्दर अपमान जनक नियमों का विरोध किया और इस विरोध के लिये तमाम तरह की पीड़ायें सहीं। छूटने पर भी उन्होंने जेल में जो सख्तियाँ होती थीं उनके विरुद्ध आन्दोलन किया। १६३३ में युक्त प्रांतीय कांग्रेस ने यू० पी० के जेलों में जो सख्तियाँ हो रही थीं उनको मालूम करने के लिये एक कमेटी बनाई जिसके सभापति डा० कैलाशनाथ काटजू और मंत्री श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव थे। इस कमेटी ने जेलों के सम्बन्ध में उचित जांच की थी परन्तु किन्हीं कारणों से इस कमेटी की रिपोर्ट तैयार न हो सकी। इस कमेटी की जाँच राजनैतिक क़ैदियों के विषय को लेकर हुई थी। राजनैतिक क़ैदियों के साथ साधारण क़ैदियों की तरह ही बरताव किया जाता था इस कारण वह कमेटी सभी क़ैदियों से सम्बन्ध रखती थी—

सन् १६३५ के गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया क़ानून के अन्दर सूबे के सभी मुहकमों का प्रबन्ध जनता के चुने हुए व्यक्तियों के हाथों में आ गया। जेल के मुहकमों का प्रबन्ध भी जनता द्वारा चुने हुए मंत्रियों के हाथ में आ गया। प्रांतीय चुनाव के

बाद हिन्दुस्थान के ११ सूबों में से ७ में कांग्रेस के मंत्री मंडल स्थापित हुए। यू० पी० में भी कांग्रेस मंत्रीमंडल बना। श्री रफीअहमद किदवई जेल विभाग के मंत्री चुने गये। एसेम्बली के कांग्रेसी मेम्बरों को जेल की दशा का पूरा अनुभव था। सवा दो साल तक सूबे में कांग्रेस की हुकूमत रही। इस बीच में जेलों में बहुत से सुधार किये गये। जेल के अफ़सरों की एक कमेटी बनाई गई जिसने जेलों में सुधार के विषय में अपनी रिपोर्ट दी। असेम्बली और कौंसिलों के मेम्बरों की एक मिलवां कमेटी ने इस रिपोर्ट को जांचा। बाबू गोपीनाथ श्रीवास्तव जो उस समय जेल विभाग के पार्लियामेन्टरी सेक्रेटेरी थे, इस कमेटी के चेयरमैन थे। इस कमेटी की ख़ास सिफ़ारिशें नीचे दी जाती हैं।

१—एक असिस्टेंट इन्सपेक्टर जेनरल की नियुक्ति की जाय।

२—फर्स्ट क्लास डिस्ट्रिक्ट जेल के सुपरिनटेनडेन्ट पूरे समय के लिये नियुक्त किये जायँ। डाक्टर होना उनके लिये आवश्यक न हो।

३—सुपरिनटेनडेन्ट, जेलर, डिप्टी जेलर, क्लर्क और वार्डरों को उचित शिक्षा देने के लिये लखनऊ में एक स्कूल खोला जाय।

४—राजनैतिक क़ैदियों को अलग दर्जे में रखा जाय और उन्हें एकही जेल में रखा जाय और उनके साथ बर्ताव अच्छा किया जाय।

५—मामूली क़ैदियों का वर्गीकरण (दर्जेबन्दी) इस प्रकार किया जाय।

- एक बारा
  - स्टार क्लास
  - मामूली एकबारा
- दुबारा
  - मामूली दुबारा
  - न सुधरनेवाले व पेशेवर दुबारा
  - नैतिक अपराध में सज़ा पाये हुए

६—स्टार क्लास के लिये अलग जेल बनाया जाय। उन्हें खाने बिस्तर और कपड़े के अलावा सब सुविधायें बी० क्लास की दी जायँ। खाने कपड़े और बिस्तर का प्रबन्ध वे अपने ख़र्चे से कर सकें।

७—कम उम्र के लड़के और जवान लड़कों के लिये बोर्स्टल जेल खोला जाय।

८—कोल्हू, गर्रा, चूना, चक्की और रामबाँस की कुटाई की मशक़्क़त बन्द कर दी जाय।

९—जो काम क़ैदियों के लिये नियत कर दिया जाय उससे अधिक काम करने पर उन्हें मज़दूरी दी जाय।

१०—जेल का बना सामान बेचने के लिये लखनऊ में दूकान खोली जाय।

११—चर्खा और तकली पर रुई की कताई हो।

१२—बेंत और डंडा बेड़ी की सज़ा बंद कर दी जाय।

१३—पैंतालीस साल तक की उम्र वाले क़ैदियों के लिये शिक्षा आवश्यक कर दी जाय।

१४—क़ैदियों को आध घंटे तक गाने की आज्ञा हो।

१५—लाइब्रेरी की हालत सुधारी जाय और जेलों में खेल आरम्भ कराये जायँ।

१६—कुछ जेलों में रेडियो लगाये जायँ।

१७—जेलों में सुधार करने के लिये चार इन्सपेक्टर नियुक्त करना चाहिये।

१८—सबेरे के खाने में रोज़ तबदीली हो। दाल की मात्रा एक छटाँक से दो छटाँक की जाय।

१९—क़ैदियों को बीड़ी पीने को दी जाय। जो बीड़ी न पीते हों उन्हें गुड़ दिया जाय।

२०—त्योहारों पर मिठाई और पूरी मिलनी चाहिये।

२१—व्रत या रोज़ा रखनेवाले क़ैदियों को सुविधायें मिलनी चाहिये।

२२—क़ैदियों को जाड़े में दो की जगह तीन कम्बल मिलें।

२३—कपड़ा साफ़ करने के लिये साबुन मिले।

२४—स्टार क्लास के क़ैदियों को हर महीने एक चिट्ठी लिखने की आज्ञा होनी चाहिये। साधारण क़ैदियों को दो महीने में एक चिट्ठी लिखने का अधिकार हो। जितनी चिट्ठी क़ैदियों की आयें वह सब उन्हें मिलें।

२५—स्त्रियों के लिये अलग जेल होना चाहिये, उन्हें सर में

डालने के लिये तेल और पहिनने के लिये साढ़े पाँच गज़ की साड़ी मिले।

२६—चुनार का रिफार्मेटरी स्कूल जेल के मुहकमे के अन्दर कर देना चाहिये।

२७—ग़ैर सरकारी जेल निरीक्षक डिस्चार्ज्ड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी की शिफ़ारिश पर बनाये जावें।

यू० पी० गवर्नमेन्ट ने सन् १९३८ में तीन क़ानून और बनाये। पहिला क़ानून पहिली मर्तबा जुर्म करने वाले की प्रोबेशन या आज़माइशी रिहाई के लिये था। किसी भी मुजरिम को उसकी उम्र, चाल चलन, पिछला रहन सहन, शारीरिक और मानसिक, हालत और जुर्म को देखते हुए जेल की सज़ा के बदले कुछ नियमों के साथ ज़मानत और मुचलके पर कुछ दिनों के लिये रिहा किया जा सकता है। २४ साल से कम उम्र वाले मुजरिमों को प्रोबेशन आफ़िसर की निगरानी में छोड़ा जा सकता है। दूसरा क़ानून उन क़ैदियों की रिहाई के विषय में है जिन्हें किसी विशेष बड़े जुर्म में सज़ा नहीं हुई है और जो अपनी सज़ा का तीसरा हिस्सा जेल में काट चुके हैं। ऐसे क़ैदी ज़मानत और मुचलके पर या किसी आदमी की सिपुर्दगी में रिहा किये जा सकते हैं। ये दोनों क़ानून काम में लाये जा रहे हैं। लखनऊ में जेलरों और वार्डरों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया और कैम्प जेल में उनकी शिक्षा के लिए स्कूल खोला गया है।

तीसरा क़ानून बोर्स्टल जेल की स्थापना के विषय में पास हुआ था, जिसमें २१ वर्ष तक के बद्चलन लड़कों की मामूली जेल के स्थान में बोर्स्टल में भेजा जायगा और उन्हें ऐसी शिक्षा दी जायगी या हुनर सिखाये जायँगे जिससे वहाँ से निकल कर वे लड़के ईमानदारी और मेहनत से अच्छे नागरिकों की तरह अपनी ज़िन्दगी बसर कर सकें।

दसवां परिच्छेद

जेल प्रबन्ध व नियम

जेल के प्रबन्ध में तीन विशेष बातों पर ध्यान रखना पड़ता है।

१—जेल जहाँ तक होसके अपना ख़र्च अपने आप निकाल सके।

२—क़ैदियों का सुधार हो जिससे वे छूटने पर अच्छे नागरिक बन सकें।

३—क़ैदियों को जेल के अन्दर सुरक्षित रखें जिससे वे जेल से भागकर समाज की और अधिक हानि न करें।

जेल के प्रबन्ध में बहुत सी कठिनाइयाँ हैं जिससे ऊपर लिखी हुई बातें सहज में पूरी नहीं हो सकतीं। जेल के अन्दर एक अच्छी खासी आबादी होती है जो बाहर के स्वतंत्र आदमियों से अलग रहती है। इसके अन्दर रहनेवाले अपने माँ, बाप, स्त्री-बच्चों और मित्रों से अलग रखे जाते हैं। मर्द औरतों से और औरतें मर्दों से अलग रहती हैं। क़ैदी प्रायः क़रीब क़रीब एक ही उम्र के होते हैं। यहाँ की रहन-सहन घरों के रहन-सहन से बिल्कुल जुदा होती है और जिन बातों का असर

आदमी पर स्वतंत्र समाज में पड़ता है उनका असर क़ैदियों पर नहीं पड़ता। फिर जेल के भीतर अद्भुत प्रकार की आबादी होती है। लोग अपनी इच्छा के विरुद्ध वहाँ रखे जाते हैं। उनकी इच्छा होती है कि जल्दी से जल्दी वहाँ से निकल जायँ। वे सब क़ानून के शिकार होते हैं इस कारण समाज की नज़र में उन पर सदा के लिये धब्बा लग चुका होता है। क़ैदी सभी तरह के होते हैं—पक्के दुबारा, आकस्मिक जुर्म करनेवाले, ठीक बुद्धि वाले, कम बुद्धि वाले, बुरी आदतों वाले, इन सभी प्रकारों के लोग जेलों में आते हैं। हर एक क़ैदी कोई न कोई क़ानून जिसे समाज ने अपनी रक्षा के लिये बनाया है, तोड़ कर वहाँ पहुँचता है। ऐसे आदमियों से यह भी आशा की जाती है कि वे जेल में ऐसा काम करेंगे कि जेल अपना ख़र्चा आप सहन कर सके। किन्तु अधिकतर जेलों में क़ैदियों के पास वह आर्थिक प्रलोभन नहीं होता जिसके कारण आदमी काम करता है। साधारण आदमी खाने पहिनने रहने के लिये काम करता है। किन्तु जेल में क़ैदी इस कारण काम करता है कि उसे आराम मिले या सज़ा न मिले।

फिर जेल में उन्हें इस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिये जिससे वे ठीक सामाजिक ज़िन्दगी बसर कर सकें किन्तु फिर भी उन्हें जेल में चुपचाप रहना पड़ता है, और ऐसे नियमों का पालन करना पड़ता है जिससे उनकी और बाहर वालों की ज़िन्दगी में ज़मीन आसमान का अन्तर है।

आपस का सामाजिक बर्ताव जो बाहर होता है उसका जेल में कहीं पता भी नहीं है। जेल में भिन्न भिन्न लोग बिना किसी सामाजिक या आर्थिक मेल के रहते हैं, और फिर जेल के अधिकारियों से आशा की जाती है कि इन पर पहरा दें, इन्हें खाना कपड़ा दें, इनसे काम करायें, इनका बीमारी में इलाज़ करायें, नियम का पालन न करने पर सज़ा दें और इस तरह इन्हें रखें कि जनता पर इनका कम से कम भार पड़े और जब यह लोग छूटकर जायँ तो समाज में सच्चरित्र नागरिकों की भाँति रहें। यह वास्तव में कितना कठिन काम है।

जेल का प्रबंध सभी देशों में करीब करीब एक ही तरह चलाया जाता है। छोटी छोटी बातों में अन्तर अवश्य है। अधिकारियों के पदों को भिन्न भिन्न नामों से पुकारा जाता है। अमेरिका में जेल के बड़े अफ़सर को वार्डन, इङ्गलैंड में गवर्नर और हिन्दुस्तान में सुपरिनटेनडेन्ट कहते हैं।

अपने सूबे यू० पी० में जेल का मुहकमा अब तक जुडिशियल क्रिमिनल डिपार्टमेन्ट के मातहत था और अभी हाल ही में इसका एक अलग डिपार्टमेन्ट बनाया गया है। यह महकमा जेल मंत्री के मातहत होता है। आजकल गवर्नर के होम डिपार्टमेन्ट के एडवाइज़र के मातहत है। अब तक यह मुहकमा जूडिशल सेक्रेटरी के हाथ में था। किन्तु अब होम सेक्रेटरी को सौंप दिया गया है। जेलों का सबसे बड़ा अफ़सर इन्सपेक्टर जेनरल कहलाता है। इस सूबे के इन्सपेक्टर जेनरल

का दफ़्तर लखनऊ में है और सूबे के जेलों की देखरेख प्रबन्ध और जाँच पड़ताल इन्हीं के हाथ में है। इस सूबे में ५५ जेलें हैं। लखनऊ, आगरा, इलाहाबाद (नैनी), बनारस, बरेली, फ़तेहगढ़ इन छः जगहों पर सेन्ट्रल जेलें हैं। इनमें १००० से अधिक क़ैदियों के रहने की जगह है। बरेली में एक लड़कों के लिये जेल है जिसे जूविनाइल जेल कहते हैं।। डिस्ट्रिक्ट जेलों को आबादी के विचार से पाँच दर्जों में बाँटा गया है।

बरेली, आगरा, लखनऊ, फ़ैज़ाबाद, ग़ाज़ीपुर, गोरखपुर गोंडा, मेरठ, रायबरेली, सीतापुर में पहले दर्जे के जेल हैं। इनमें ५०० से अधिक क़ैदियों के रहने की जगह है।

अलीगढ़, आज़मगढ़, बहराइच, बाराबंकी, बस्ती, बिजनौर, बदाऊं, कानपुर, एटा, इटावा, फतेहगढ़, फतेहपुर, हरदोई, जौनपुर, खीरी, मैनपुरी,मुरादाबाद, मथुरा, प्रतापगढ़, सहारनपुर, शाहजहानपुर, सुलतानपुर, उन्नाव में दूसरे दर्जे के जेल हैं। इन जेलों में ३०० से ५०० तक क़ैदियों के रहने की जगह है।

बांदा, बुलन्दशहर, हमीरपुर, झाँसी, मिर्ज़ापुर, मुज़फ़्फ़रनगर, उरई में तीसरे दर्जे के जेल हैं। इनमें १५० से ३०० तक क़ैदी रह सकते हैं।

अलमोड़ा, बलिया, देहरादून और पीलीभीत में चौथे दर्जे के जेल हैं। इन जेलों में १०० से ३०० तक क़ैदियों के रहने की जगह है।

नैनीताल और पौड़ी (गढ़वाल) में पाँचवें दर्जे के जेल हैं। यहाँ १०० क़ैदी तक रह सकते हैं।

बनारस और इलाहाबाद के जेल बन्द करके उनको हवालात कर दिया गया है। किन्तु शिया, सुन्नी, खाकसार और कांग्रेस के आन्दोलन के समय इनको फिर पहिले दर्जे के जेल थोड़े समय के लिये कर दिया गया है।

सेन्ट्रल जेलों में पूरे समय के लिये सुपरिनटेनडेन्ट हैं। यह प्रायः आई० एम० एस० अफ़सर होते हैं।

ज़िला जेलों में ज़िले का सिविल सर्जन ही सुपरिनटेनडेन्ट होता है। ये लोग थोड़ी देर के लिए जेलों में आते हैं। इस बात पर बहुत दिनों से विवाद चल रहा है कि ज़िला जेलों में भी पूरे समय के लिए सुपरिनटेनडेन्ट हों और उनके लिए डाक्टर होना आवश्यक न हो। यू० पी० की कांग्रेस गवर्नमेन्ट ने इस प्रकार की योजना बनाई थी किन्तु लड़ाई छिड़ जाने के कारण उसमें विलम्ब हुआ। इस समय कानपुर और इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट जेलों में पूरे समय के लिए सुपरिनटेनडेन्ट नियुक्त हो गए हैं और दस आदमी और छांटे जारहे हैं जो दो तीन वर्ष काम सीखने के पीछे पूरे समय के लिए सुपरिनटेनडेन्ट बनाये जायँगे।

सेन्ट्रल जेलों में सुपरिनटेनडेन्ट के नीचे डिप्टी सुपरिनटेनडेन्ट होता है। इसके मातहत सर्किल जेलर होते हैं। डिप्टी सुपरिनटेनडेन्ट जेल का कुल काम देखता है। सर्किल जेलर

अपने सर्किलों का कुल काम देखते हैं। उनके नीचे डिप्टी जेलर और क्लर्क होते हैं जो अपने अपने हिस्से का काम करते हैं। कैदियों के ऊपर वार्डर होते हैं जो कैदियों पर पहरा देते हैं और उनसे काम लेते हैं।

ज़िला जेलों में सुपरिनटेनडेन्ट के नीचे का अफ़सर जेलर होता है। जेलर के मातहती में डिप्टी जेलर, क्लर्क और वार्डर होते हैं।

कुछ क़ैदियों को भी जेलों में क़ैदी अफ़सर बना दिया जाता है। यह ऐसे क़ैदी होते हैं जिनकी काफ़ी सज़ा कट चुकी होती है और जिनका जेल में चालचलन अच्छा होता है। यह लोग कानविक्ट वार्डर (पक्का) कानविक्ट ओवर-सियर (नम्बरदार) कानविक्ट नाइट वाचमैन (पहरेदार) कहलाते हैं। पक्का जेल वार्डर की जगह जेल के अन्दर काम करता है। इसे १ रु० महीना तनख़्वाह मिलती है। नम्बर-दार को जेल की दीवार पर पहरा देना पड़ता है या वह क़ैदियों की छोटी टुकड़ी से काम करवाता है। पक्के और नम्बरदार की पोशाक सादे क़ैदियों से अलग होती है और इन्हें सज़ा में छूट अधिक मिलती है। पहरेदार रात को बारिक में कैदियों पर पहरा देते हैं।

हर जेल में डाक्टर होता है। क़ैदियों के बीमार होने पर उनका इलाज करता है। क़ैदियों की तन्दुरुस्ती का ध्यान रखता है। जेल की सफ़ाई की ज़िम्मेदारी उसी की होती है

और जेल के खाने की चीज़ों की भी वह जाँच करता है।

सज़ा पड़ने के बाद जब जेल में क़ैदी पहिले पहल जाता है तो उसकी जेल के फाटक पर तलाशी ली जाती है। अगर कोई ऐसी चीज़ उसके पास हुई जिसके रखने की जेल में आज्ञा नहीं है तो वह अलग कर दी जाती है। फिर उस क़ैदी की लिखा पढ़ी होती है उसका नाम, पिता का नाम, पता, जुर्म, इजलास का नाम, सज़ा की मियाद, उसकी हुलिया वग़ैरह एक रजिस्टर पर लिखी जाती है और उसके अंगूठे का निशान भी लिया जाता है। उसे जेल के कपड़े पहिनने को मिलते हैं, जेल का बिस्तर, ओढ़ने बिछाने का सामान, खाने पीने के बर्तन दिये जाते हैं और उसके निज के कपड़े और सामान रजिस्टर में चढ़ाकर अच्छी तरह बाँधकर रख दिए जाते हैं और जेल में जमा रहते हैं।

जेल में साधारण क़ैदियों को दो कुर्ते, दो जांघिए, एक तौलिया, एक टोपी और एक फर्श गर्मी में पहिनने को मिलता है। जाड़े में एक कम्बल का कोट मिलता है गर्मी में एक कम्बल और एक चादर, और जाड़े में तीन कम्बल ओढ़ने बिछाने के लिए मिलते हैं। खाने पीने के लिए एक तसला और एक कटोरी मिलती है। यह बर्तन सब पीतल के मिलने लगे हैं, पहिले लोहे के मिलते थे।

उसके बाद जेल में क़ैदी की डाक्टरी जाँच होती है। उसकी लम्बाई और सीना नापा जाना है और वज़न लिया

जाता है। ख़ास ख़ास बीमारियों से पीड़ित क़ैदियों को ख़ास तरह के कपड़े दिए जाते हैं जिससे यह मालूम होजाय कि अमुक क़ैदी को अमुक बीमारी है और जेल में काम देते समय उसका ध्यान रखा जा सके। क़ैदियों की तोल हर पंद्रह दिन बाद होती है और जिन क़ैदियों का वज़न घटता है उनको दूध इत्यादि भी खाने को दिया जाता है।

हर क़ैदी का एक टिकट बनाया जाता है जिसे हिस्ट्री टिकट कहते हैं। इस टिकट पर क़ैदी के विषय में सब आवश्यक बातें लिखी रहती हैं। जेल में उसका कैसा चाल-चलन रहा, उसकी कैसी तन्दुरुस्ती रही, क्या काम उसने किया और कितनी छूट उसको मिली, ये सभी बातें टिकट पर भर दी जाती हैं। डाक्टरी परीक्षा के बाद क़ैदी जेल के सुपरिनटेनडेन्ट के सामने मुआइने के लिए जाता है और जेल सुपरिनटेनडेन्ट क़ैदी की तन्दुरुस्ती देखते हुए उसे काम करने को देता है।

क़ैदियों के रहने के लिए जेल के अन्दर वार्ड होते हैं। एक़ तरह के क़ैदी एक वार्ड में रखे जाते हैं। हवालाती क़ैदी, दीवानी के क़ैदी, इकबारा क़ैदी, दुबारा क़ैदी, लड़के, औरतें और होसके तो राजनैतिक क़ैदी अलग अलग वार्डों में रखे जाते हैं और उन्हें नियमानुसार एक दूसरे से मिलने की आज्ञा नहीं होती। वार्डों के अन्दर बारिकें बनी होती हैं। इन्हीं बारिकों में क़ैदी बन्द किये जाते हैं। एक बारक में ६०, ७० तक क़ैदी बन्द किए जाते हैं। हिन्दुस्थान के जेलों में क़ैदियों को अलग अलग

बन्द करने का रिवाज नहीं है। अदालत से अकेला क़ैद की सज़ा पाये हुए क़ैदी तथा वे क़ैदी जिन्होंने जेल के नियम के विरुद्ध आचरण किया हो वे ही कोठरियों में सज़ा के लिए रखे जा सकते हैं। बारिक के अंदर सोने के लिए मिट्टी या सीमेंट के चबूतरे साढ़े छः फुट लम्बे और ढाई फुट चौड़े बने होते हैं। बीमार क़ैदियों को अस्पताल में रखा जाता है और वहाँ उन्हें लोहे की गद्देदार चारपाई मिलती है। छूत की बीमारी वाले क़ैदियों को अलग बन्द किया जाता है। जेल में जगह कम होने पर और क़ैदियों की तादाद अधिक होने पर उन्हें बरामदे या तम्बुओं के अन्दर रखा जाता है और उनके पैरों में बेलचैन डाल दी जाती है जिससे वह भाग न सकें। ए० या बी० क्लास के क़ैदी भी अलग रहते हैं। जेल में क़ैदियों से काम लिया जाता है। हवालाती क़ैदी, दीवानी के क़ैदी या उन क़ैदियों से जिन्हें महज़ सज़ा का हुक्म हुआ हो, कोई काम काम नहीं लिया जाता और वे अपने कपड़े पहन सकते हैं। फाँसी की सज़ा के क़ैदियों से भी कोई काम नहीं लिया जाता। बीमार क़ैदियों को काम से छुट्टी मिल जाती है और कमज़ोर क़ैदियों से हल्का काम लिया जाता है। बाक़ी सब क़ैदियों को काम करना पड़ता है। जेल के सभी काम क़ैदी ही करते हैं। क़ैदियों का खाना पकाना और बाँटना, जेल की सफ़ाई, झाड़ू लगाना, नाली साफ़ करना, पाख़ाना उठाना, बग़ीचे में काम करना, कुएँ से पानी खींचना, चक्की से आटा पीसना, कोल्हू

से तेल निकालना, जेल में पहरा देना, यह सब काम क़ैदी ही करते हैं। अब तेल निकालने की मशीन लखनऊ सेन्ट्रल जेल में लग गई है और प्रायः पानी खींचने का काम बैलों से लिया जाता है। इस कारण इन दो कामों से प्रायः क़ैदियों को छुट्टी मिल गई है। बढ़ई और लोहारी का काम, बैरकों और जेल की मरम्मत और पोताई, जेल के सामान की मरम्मत, अस्पताल में मरीज़ों की तीमारदारी भी क़ैदी ही करते हैं। इसके अतिरिक्त जेल में अनेकों उद्योग धंधे होते हैं, वहाँ भी क़ैदी ही काम करते हैं। कपड़ा बुनना, नेवाड़ बुनना, जूता बनाना, मूंज की चटाइयाँ व चिकें बनाना, दर्ज़ीगीरी का काम, कालीन और दरी बुनना जेलों में अच्छा किया जाता है। गर्रा, चक्की और कोल्हू की मेहनत सबसे कड़ी है। शुरू में क़ैदियों से यही काम लिया जाता है जैसा ऊपर बताया है अब गर्रे और कोल्हू का काम क़ैदियों को कम करना पड़ता है किन्तु आटा पीसने का काम तो प्रायः करना ही पड़ता है।

जेल के अन्दर जेल के क़ानून और नियम को न मानने पर क़ैदियों को सज़ा भी दी जा सकती है। अच्छा काम करने पर उन्हें क़ैदी अफ़सर बना दिया जाता है और सज़ा में छूट भी मिलती है। जेल में वहुत से काम जुर्म माने जाते हैं। काम न करना, कम काम करना, ख़राब काम करना, जेल के अफ़सरों का हुक्म न मानना, बेअदबी करना, साफ़ न रहना, जेल की चीज़ों को हानि पहुँचाना, जिन चीज़ों के रखने की

मुमानियत है उन्हें मँगाना, रखना या करना इत्यादि सब जेल जुर्म हैं। तम्बीह करना, हथकड़ी डालना, बेड़ी डालना, कोठरी में अलग बन्द रखना, छूट के दिन कम कर देना इत्यादि सज़ायें जेल में दी जाती हैं। भारी जुर्म में गवर्नमेंट की आज्ञा से बेंत की सज़ा भी दी जा सकती है और कभी कभी क़ैदियों पर दुबारा अदालत द्वारा मुक़द्मा भी चलाया जा सकता है।

एक जेल से दूसरी जेल को क़ैदियों का तबादला भी किया जा सकता है। यह तबादला प्राय: जेल में आबादी कम करने के लिए किया जाता है। लम्बी सज़ा वाले क़ैदी सेंट्रल जेल भेजे जाते हैं। ख़ास काम में निपुण क़ैदी उसी जेल में भेज दिए जाते हैं जिस जेल में वह काम होता है। यू० पी० भर के दर्जियों को कानपुर जेल भेजा जाता है किन्तु अब यह दर्जी का कारखाना उन्नाव जेल में लाया जा रहा है और ऐसे क़ैदी अब उन्नाव भेजे जाया करेंगे। क्षय रोग के क़ैदियों को सुलतानपुर जेल भेजा जाता है और कोढ़ियों को रायबरेली जेल में रखा जाता है। सरकश क़ैदियों को उनके ज़िले के जेल में नहीं रखा जाता है।

जेल में क़ैदियों को अपनी सज़ा के विरुद्ध अपील करने की सुविधा दी जाती है। उनकी अपील जेल में लिखी जा सकती है और अपीलवाली अदालत में भेज दी जाती है। थोड़े दिनों के बाद लम्बी मियाद के क़ैदियों की सज़ा की

जांच होती है और अगर उनका चालचलन जेल में ठीक रहा हो और यह आशा हो कि बाहर जाकर वे फिर कोई जुर्म नहीं करेंगे तो उन्हें जेल से छोड़ा भी जा सकता है।

ग्यारहवां परिच्छेद

क़ैदियों का वर्गीकरण

क़ैदियों का उचित वर्गीकरण और एक वर्ग को दूसरे वर्ग से अलग रखना जेल के मुहकमे का नियम है। हर विद्वान ने इस बात को मान लिया है कि विना इस रीति से अलग किये न तो जेल का प्रबन्ध ही ठीक हो सकता है और न क़ैदियों का सुधार ही हो सकता है। इस विषय पर विचार करने के लिये कई बार अन्तर्राष्ट्रीय कानफ्रेन्सें हुईं और उन सबमें यही तय हुआ कि सबसे ख़राब और न सुधरने वाले क़ैदियों को बिलकुल अलग रखना चाहिये जिससे वे दूसरे क़ैदियों को बिगाड़ न सकें और इसी तरह यह भी आवश्यक है कि सबसे अच्छे क़ैदियों को जिनके लिये यह आशा की जा सकती है कि वे सुधर जायेंगे उनको भी जेल में बिलकुल अलग रखा जाना चाहिये जिससे और क़ैदी उन्हें खराब न करदें। ख़राब क़ैदियों की पहिचान उनके पिछले कारनामों और उनके जेलों के चालचलन पर होनी चाहिये। सन् १९०० की कानफ्रेन्स में यह भी तय किया गया था कि ख़राब क़ैदियों के साथ जेलों में बरताव भी सख़्त होना चाहिये और इस पर

भी सब एकमत थे कि ऐसे ख़राब क़ैदियों का इलाज लम्बी सज़ा के सिवाय और कुछ नहीं है। किन्तु फिर भी बहुत से देशों में और हिन्दुस्थान में भी, दुबारा और एकबारा क़ैदियों के काम और रखने की रीति में और इनाम आदि में भेद है।

हिन्दुस्थान में सबसे पहिले क़ैदियों के वर्गीकरण का प्रश्न सन् १८७७ की जेल जांच कमेटीके सामने पेश हुआ। दुबारा या आदतन क़ैदी की परिभाषा में उस कमेटी में एकमत न हो सका। परन्तु वह इस बात पर एकमत थी कि सबसे ख़राब क़ैदी अन्य क़ैदियों से अलग रक्खे जायँ। सबसे ख़राब क़ैदियों से उनका मतलब उन आदतन और दुबारा क़ैदियों से था जो चाहे पहिली मर्तबा सज़ा पाये हुए हों परन्तु उन्हें ऐसे जुर्मों में सज़ा मिली हुई हो कि जिनके सम्पर्क से एकबारा क़ैदियों को बिगड़ जाने की सम्भावना हो। भारत सरकार ने इस विषय पर आगे सोच विचार किया और सूबों की राय लेकर सन् १८८४ में दुबारा क़ैदी की परिभाषा बनाई। १९२० की कमेटी ने दुबारा क़ैदी की परिभाषा में परिवर्तन की सलाह दी जो गवर्नमेंट ने मान ली। इन तजवीज़ों का नतीजा यह हुआ कि जेल में दुबारा और एकबारा क़ैदियों के बरताव में काफ़ी भेद आ गया। दुबारा क़ैदियों को नीलीधारी की पोशाक पहिनने को दी जाने लगी, उन्हें अलग जेल या जेल के अलग बाड़े में रखा जाने लगा। क़ैदी अफ़सर बनने के लिये दुबारा क़ैदियों को मनाही कर दी गई, उनको सख़्त मेहनत दी जाने

लगी और उन्हें एकबारा क़ैदियों से बिलकुल अलग रक्खा जाने लगा।

क़ैदियों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। वर्गीकरण की जो रीतियाँ असफल साबित हुईं उन्हें छोड़ दिया गया। कुछ रीतियाँ आज भी काम में लाई जा रही हैं। सन १८१५ में मिस्टर एब्डी ने न्यूयार्क जेल में क़ैदियों को तीन दर्जे में बांटा। यह बटवारा इसलिये किया गया था कि जिससे क़ैदी जेल में मेहनत करें, नियम पर चलें और सुधरें। क़ैदियों के चालचलन और उनके बरतावे पर उनका दर्जा निर्भर रहता था। सबसे अच्छे क़ैदी पहिले दर्जे में रखे गये थे। इसी दर्जे के क़ैदियों की सज़ा माफ़ की जा सकती थी। इस जेल में यह भी निश्चय किया गया था कि जो क़ैदी अपनी सज़ा अच्छे प्रकार से काट कर छूटें उन्हें रिहाई के समय एक नेकचलनी का सार्टिफिकेट भी दिया जाया करे।

१८२८ में फ़िलेडिलफ़िया में बच्चों के लिये एक अनाथालय खोला गया। शुरू में यह ग़ैर सरकारी संस्था थी। यहाँ के रहनेवालों का वर्गीकरण किया गया था। इस वर्गीकरण में इसका विचार रखा जाता था कि लड़के की उम्र क्या है, कितना बिगड़ा हुआ है और उसके सुधरने की कितनी आशा है। फिर पीछे को अमेरिका में पागलों के लिये अस्पताल बन गया तब पागल क़ैदियों का भी विभाजन किया गया। पागलों में भी दुबारा छटनी की गई। कितनी तरह के पागल मुजरिम

होते हैं। अधिक पागल, कम पागल और कम बुद्धि वालों को क्रमशः अलग अलग छांटा गया और उनको अस्पतालों में इलाज के लिये रखा गया।

आजकल भी जेलों में क़ैदियों को अलग अलग दर्जों में छांटा जाता है परन्तु आज कल के तरीक़े पुराने तरीक़ों से भिन्न है। जुर्म लोग क्यों करते हैं, इसकी जानकारी आजकल काफ़ी हो चुकी है। इस विज्ञान ने यह साफ़ कर दिया है कि उम्र, जेल में नेकचलनी और जुर्म का भारी या हलकेपन पर मुनासिब वर्गीकरण क़ैदियों का नहीं हो सकता है। यह पता चला है कि क़ैदियों का विभाग उस रीति से नहीं हो सकता जिस रीति से फ़ौजदारी के क़ानून में जुर्मों का विभाग किया गया है। बहुत से आदमियों में शारीरिक रोग या कमियाँ होती हैं जिसके कारण वे जुर्म करने लगते हैं। क़ैदियों के स्वभाव में भेद होता है। एक ही बात से उनके चित्त पर भिन्न भिन्न असर पड़ता है। उनकी तन्दुरुस्ती एकसी नहीं होती। कुछ अपने पेशे में चतुर और कुछ मन्द होते हैं। कुछ आदमियों में आत्मसंयम की मात्रा कम होती है। आजकल जांच से मालूम पड़ा है कि इन सब बातों का आदमियों पर बड़ा असर पड़ता है और इन्हीं कारणों से वे जुर्म करते हैं। इसीलिये जेलों में अगर क़ैदियों का वर्गीकरण किया जाय तो क़ैदियों के शारीरिक, मानसिक और शिक्षा के भेद पर विचार रखते हुए ही करना चाहिये। सन् १९३० में न्यूयार्क

जेल में क़ैदियों की जांच हुइ थी। इस कमेटी ने यह राय दी कि क़ैदियों का नई तरह से वर्गीकरण होना चाहिये। बच्चों, स्त्रियों और पागलों को जेल में न रखना चाहिये, यह पहिले की कमेटी की राय थी। इस जाँच कमेटी ने इस राय को मान लिया और यह सलाह दी कि बच्चों, औरतों और पागलों को रखने के लिये अलग जगह होना चाहिये। बाक़ी क़ैदियों का उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति और शिक्षा तथा हुनर देखते हुए वर्गीकरण होना चाहिए। उन्होंने यह भी सलाह दी कि न्यूयार्क की मशहूर सिंगसिंग जेल में इस तरह का वर्गीकरण शुरू कर दिया जाय, वहाँ सब तरह के क़ैदियों को भेजा जाय और उन्हें उनके योग्य दर्जों में रख दिया जाय। जो क़ैदी बीमार हों और जिन्हें इलाज या चीरफाड़ की आवश्यकता हो उनका इलाज कराया जाय और जब वे अच्छे हो जायँ तब उनका ठीक वर्गीकरण कर दिया जाय। क़ैदियों की जाँच के लिये वहाँ एक छोटी फैक्टरी खोली जाय जिसमें उनको सिखाया भी जाय और जहाँ उनकी बुद्धि और मानसिक दशा की भी जाँच हो और इस जाँच के बाद जो पागल या बौड़म या कम बुद्धिवाले निकलें उन्हें उनके योग्य स्थानों में भेज दिया जाय जहाँ उन्हें ठीक रीति से रखा जा सके।

इस जाँच कमेटी ने क़ैदियों को छः वर्गों में बाँटने की राय दी थी—

१—मामूली या क़रीब क़रीब ठीक क़ैदी जो ऐसे जेलों में

भेजे जायँ जहाँ रहकर जेल के काम, पढ़ाई लिखाई और अन्य कार्यक्रम से अधिक से अधिक लाभ उठा सकें।

२—ऐसे क़ैदी जिन्हें कोई ऐसा शारीरिक या मानसिक रोग हो जिसका इलाज हो सकता हो। यह सिंगसिंग जेल में रोक लिये जायँ और उनका इलाज करा दिया जाय।

३—पागल क़ैदी पागल मुजरिमों के ख़ास अस्पतालों में भेजे जायँ।

४—ऐसे क़ैदी जिन्हें कोई स्वाभाविक या मानसिक रोग हो और जिनकी चरित्र सम्बन्धी ख़ास शिकायतें हों उनकी विशेष योग्य डाक्टरों द्वारा जाँच की जाय और जिन्हें जब तक उनके लिये ठीक प्रबन्ध न हो जाय वहीं रखा जाय।

५—जिन्हें ऐसे शारीरिक रोग हों जिनका अच्छा होना असम्भव हो। उन्हें भी सिंगसिंग जेल में रोक लिया जाय।

इङ्गलैंड में क़ैदियों का वर्गीकरण तीन प्रकार का है। (१) स्टार क्लास (२) स्पेशल क्लास (३) मामूली।

१—स्टार क्लास में वे क़ैदी रखे जाते हैं जिन्हें पहिली मर्तबा सज़ा होती है और जिनका जुर्म संगीन नहीं होता है और जिनकी आदतें पूरे तौर पर ख़राब नहीं पड़ी हैं, इस क्लास के क़ैदियों को औरों से अलग रखा जाता है।

२—स्पेशल क्लास में वे क़ैदी रखे जाते हैं जिनकी उम्र ३० साल से कम है और जो जेल की सज़ा पहिली मर्तबा काट रहे हैं। किन्तु जिनके ऊपर पहिले कई मर्तबा जुर्म साबित हो

चुका हो या जिनकी पिछला जीवन ऐसा हो जिससे वे स्टार क्लास में रखने के क़ाबिल न हों। परन्तु उनका स्वास्थ्य या बुद्धि ख़राब नहीं होना चाहिए। इस क्लास के बनाने का उद्देश्य यह है कि कम उम्र और अच्छे स्वास्थ्य और अच्छी बुद्धि वाले ऐसे क़ैदियों को जिनकी आदतें जुर्म करने की पड़ चुकी हैं, पक्के पेशेवर क़ैदियों या कमज़ोर या बीमार क़ैदियों से अलग रखकर उनसे ऐसा काम लिया जाय या उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय जो उनकी उम्र और चालचलन के योग्य हो।

३—मामूली क़ैदी—इस क्लास में वे क़ैदी रखे जाते हैं जो उपरोक्त दोनों दर्जों में नहीं आते। इस दर्जे में पक्के दुबारे क़ैदी भी शामिल हैं जो बराबर जुर्म करके जेल जाते हैं और वे भी क़ैदी शामिल हैं जो कम बुद्धि वाले हैं। ६७ साल से अधिक उम्र वाले क़ैदी भी इस दर्जे में शामिल हैं। परन्तु इनको अलग रखा जाता है।

यू० पी० के क़ैदियों का अभी तक वर्गीकरण केवल एकबारा और दुबारा क़ैदियों में होता है। एकबारा क़ैदियों में वे भी क़ैदी शामिल किये जाते हैं जिन्हें पहिली मर्तबा सज़ा हुई हो या जिन्हें ऐसे मामले में पहिले सज़ा हुई हो जिसमें कोई नैतिक अपराध न हुआ हो। यानी अगर किसी आदमी को पहिले मारपीट में सज़ा हुई हो और दुबारा चोरी में तो वह एकबारा ही माना जायगा। दुबारा क़ैदियों में वे क़ैदी शामिल किये जाते हैं जिन्हें दो या अधिक मर्तबा किसी ऐसे जुर्म में सज़ा

हुई हो जिसमें कोई नैतिक अपराध हुआ हो या जिन्हें किसी ऐसे जुर्म में सज़ा हुई हो चाहे पहिली ही मर्तबा क्यों न हुई हो जिससे यह प्रकट हो कि यह आदमी स्वभावतः जुर्म करता रहा है। यदि किसी आदमी को ताज़ीरात हिन्द दफ़ा ४०० यानी डाकुओं के दल में शामिल होने के अपराध में या दफ़ा ११० ज़ाब्ता फ़ौजदारी में ज़मानत न देने के कारण पहिली मर्तबा ही जेल हुई हो तो वह क़ैदी दुबारा ही माना जायगा। दुबारा या एकबारा का वर्गीकरण करने का अधिकार सज़ा देनेवाली अदालत ही को है। किन्हीं दशाओं में जेल के अफ़-सरों को भी अधिकार होता है कि वे क़ैदियों का वर्गीकरण कर सकें। क़ैदियों को भी वर्गीकरण के विरुद्ध सूबे की सरकार से अपील करने का अधिकार है।

यू० पी० में कांग्रेस गवर्नमेंट ने जो वर्गीकरण की तज-वीज़ की थी उसमें एकबारा क़ैदियों को दो वर्गों में बाँटा था। पहिला स्टार क्लास और दूसरा मामूली एकबारा। दुबारा क़ैदियों को तीन वर्गों में बाँटा था।

(१) मामूली दुबारा। (२) पेशेवर दुबारा। (३) न सुधर सकने वाले दुबारा।

सुधार कमेटी की यह भी तजवीज़ थी कि इन क़ैदियों को अलग अलग जेलों में रखा जाय और उनके साथ भिन्न भिन्न बर्ताव किया जाय। इस तजवीज़ के अनुसार अब दुबारा क़ैदी बरेली और नैनी सेन्ट्रल जेलों में रखे जाते हैं।

आजकल सज़ा का उद्देश्य समाज की रक्षा और क़ैदियों का सुधार करना दोनों ही हैं। अब सज़ा का उद्देश्य बदला लेना या दूसरों को भय दिलाना नहीं माना जाता। अब सज़ा का उद्देश्य है क़ैदियों को उचित नागरिक शिक्षा देना, उनको ऐसे हुनर सिखाना जिससे वे जेल से छूटकर अच्छे नागरिक और मेहनती आदमी बन सकें और समाज के ऊपर भार रहने के स्थान में अपना और अपने बीबी बच्चों का निर्वाह कर सकें। यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब क़ैदियों और मुजरिमों की भली भाँति छानबीन करके उनका उचित वर्गीकरण किया जाय और फिर उसी वर्गीकरण के अनुसार उन्हें रखा जाय। इस कारण यह आवश्यक है कि क़ैदियों के जुर्म करने के कारणों की जाँच पड़ताल की जाय और फिर उनको इस तरह रखा जाय कि वे सुधर जायँ और समाज की हानि न कर सकें। सबसे पहिला वर्ग तो बच्चों का है जो जुर्म करते हों या ऐसी दशा में पाये जायँ जिसमें सम्भव है कि वे जुर्म करें। ऐसे बच्चों की उम्र अगर १५ वर्ष से कम होती है तो उन्हें जेल में नहीं भेजा जाता है किन्तु रिफारमेटरी स्कूलों में भेजा जाता है। जो लड़के जवान १५ वर्ष से २१ वर्ष तक के होते हैं। उनको भी जहाँ तक हो सकता है जेल नहीं भेजा जाता है किन्तु उन्हें बोर्स्टल ढंग की संस्थाओं में रखा जाता है। बालिग़ क़ैदियों को अकसर जेलों में ही रखा जाता है। जिन लोगों का दिमाग़ ख़राब है या जो

पागल या कम बुद्धि वाले हैं और जुर्म करते हैं, उनको जेल भेजने की जगह पागलखानों या ऐसी ही अन्य संस्थाओं में रखा जाता है। हिन्दुस्थान और यू० पी० में भी कुछ क़ौमें ऐसी हैं जिनका पेशा ही जुर्म करना है, उन्हें जरायम पेशा क़ौमों की विशेष संस्थाओं 'सेटलमेंट' में रखकर उन्हें सुधारने की कोशिश की जाती है। आगे के अध्याय में अलग अलग वर्गों के मुजरिमों के विषय में विशेष वर्णन किया जायगा।

बारहवां परिच्छेद

मुजरिम बच्चे

जहाँ तक जुर्म और सज़ा का सम्बन्ध है, १०० साल के क़रीब हुआ बच्चों और बड़ों में कोई अन्तर नहीं था। एकसा जुर्म करने पर बच्चों और बड़ों को एक ही सी सज़ा दी जाती थी। एक ही अदालत में मुकदमा होता था, वैसे ही पुलिस, उनको पकड़ती थी और हथकड़ी व एक ही तरह बेड़ी पहिने रस्सी से बंधे हुए अदालत में लाये जाते थे और जेलों में उन्हें सभी तरह के क़ैदियों के साथ रखा जाता था। छोटे छोटे बच्चों को भी जेब काटने के जुर्म में मौत की सज़ा और मामूली जुर्म पर देश निकाले की सज़ा होती थी। परन्तु पिछले ५० साल के भीतर छोटे बच्चों और जुर्मों के सम्बन्ध में बहुत छानबीन हुई है और बच्चों के विषय में विचारों में बहुत परिवर्तन हुआ है और बच्चे क़ैदियों के लाभ के लिए बहुत सी उपयोगी संस्थायें बनाई गई हैं। इस विषय में भी सुधार अमेरिका ही से आरम्भ हुआ था। किन्तु दुनियाँ के अब सभी देशों में फैल गया है।

पहिले समझा जाता था कि जुर्म करनेवाला मनुष्य जन्म

से ही मुजरिम होता है। माँ के गर्भ में ही बच्चों के संस्कार निश्चित हो जाते हैं। उनके भाग्य में यह लिखा होता है कि वे जुर्म करें। जुर्म करना उन्होंने पैदा होते ही सीखा है और वे यदि जीवित रहेंगे तो उम्र भर जुर्म करेंगे, इसलिए यह अच्छा है कि उन्हें सदा के लिए समाज से अलग कर दिया जाय। उनका सुधार करना असम्भव है। परन्तु यह धारणा अब ग़लत साबित करदी गई है। यह बात कहना ग़लत है कि बच्चे पैदाइशी मुजरिम हो सकते हैं। असल बात यह है कि छोटे छोटे तन्दुरुस्त बच्चे यदि जुर्म करते हैं तो वे उन परिस्थितियों के शिकार होते हैं जिनके ऊपर उनका बस नहीं चलता। उन्हें ऐसे काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है जिसके कारण वह क़ानून के शिकंजे में फंस जाते हैं। क्योंकि बचपन ऐसा समय होता है जब आदतें कच्ची होती हैं और यह आशा की जाती है कि उपयुक्त शिक्षा से वे सुधर जायेंगे इसलिए इस बात से सभी सहमत हैं कि बच्चों के साथ बड़े आदमियों से भिन्न बर्ताव करना चाहिये।

एक लड़का जो चोरी करता है उस चोरी के नौ दस कारण हो सकते हैं जिनसे मजबूर होकर उसने चोरी की है। उन सब कारणों के एक प्रकार के षडयंत्र से लड़का चोरी करता है चाहे एक ही कारण उस समय के लिए मुख्य कारण हो। चौरी के कारण यह हो सकते हैं। १. माता पिता की लापरवाही, २. ख़राब मकान, ३. बुरे साथी, ३. अच्छे खेलों

की कमी, ५. ख़राब शिक्षा, ६. बेकारी, ७ विशेष लालच, ८. ग़रीबी, ९. शारीरिक कज या मानसिक कमज़ोरी। एक लड़का जिसे जीवन में प्यार नसीब नहीं है, या जो अपने को सुरक्षित नहीं समझता, या जिसको शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकती चोरी कर सकता है और इसी बहाने ऐसी चीज़ें पीने की निष्फल प्रयत्न कर सकता है कि जो उसे प्राप्त नहीं है। ऐसे लड़के को जेल में भेजना बेकार है। जेल में जाकर उसकी हालत और आदत दोनों ही बिगड़ सकती हैं। ऐसे बच्चों के जुर्म करने का असली कारण ढूंढ निकालना मुख्य काम है और जब उन कारणों का निरूपण होजाय तो बच्चे का इलाज ठीक तौर पर हो सकता है।

अगर सात साल से कम उम्र का बच्चा कोई भी जुर्म करता है तो उसे किसी तरह की सज़ा नहीं दी जाती और न उसके जुर्म को जुर्म ही माना जाता है। यदि ७ से १२ वर्ष तक के बच्चे की दिमाग़ी हालत ठीक न हो और वह जुर्म करे तो उन्हें कोई सज़ा नहीं दी जाती। फ़ौजदारी के क़ानून में इस बात का ज़िक्र है। बच्चों को जेल से रोकने के लिये संसार के बहुत से देशों में क़ानून बन गये हैं। यह क़ानून बच्चों के क़ानून कहलाते हैं। अंग्रेज़ी क़ानून के अन्दर बच्चे की उम्र १४ वर्ष तक की मानी गई है। अमेरिका में १६ वर्ष तक और कुछ रियासतों में २० वर्ष की उम्र तक बच्चे माने जाते हैं। हिन्दुस्थान के कई सूबों में बच्चों का क़ानून बन गया

है। उसमें भी १६ वर्ष तक की उम्र के लोग बच्चों में गिने जाते हैं। हमारे सूबे यू० पी० में कोई बच्चों के लिये क़ानून नहीं बना है। लेजिसलेटिव कौंसिल में डाक्टर रामउग्रहसिंह ने बच्चों के लिये एक बिल पेश किया था और वह वहाँ स्वीकृत भी हो गया था परन्तु लेजिसलेटिव असेम्बली में बिल पेश होने भी न पाया था कि विधान स्थापित कर दिया गया। यू० पी० में रिफ़ारमेंटरी स्कूल एक्ट अमल में लाया जा रहा है। और जो बच्चे जुर्म करते हैं उन्हें रिफ़ारमेंटरी स्कूल में भेजा जा सकता है। हमारे सूबे में केवल एक ही रिफ़ारमेंटरी स्कूल है जो चुनार में है।

अमेरिका में यदि कोई बच्चा जुर्म करता है तो उसे मुजरिम नहीं माना जाता। और न उसे सज़ा दी जाती है बल्कि यह समझा जाता है कि उस बच्चे के प्रति उसके मां बाप ने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया है और उसे सरकार की मदद की आवश्यकता है। बच्चों के लिये अलग अदालतें होती हैं। इनमें फ़ौजदारी के मुकदमे की तरह काम नहीं होता। जज बच्चे के पिता का स्थान लेता है और यह बात निश्चय करता है कि बच्चे के साथ कैसा बर्ताव किया जाय जिससे वह अपनी बुरी आदतें छोड़ दे। इस तरह के बच्चों को किसी ख़ास जुर्म का दोषी भी नहीं ठहराया जाता केवल उसकी आदतों के बारे में जांच होती है। जैसे दीवानी के मामले में लड़का जब तक बालिग़ न हो जाय तब तक किसी बात का ज़िम्मे-

दार नहीं माना जाता, इसी तरह अमेरिका में यह ख्याल ज़ोर पकड़ता जा रहा है कि जब तक लड़का बालिग़ न हो जाय उसे अपने कार्यों के लिये फ़ौजदारी कानून के अन्दर ज़िम्मेदार न माना जाय। अमेरिका में बच्चों को जेल भेजने की बिलकुल मनाही है।

बच्चों के बारे में इङ्गलैंड ने उतनी उन्नति नहीं की है जितनी अमेरिका में हो चुकी है। फिर भी सन् १९०८ के बच्चों के क़ानून के अन्दर १४ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को जेल की सज़ा नहीं दी जा सकती। १४ वर्ष से अधिक और १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को जेल की सज़ा तभी दी जा सकती है जब अदालत इस बात की तसदीक़ करे कि वह लड़का इतना हुल्लड़बाज और ऊधमी है कि उसे जेल के अतिरिक्त कहीं भी ठीक तरह से नहीं रखा जा सकता। इङ्गलैंड में सन् १९०८ के कानून के पहले एक साल में करीब करीब १००० लड़के जेल भेज जाते थे। कानून पास होने के बाद १२ लड़कों से अधिक जेल नहीं भेजे गये और अब १६ वर्ष से कम उम्र के लड़कों का जेल भेजना बिलकुल बन्द है।

सन् १९२० की जेल कमेटी ने बच्चों के मामले पर ग़ौर किया था और उन्होंने १६ वर्ष से कम उम्र के लड़कों को जेल भेजने के विरुद्ध अपनी राय दी थी। उनका कहना था कि बच्चों और बालिगों की समझ में अन्तर होता है। एक बच्चा अपने काम और उसके नतीजे को ठीक नहीं समझ

सकता। बच्चों के द्वारा अक्सर बड़े संगीन जुर्म हो जाते हैं परन्तु इसका कारण उनकी नासमझी है। यह चीज़ हमारी है, यह दूसरे की है और इसे हमको नहीं लेना चाहिये, इसका ज्ञान धीरे ही धीरे आता है और जो लड़के चोरी इत्यादि जुर्म में पकड़े जाते हैं उनका चोरी करने का कारण उचित शिक्षा का न मिलना ही होता है। तजुर्बे ने यह साबित कर दिया है कि इस तरह की शिक्षा दी जा सकती है और बच्चे सुधर सकते हैं परन्तु इस तरह की तालीम का मिलना जेल में सम्भव नहीं है इसलिए कमेटी ने सिफ़ारिश की कि १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को जेल भेजना बन्द कर दिया जाय तथा मद्रास के बच्चों के कानून की तरह और सूबों में भी क़ानून बनाया जाय।

सन् १६२० के बाद मद्रास के अलावा, बम्बई, सी० पी० और बंगाल में इसी तरह के कानून बन गए। जिन सूबों में बच्चों के लिए अलग कानून नहीं भी बना वहाँ भी बच्चों को जेल की सजा नहीं दी जाती।

जब बच्चों को जेल नहीं भेजा जा रहा है तो उनको मुक़दमे के दौरान में जेल की हवालात में रखना भी उचित नहीं है। पहिले बच्चों के लिये अलग अलग हवालातें नहीं थीं। उन्हें अन्य क़ैदियों के साथ जेल की हवालात में रहना पड़ता था। परन्तु अब अमेरिका और इङ्गलैंड में बच्चों के लिये अलग हवालातें हैं और उनका प्रबन्ध जेल से बहुत बातों में

भिन्न है। मुक़द्मे के दौरान में बच्चों को जेल में रखने से दो बड़ी हानि होती हैं। एक तो बच्चों पर जेल की सख़्ती और वहाँ के क़ायदे क़ानून का बुरा असर पड़ता था और वे बाद को ठीक से उन्नति नहीं कर सकते। दूसरे यह कि बचपन ही में जेल को देख लेने से उन्हें जेल का डर नहीं रहता और वे पीछे बहुत ही ख़राब मुजरिम बन जाते हैं। हिन्दुस्थान में जिन सूबों में बच्चों का क़ानून अमल में आ रहा है वहाँ बच्चों के लिये अलग हवालात बनाये गये हैं। इन हवालातों को रिमान्ड होम भी कहते हैं। जब कोई बच्चा कोई जुर्म करते पकड़ा जाता है, या अनाथ हालत में अथवा भीख माँगते हुए या किसी बुरे आदमी के संग में पाया जाता है, तो वह पहिले रिमाण्ड होम में ही भेजा जाता है। रिमान्ड होम में प्रोबेशन आफ़िसर होते हैं जो बच्चे की उम्र, चालचलन, पिछले रहन सहन, साथी, आदतें इत्यादि के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करते हैं और जब बच्चा अदालत में मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाता है तब वेही रिपोर्ट देकर अपनी सिफ़ारिश पेश करते हैं कि अब बच्चे के साथ क्या सलूक किया जाय। कुछ बच्चे छोड़ दिये जाते हैं, कुछ अपने माँ बाप या अपने सरपरस्त के पास वापस भेज दिये जाते हैं, कुछ प्रोबेशन (आज़माइशी रिहाई) प छोड़ दिये जाते हैं अ र कुछ को रिफ़ारमेटरी या अन्य इसी तरह के प्रमाणित स्कूलों में शिक्षा के लिये भेज दिया जाता है। जिन सूबों में बच्चों का क़ानून लागू नहीं है वहाँ मुक़द्मे के

दौरान में बच्चे जेल की जगह कोतवाली की हवालात में अवश्य रखे जाते हैं। किन्तु हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी के साथ अदालत में लाये जाते हैं और उनका मुक़दमा बिल्कुल उसी तरह ही होता है जैसे बड़े मुजरिमों का होता है। बच्चों के ऊपर इसका बहुत बुरा असर होता है। जुर्म साबित होने के बाद बच्चों को या तो तम्बीह के साथ या आज़माइशी रिहाई पर या ज़मानत मुचलके पर छोड़ दिया जाता है। यदि जुर्म अधिक संगीन होता है तो उन्हें बेत की सज़ा भी दी जाती है जुर्माना भी किया जाता है और कभी कभी रिफ़ारमेटरी स्कूल में कुछ वर्षों के लिये भेज दिया जाता है।

बम्बई और मद्रास में इस तरह के बच्चों की सहायता के लिये सोसाइटी खोली गई हैं। इन सोसाइटियों का नाम चिल्ड्रेन एड सोसाइटी है। यह सोसाइटियाँ ग़ैर सरकारी संस्थायें हैं परन्तु इन्हें गवर्नमेंट से सहायता मिलती है। बच्चों के क़ानून के अन्दर इन्हें प्रमाणित संस्था माना गया है और वहाँ बच्चों की देखभाल का काम इन्हीं की सुपुर्दगी में होता है। यही संस्थायें बच्चों की हवालात यानी रिमाण्डहोम का प्रबन्ध करती हैं और प्रोबेशन आफ़िसरों की नियुक्ति करती हैं। प्रोबेशन आफ़िसर उन बच्चों के बारे में जाँच करते हैं जो किसी जुर्म में पकड़कर रिमान्डहोम में लाये जाते हैं। लावारिस या आवारा बच्चों को भी रिमान्डहोम में लाया जाता है। जो बच्चे प्रोबेशन पर छोड़ दिये जाते उनकी देखभाल भी

प्रोबेशन आफ़िसर ही करते हैं। बम्बई का रिमाण्डहोम ऊमर-खाड़ी में है और बहुत अच्छा काम कर रहा है।

जिन सूबों में बच्चों का क़ानून लागू नहीं है वहाँ बच्चों को अक्सर बेत लगाकर छोड़ दिया जाता है। बेत की सज़ा के बारे में भी विद्वानों की राय भिन्न भिन्न है। कुछ लोगों का कहना है कि बेत की सज़ा के बाद बच्चे सुधर जाते हैं और फिर जुर्म नहीं करते। दूसरों का कहना है कि जब एक दफ़ा बच्चे को बेत लग जाते हैं तो वह अपने गिरोह का सरदार बन जाता है और फिर उसको वश में लाना कठिन हो जाता है। बेत की सज़ा प्रायः अदालत ही में दी जाती है और कभी जेल में भी दी जाती है। जेल में बेत लगाने का असर बच्चों के भावी जीवन पर बहुत बुरा पड़ता है और इसलिये सन् १९२० की जेल कमेटी ने सिफ़ारिश की थी कि बेत की सज़ा अदालत ही में दी जाया करे।

तेरहवां परिच्छेद

रिफ़ारमेटरी स्कूल

छोटे बच्चों की बुरी आदतों को छुड़ाने के लिए और उन्हें उचित शिक्षा देने के लिए रिफ़ारमेटरी स्कूल खोले गए हैं। इङ्गलैंड में १७८८ में फिलान्थ्रोफ़िक सोसाइटी ने क़ैदियों के लड़कों को शिक्षा देने के लिये इस प्रकार का स्कूल खोला था। इस सोसाइटी ने इतना अच्छा काम किया कि सरकार ने छोटे उम्र के मुजरिमों को इसके सुपुर्द करना शुरू किया। सरकार ने इस सोसाइटी को आर्थिक सहायता देना भी निश्चय किया था परन्तु सोसाइटी ने लेने से इन्कार कर दिया। सोसाइटी की ओर से अब भी सरे के ज़िले में एक बहुत उपयोगी रिफ़ारमेटरी स्कूल चल रहा है।

इङ्गलैंड में सन् १८४६ में सरकार की ओर से रिफार-मेटरी स्कूलों को खोलने का प्रयत्न किया गया और इस सम्बन्ध में पार्लियामेन्ट में एक बिल भी पेश किया गया। परन्तु वह बिल पास न हो सका। १८५४ में रिफारमेटरी स्कूल का क़ानून पास हो गया तब इङ्गलैंड में रिफारमेटरी स्कूल खोले गए। १२ साल और उससे अधिक उम्र के लड़के

रिफारमेंटरी स्कूल में भेजे जा सकते हैं। १२ साल से कम उम्र वाले लड़के जिन्होंने कोई जुर्म किया हो इन्डसट्रियल स्कूलों में भेजे जाते हैं। सन् १८५७ के क़ानून के अनुसार इन्डसट्रियल स्कूल खोले गए थे। इन्डसट्रियल स्कूलों में लावारिस, आवारा, भीख माँगने वाले, स्कूल और घरों से भागनेवाले तथा खराब माँ बाप के बच्चे और ऐसे बच्चे जिनके विषय में यह समझा जाता है कि वे शीघ्र ही जुर्म करेंगे, भेजे जा सकते हैं। सन् १९२८ में इङ्गलैंड में २८ रिफार-मेटरी स्कूल थे जिनमें ५ स्कूल लड़कियों के लिए थे और ५६ इन्डसट्रियल स्कूल थे जिनमें २० लड़कियों के लिए थे।

अमेरिका में भी उसी समय रिफारमेटरी स्कूलों की स्थापना हुई थी। न्यूयार्क में टामसएडी नामक व्यक्ति ने १८१५ में रिफारमेटरी संस्था खोली थी जिसमें बद्चलन बच्चे रखे जाते थे। १८२३ में बोस्टन नगर में बच्चों के लिए एक रिफारमेटरी संस्था खोली गई इसका नाम 'हाउस आफ रिफूज' था। पहिले यह ग़ैरसरकारी संस्था थी। फिर बाद को सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। अदालतों से इसमें रखने के लिए वे बच्चे मिलते थे जिन्होंने कोई जुर्म किया हो। मिस्टर वेल्स इसके सुपरिनटेन्डेन्ट थे। उन्होंने बड़ी मेहनत से अच्छा काम किया। वे पहिले किसी कालेज से निकाल दिये गए थे क्योंकि उन्होंने अपने एक साथी के विरुद्ध चुग़ली करने से इनकार कर दिया था। परन्तु इस

स्कूल में उन्होंने इतना अच्छा काम किया कि उसी कालेज ने उन्हें एम० ए० की डिगरी प्रदान की। मिस्टर वेल्स के ज़माने में कोई लड़का दूसरे लड़के के विरुद्ध चुगली नहीं कर सकता था। बेत की सज़ा बिलकुल नहीं दी जाती थी और लड़के ही एक तरह से स्कूल का प्रबन्ध स्वयं करते थे और यह निश्चय करते थे कि किस तरह उनका सुधार किया जाय। जो लड़के स्कूल में नियमों के विरुद्ध चलते थे उन्हें लड़कों द्वारा चुने हुए पंच ही सज़ा देते थे। मिस्टर वेल्स ने बहुत अच्छा काम किया परन्तु उनकी प्रणाली उस समय के लिए १०० वर्ष आगे की थी और नतीजा यह हुआ कि वे वहाँ से हटा दिये गये।

हिन्दुस्थान में भी रिफारमेटरी स्कूलों के लिए सन् १८९७ में कानून पास हुआ और फिर कई सूबों में रिफारमेटरी स्कूल खोले गये। ये स्कूल प्रायः सरकार द्वारा ही खोले गए हैं और शिक्षा विभाग के आधीन रखे गए हैं। इन स्कूलों में भी लड़कों के साथ क़ैदियों जैसा व्यवहार होता है। बड़ी-बड़ी इमारतों में रिफारमेटरी स्कूल खोले जाते हैं। यह इमारतें या तो पुराने जेल हैं या पुराने क़िलों के अन्दर हैं जो पहिले जेल के काम में लाई जाती थीं। स्कूल के चारों ओर ऊँची चहार दीवारी होती है। इन स्कूलों में बहुत से लड़के एक साथ रखे जाते हैं। इन लड़कों की तादाद इतनी अधिक हो जाती है कि स्कूल के मास्टर हर एक लड़के पर अलग

अलग ध्यान नहीं रख सकते। स्त्री अध्यापकों का तो एक दम अभाव है और इस कारण घर का सा रहन सहन रिफार-मेटरी स्कूलों में नहीं हो पाता है। रिफारमेटरी स्कूल अन्य स्कूलों से कम मिलते हैं और बच्चों के जेलों से अधिक मिलते हैं। अक्सर जेल के पेन्शनयाफ्ता अफ़सर रिफार-मेटरी स्कूलों में नौकर रख लिए जाते हैं।

रिफारमेटरी स्कूलों का नाम भी बदनाम है। इससे निकलकर लड़कों को नौकरी आदि मिलने में कठिनाई होती थी। इसलिए अब कुछ सूबों में रिफारमेटरी स्कूल को सरटी-फाइड स्कूल कहने लगे हैं। इस बात की कोशिश की जा रही है कि मामूली स्कूलों और इन स्कूलों में कोई भेद न रहे। बम्बई और मद्रास में कुछ औद्योगिक या इन्डसट्रियल स्कूल भी हैं। इनमें मजिस्ट्रेटों द्वारा भेजे हुए बच्चों को कई प्रकार के हुनर सिखाए जाते हैं जिससे कि वे बाहर निकलकर ईमानदारी का जीवन व्यतीत कर सकें।

अमेरिका में रिफारमेटरी स्कूलों में बहुत तबदीलियाँ हो गई हैं। अब वहाँ लड़के बड़ी इमारतों में नहीं रखे जाते। रिफ़ार-मेटरी स्कूलों में अधिक लड़के नहीं रखे जाते हैं। अब देहातों में छोटे छोटे बंगले बनवा दिये जाते हैं। वहाँ एक आदमी और उसकी स्त्री की सुपुर्दगी में दस पन्द्रह लड़के रहते हैं। और इस बात की कोशिश की जाती है कि वहाँ घर की तरह उन्हें रखा जाय। पुराने रिफ़ारमेटरी स्कूल बन्द कर दिये गये हैं।

दूसरा तरीक़ा यह है कि अलग अलग लड़कों को कुटुम्बों के सुपुर्द कर दिया गया है। लड़के उन कुटुम्बों में अन्य लड़कों की तरह पाले जाते हैं। इन लड़कों के खर्चे के लिये उन परिवारों को कुछ रुपया मिलता है। इस नये तरीक़े के द्वारा अमेरिका में काफ़ी सफलता हुई है। परन्तु हिन्दुस्थान में यह तरीक़ा सम्भव नहीं मालूम पड़ता।

बम्बई चिल्ड्रन एड सोसाइटी की ओर से बम्बई से क़रीब २० मील की दूरी पर चेम्बूर नामक गाँव में बच्चों के लिये एक 'होम' खोला गया है। इस 'होम' में क़रीब ५०० लड़के रहते हैं। 'होम' के चारों ओर कोई दीवार नहीं है केवल काँटेदार तार लगे हैं। लड़कों को केवल स्कूल की तरह शिक्षा दी जाती है। कुछ उद्योग धंधे और दस्तकारी भी सिखाई जाती है और कसरत तथा ड्रिल कराई जाती है। इस 'होम' में यह कोशिश की गई है कि बच्चों को बोर्डिंग स्कूल की तरह रखा जाय।

बिगड़े हुए बच्चों को रिफ़ारमेटरी स्कूल में रखना आवश्यक है। हर बच्चे को रिफ़ारमेटरी भेजना ज़रूरी नहीं है किन्तु कुछ बच्चों के सुधरने की आशा केवल रिफ़ारमेटरी में ही भेजकर की जा सकती है। रिफ़ारमेटरी की उपयोगिता और उसकी सफलता उसके सुपरिनटेनडेन्ट और दूसरे अफ़सरों पर निर्भर होती है। रिफ़ारमेटरी में सुधार तभी हो सकता है जब हर बच्चे की अलग जाँच पड़ताल की जाय,

उनको सोच समझकर भर्ती किया जाय, उनकी आवश्यकताओं और उनकी ख़ास आदतों का पता लगाया जाय, और उनके रोज़मर्रा के जीवन और कामों में उचित सलाह दी जाय। एक साथ सब लड़कों का एक से बरतावे से सुधार होना असम्भव है। हरएक बच्चे की अलग अलग जाँच करके और उसकी आवश्यकताओं को समझकर ही उसके सुधार की योजना बनानी चाहिये। होशियार और दृढ़ व्यक्तित्व के आदमी का असर बच्चे के ऊपर पड़ता है। बच्चे के सामने कुछ आदर्श रखने चाहिये और उसकी आदतों को कभी बढ़ावा देकर कभी रोकथाम करके ठीक करना चाहिये। अधिकतर बच्चों को दो वरस के ऊपर रिफ़ारमेटरी में नहीं रखना चाहिये, बाद को उन्हें पैरोल या निगरानी में छोड़ देना चाहिये।

चौदहवां परिच्छेद

बच्चों के जुर्म करने के कारण

कोई बच्चा पैदाइशी मुजरिम नहीं होता। मुजरिम माता पिता के बच्चों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे मुजरिम ही बनें। अगर उन बालकों को अच्छे पड़ोस में रखा जाय और उनकी देखभाल अच्छी तरह से की जाय तो वे अच्छे नागरिक बन सकते हैं। प्राय: देखा गया है कि लालन-पालन की बुराई के कारण धनी और पढ़े लिखे सम्मानित परिवारों के लड़के भी नामी मुजरिम हो जाते हैं। मुजरिमों की कोई ख़ास ज़ाति नहीं है और न कोई ख़ास कारण ही बताया जा सकता है जिससे बच्चे मुजरिम बन जाते हैं। बच्चों में जो जुर्म करने की बान पड़ती है उसके बहुत से कारण होते हैं और उन कारणों के षड़यंत्र और परिस्थितियों से मजबूर होकर बच्चे जुर्म करने लगते हैं। मुजरिम बच्चे ही आगे बढ़कर और बिगड़कर नामी और पक्के बदमाश होते हैं। बच्चों के जुर्म करने के कारणों का पता लगाना अति आवश्यक है क्योंकि यदि बीमारी का कारण मालूम हो जाय तो उसका इलाज करना सहज हो जाता है।

मोटे तौर पर बच्चों के जुर्म करने के कारण दो प्रकार के होते हैं। एक तो घर पड़ोस के कारण और दूसरे निजी कारण।

पहिली तरह के कारणों में मुख्य स्थान ग़रीबी ही को दिया गया है परन्तु जहाँ तक पता चलता है ग़रीबी को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है। यह बात सच है कि जुर्म करनेवाले बच्चे अधिकतर ग़रीब ही होते हैं परन्तु यह भी सच है कि दुनियाँ में ग़रीब अमीरों की बनिस्बत कहीं अधिक हैं। दूसरी बात यह है क अमीर लोग अपने बच्चों के जुर्मों को अदालत तक पहुँचने ही नहीं देते और बाहर ही बाहर निपटा लेते हैं और यह प्रबन्ध कर लेते हैं कि उनके लड़के क़ानून के विरुद्ध आचरण न करें।

ग़रीबों के घर में भीड़ भाड़ रहना भी कड़ी समस्या है। विलायत के उद्योग-धंधे वाले शहर प्रायः बहुत घने बसे हैं। हिन्दुस्थान में भी बम्बई, कलकत्ता, कानपुर और अहमदाबाद शहर बहुत घने बसे हैं। एक छोटी कोठरी में आठ दस आदमी अपनी स्त्री बच्चों के साथ रहते हैं। बम्बई में तो १९३१ की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार ९६ फ़ी सदी आदमियों के पास अलग रहने के लिये एक कमरा नहीं था और केवल चार फ़ी सदी आदमी ठीक तौर से और उचित पर्दे के साथ रहते थे। मकान के अन्दर एक साथ बहुत से आदमियों के रहने का असर बच्चों के चरित्र पर बुरा पड़ता

है। कमरे के अन्दर न उनके पढ़ने के लिये स्थान होता है और न खेलने ही के लिये और रात तक ऐसे बच्चे सड़क पर मारे मारे फिरते हैं और जुर्म करना सीखते हैं।

बेकारी का भी बच्चों पर बुरा असर पड़ता है। पिता अगर बेकार होता है तो घर में बरबादी आ जाती है। भूख और शारीरिक कष्ट के कारण बच्चों को घर से निकलना पड़ता है और अपना प्रबन्ध आप करना पड़ता है। ऐसे बच्चे या तो भीख मांगते हैं या चोरी करते हैं या ऐसे काम करने लगते हैं जिनसे उनका चालचलन बिगड़ सकता है। बेकार गृहस्थ के घर का वातावरण बिगड़ जाता है। बेकार पिता का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। उसकी स्त्री हर समय प्रश्न करती है और घर की कठिनाइयों को बराबर अपने आदमी से कहती है। आपस में झगड़ा होता है और बेकार पिता प्रायः शराब पीने लगता है। बालक के कोमल और सचेतन मन पर गहरा असर पड़ता है और वह घर से निकल पड़ता है।

बच्चों की उचित देखभाल और शिक्षा उनकी माता ही दे सकती है परन्तु जिन बच्चों के पिता नहीं होते या किसी और कारण से माता को काम पर घर से बाहर जाना पड़ता है उनके बच्चों की देखभाल में कमी आजाती है और उसका परिणाम यह होता है कि बच्चों में अपराध करने की आदतें पड़ जाती हैं। प्रायः पास पड़ोस की स्त्रियाँ ऐसे बच्चों की देखभाल करने लगती हैं नहीं तो इसका परिणाम अति भयानक हो सकता है।

घर के भीतर के वातावरण का भी बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। देखा गया है कि घर में एक मनुष्य प्रायः पिता दूसरे आदमियों पर प्रभुत्व रखता है। बच्चों को ख़ूब दबाकर रखता है। बच्चे जो घर के भीतर कुचल कर रखे जाते हैं घर के बाहर शरारत करते हैं और जुर्म करने लगते हैं। घर के अन्दर जो बच्चे साधारण काम करने से रोके जाते हैं और जिनकी इच्छायें उचित काम करने के लिये भी पूरी नहीं हो पाती हैं प्रायः अपराध करने लगते हैं। घर में अगर माता पिता में से एक ही की चले और दूसरे का बिलकुल ही असर न हो तो इसका लड़के के ऊपर प्रायः उल्टा ही असर पड़ता है। और उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मैं ऐसे आचरण के विरुद्ध विद्रोह या उद्दण्डता करूं। देखा गया है कि ऐसे लड़के प्रायः चोरी और व्यभिचार करने लगते हैं।

थोड़ा बहुत झगड़ा स्त्री पुरुष में मामूली घरानों में होता रहता है परन्तु यदि यह झगड़ा लगातार होवे तो बच्चे पर इसका बुरा असर पड़ता है। बच्चा समझने लगता है कि घर में उसकी दशा सुरक्षित नहीं है और अपने को सुरक्षित करने के विचार से चोरी करता है और घर के असंतोषजनक वातावरण से ऊब कर बाहर भाग सकता है। घर में सौतेली मां या बाप आने से परिस्थिति और भी नाज़ुक हो जाती है। बच्चों को यह मालूम होता है कि जो प्यार अभी तक उसे अकेले ही प्राप्त था उसमें अब दूसरा साझीदार आ गया है।

उसके मन में उथल पुथल मच जाती है जिसके कारण बच्चा जुर्म कर सकता है। यदि घर में कई बच्चे हुए और एक बच्चे को दूसरे से अधिक प्यार किया गया तो जिस बच्चे को कम प्यार किया जाता है उसके बिगड़ जाने की सम्भावना रहती है। अगर सौतेली मां के बच्चे को अधिक प्यार किया जाता है तो दूसरे बच्चे के हृदय में ईर्षा की भावना उठती है। एक बच्चे की दूसरे के सामने हरदम प्रशंसा करना भी बुरा होता है। राम बहुत अच्छा लड़का है, वह साफ रहता है, वह खूब मन लगा कर पढ़ता है इन बातों को बार बार सुन कर दूसरे लड़के के मन में भावना होती है कि जो कुछ राम करता है वह उसके बिलकुल विरुद्ध काम करे और वह इस तरह बिगड़ जाता है।

ईर्षा या डाह की भावना से भी बच्चे बिगड़ जाते हैं। अगर एक मामूली कपड़े पहिने लड़का ऐसे लड़के के साथ खेले या रहे जो उससे अधिक बढ़िया कपड़े पहिने हो या जिसको उससे अधिक सुविधायें प्राप्त हों तो ऐसा लड़का अपने को भी उतना ही सम्पन्न सिद्ध करने के लिये चोरी कर सकता है या किसी दूसरी तरह के भी अपराध कर सकता है।

जिस बच्चे को यह मालूम होता है कि घर में उसकी ओर कोई भी चिन्ता नहीं करता और न कोई उसकी आवश्यकता समझता है तो वह भी थोड़े ही दिनों में बिगड़ सकता है। मेरी कोई परवाह नहीं करता फिर मैं ही क्यों अपनी परवाह

करूँ ऐसी भावना उसके मन में पैदा हो जाती है। घर में जो लड़की यह समझती है कि उसे कोई प्यार नहीं करता कोई उसकी परवाह नहीं करता वह दुराचरण के लिये आसानी से तैयार की जा सकती है। क्योंकि यदि उसका चरित्र अच्छा नहीं है तो जो आदमी उसकी झूँठी प्रशंसा करेगा और उसकी समय पर कोई इच्छा पूरी कर सकेगा उसको फुसला लेगा।

दूसरी ओर उन लड़कों के ख़राब होने का भी डर रहता जिनकी चिंता में उनके मां बाप अधिक व्याकुल रहते हैं। इस प्रकार के बर्ताव से छुटपन निकल जाने पर भी बच्चा बन्धन में ही रहता है। बहुत सी औरतें जिन्हें दाम्पत्य सुख नसीब नहीं है अपना सारा प्यार अपने छोटे बच्चे पर ढाल देती हैं। अधिक लाड़ प्यार से बच्चे बिगड़ जाते हैं और अपराध करने लगते हैं। उनकी मां उन्हें मना करना तो दूर रहा उन बच्चों का पक्ष लेकर लड़ने के लिये तैयार हो जाती है। ऐसा बच्चा प्राय: चोरी करने लगता है।

माँ बाप की देखरेख का बच्चों के बनने बिगड़ने से बहुत सम्बन्ध होता है। कुछ घरों में बच्चों पर बहुत सख्ती होती है। कुछ घरों में उन्हें बहुत आज़ादी दी जाती है और कुछ घरों में किसी भी प्रकार का अनुशासन नहीं होता है। यदि घर में लड़के को अधिक सज़ा दी जायगी तो उसका असर यह हो सकता है कि लड़का उद्दंड हो जाय और बराबरी से

मारपीट करने लगे या घर से भाग जाय। इसका असर यह भी हो सकता है कि लड़का चोरी करने लगे, घर का माल उड़ाने लगे या अपना चालचलन बिगाड़ ले। सबसे अधिक बच्चे की हानि तब होती है जब घर ही में उसके ऊपर एकसा अनुशासन नहीं रखा जाता। पहिले खूब सख्ती रहती है और फिर ढील डाल दी जाती है। लड़के ही के समझ में नहीं आता कि वह कैसा आचरण रखे।

यह बात अवश्य है कि माता पिता के आचरण का लड़कों पर बहुत असर पड़ता है और उन्हीं की लापरवाही, बेवकूफी और नालायक़ी से लड़के बिगड़ते हैं फिर भी बुरी आदतों से लडकों की रक्षा के लिए घर और माता पिता का होना बहुत आवश्यक है। क्योंकि अगर लड़के का घर नहीं होता और माँ या बाप या दोनों के मर जाने के कारण घर बिगड़ या बरबाद हो जाता है तो उस लड़के के बिगड़ने की सम्भावना बहुत होती है। यह देखा गया है कि बिगड़े हुए और मुजरिम बच्चों में उन बच्चों की गणना अधिक होती है जिनके घर माँ या बाप या दोनों के मर जाने के कारण बिगड़ या बर्बाद हो गए हैं।

मिल और कारखानेवाले शहरों में एक ख़ास समस्या आदमियों द्वारा छोड़ी हुई औरतों और बच्चों की हो जाती है। आदमी मिल में काम करने के लिए शहर आता है। देहात में अपने गाँव में अपनी स्त्री-बच्चे छोड़ आता है। वह यह

आशा करता है कि नौकरी लग जाने पर थोड़े दिनों में अपने स्त्री-बच्चों को बुला लेगा परन्तु शहर में एकाएकी काम नहीं मिलता और आदमी महाजन के चंगुल में फंस जाता है। नौकरी मिल जाने पर भी वह अपना ख़र्चा कठिनता से चला पाता है और अपने बीबी-बच्चों को बुलाने की तिथि हटाता जाता है। केवल कभी कभी कुछ रुपया मनीआर्डर द्वारा भेजता रहता है। पीछे यह मनीआर्डर कम होने लगते हैं और आदमी उसी शहर में किसी औरत से सम्बन्ध कर लेता है और एक नये कुटुम्ब के पालन में लग जाता है। गाँव की छूटी हुई औरतें अपने आदमी की खोज में शहर में आती हैं या गाँव ही में पड़ी रहती हैं। शहर में अपने आदमी का पता उन्हें अक्सर नहीं मिलता और यदि मिल भी जाता है तो वे कुछ और ही माजरा देखती हैं। अपने बच्चों के पालन के लिये वह आप मेहनत मज़दूरी करती हैं। अपने बच्चों की पूरी तौर से न तो वह रक्षा ही कर सकती हैं और न उन पर देखरेख ही रख सकती हैं। इस तरह के लड़के शीघ्र ही बिगड़ जाते हैं और जुर्म करने लगते हैं। तलाक़ की प्रथा हिन्दुस्थान में बहुत प्रचलित नहीं है। इसलिये तलाक़ द्वारा जो असर बच्चों के आचरण पर दूसरे देशों में पड़ता है वह हिन्दुस्थान में नहीं पड़ता, अगर बाप की मृत्यु हो गई है या वह जेल में या पागलख़ाने में है तो भी बच्चे की वही दुर्दशा होती है जैसे कि छोड़ी हुई स्त्री के बच्चों की होती है।

हिन्दुस्थान में अधिकतर लोग सम्मिलित परिवार में रहते हैं इसलिये उपरोक्त प्रकार के बच्चों का लालन पालन परिवार के अन्य लोग कर लेते हैं और फिर ऐसे लड़के नहीं बिगड़ते। परन्तु सम्मिलित परिवार की प्रथा अधिकतर देहात में चालू है शहर में हर आदमी अपने ही परिवार का ख़र्चा कठिनाई से उठा पाता है इसलिये जिन लड़कों को अपने पिता की रक्षा प्राप्त नहीं है उनका बिगड़ना और जुर्म करना बहुत ही सम्भव है। साथ ही शहर में इस प्रकार के लड़कों के बिगड़ने की सम्भावना अधिक है और गाँव में कम।

जो घर ही बुरे हैं, जिनमें रहनेवाले शराबी, जुआरी और बुरे हैं उन घरों के लड़के तो अवश्य ख़राब होते हैं। घर वालों के आचरण उनके लिये आदर्श का काम देते हैं और वह उनकी सीधी नक़ल करके दुराचरण करने लगते हैं। ऐसे घर में रहनेवाले लड़के के भीतर मानसिक उथल पुथल मच सकती है। एक कोमल हृदय बालक मन ही मन चिंतित रहने लगता है। मन के भीतर क्रोध की भावना रख सकता है जिसका परिणाम उसके सारे जीवन पर पड़ सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह जुर्म भी करने लगे और ऐसा हो भी सकता है तथा अक्सर होता भी है कि ऐसा लड़का चोरी करने लगे और ऐसी लड़की चोरी करने लगे या दुश्चरित्रा हो जाय। माता पिता के आचरण के विरुद्ध बच्चों का क्रोध इतना अधिक बढ़ जाता है कि वे आप भी समाज के नियम के विरुद्ध काम

करने लगते हैं। ऐसी दशा में लड़के घर के हालचाल से ऊब कर भाग भी जाते हैं। जो लड़के भाग कर बम्बई पहुँचते हैं उन्होंने प्रायः इस प्रकार का हाल बताया है।

"मेरे पिता का मेरी चाची के साथ सम्बन्ध था। मैं बर्दाश्त न कर सका, इसलिये भाग आया।"

"मेरी मां का एक ग़ैर आदमी से सम्बन्ध हो गया। मेरे कहने से भी वह न मानी इसलिये मैं भाग आया।"

"मैं घर में नहीं रह सकता था। मेरी मौसी और मेरे बाप में सम्बन्ध था।"

कुछ माँ बाप अपने लड़कों से जानबूझ कर जुर्म कराते हैं। हिन्दुस्थान के हर शहर में छोटे लड़के भीख माँगते हुए मिलते हैं। कुछ लड़के तो आप अपनी इच्छा से भीख माँगते हैं और बहुतों से ज़बरदस्ती भीख मंगवाई जाती है। कुछ लड़कों से मजबूरन चोरी कराई जाती है यदि वह निश्चित रक़म चुरा कर नहीं ला पाते हैं तो उन पर मार पड़ती है। कुछ मां बाप अपने छोटे लड़कों से जूतों की पालिश इत्यादि छोटा मोटा काम कराने को कह देते हैं और उनसे एक निश्चित रक़म कमाने को कहा जाता है। यदि उसकी कमाई हुई रक़म पूरी नहीं होती है तो उन पर मार पड़ती है। मार से बचने के लिये लड़का चोरी करके रक़म पूरी करने का प्रयत्न करता है। कुछ मां बाप अपने लड़के को नौकरी लगवा देते हैं और उसकी तनख्वाह आप ले लेते हैं। लड़का यह

देखता है कि दिन रात तो वह मेहनत करता है परन्तु उसका लाभ उसे नहीं मिलता है। मां बाप के लालच के कारण वह चोरी करने लगता है जिससे वह अपने मामूली शौक़ को पूरा कर सके।

घर के बाहर पास पड़ोस का भी असर लड़कों पर पड़ता है। हर शहर में कुछ मुहल्ले होते हैं जहाँ जुर्म की तादाद ज्यादा होती है। इन मुहल्लों में देखा गया है कि मामूली पारिवारिक जीवन कम लोग बसर करते हैं। बिना ब्याहे या बिना परिवार के रहनेवाले आदमियों की तादाद अधिक होती है या वहाँ वेश्याओं की आबादी होती है। इन मुहल्लों में देखा गया है कि जो लड़के रहते या आते जाते हैं उनका चरित्र ख़राब हो जाता है और वे जुर्म करने लगते हैं। कुछ लोग परिवार के साथ तो रहते हैं परन्तु कम किराये वाले घनी आबादी वाले मुहल्ले में रहते हैं। उनके बच्चों के खेलने का उचित प्रबन्ध नहीं होता इसलिये वे सड़क पर खेलते हैं और फिर धीरे धीरे तरह तरह के जुर्म करने लगते हैं।

बुरे पास पड़ोस के साथ साथ कुछ और भी स्थान हैं जो लड़कों के चालचलन को बिगाड़ देते हैं। सस्ते खेल तमाशे, बिलियर्ड रूम, सैलून, जुए खाने और ऐयाशी के मकानात भी लड़कों को बिगाड़ देते हैं। यह कोई ज़रूरी बात नहीं है कि लड़का जब इन जगहों मे जायगा, तभी बिगड़ेगा। पास पड़ोस में इन जगहों की स्थिति ही उन लड़कों को बिगाड़ने के

लिये काफ़ी होती है। इन जगहों के विषय में लड़कों को शुरू में ठीक पता नहीं होता और वहाँ के आनेजाने वाले आदमी उनको बिगाड़ देते हैं।

सिनेमा का बच्चों के ऊपर क्या असर पड़ता है इस पर काफ़ी मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि सिनेमा का असर बुरा पड़ता है। सिनेमा के अन्दर जो दुराचरण और जुर्म दिखाये जाते हैं, कच्ची बुद्धिवाले लड़के उनकी नक़ल करते हैं। सिनेमा जाने के लिये लड़कों को पैसे चुराने या घर की चीज़ों को बेचने की आदत पड़ जाती है। दूसरी ओर कुछ लोगों का कहना है कि सिनेमा का असर अच्छा पड़ता है और लड़कों का इससे अच्छा मनोरंजन हो सकता है।

पश्चिमी देशों में कुछ पेशे ऐसे हैं जिनमें काम करने से लड़कों के बिगड़ जाने की सम्भावना रहती है। रात को अखबार बेचने या तार बांटनेवाले लड़के बिगड़ जाते हैं। हिन्दुस्थान में इस तरह का काम अभी तक लड़कों से नहीं लिया जाता है परन्तु बम्बई ऐसे शहरों में जो छोटी उम्र के लड़के चाय की दूकानों और होटलों में काम करते हैं उनके बिगड़ जाने की बहुत सम्भावना रहती है। ऐसे लड़कों का जीवन सड़क ही पर बसर होता है। रात और दिन काम करना पड़ता है। हर तरह के चालचलन के आदमियों से वास्ता पड़ता है और हर तरह की बातचीत सुनते हैं। अपनी उम्र के हिसाब से लड़के अधिक चालाक हो जाते हैं इसलिये

जुआरी और दूसरी तरह के मुजरिम उन्हें थोड़ा सा लालच देकर अपने काम के लिये तैयार कर लेते हैं। ऐसे लड़के पुलिस की ताक में रहते हैं और आहट पाकर मुजरिमों को आगाह कर देते हैं। ऐसे लड़कों के साथ अक्सर व्यभिचार भी किया जाता है।

जो कम उम्र की लड़कियाँ घरों में नौकरानी का काम करती हैं वे दो प्रकार के जुर्म कर सकती हैं। एक तो चोरी और दूसरा व्यभिचार। उनकी तनख़्वाह बहुत ही कम होती है। इसलिये उनका मन यदि इधर उधर रखे हुए पैसों या अन्य चीज़ों की चोरी की ओर पड़ जाय तो कोई अचम्भा न होना चाहिये। व्यभिचार के लिये लड़की को नौकर रखने-वाले की ओर से या उसके किसी रिश्तेदार या किसी अन्य नौकर की ओर से इशारा हो सकता है। तंग मकान में रहने के कारण उसे अपनी इज़्ज़त बचाना कठिन हो जाता है।

लड़कों को देखा गया है कि वह अकेले कम जुर्म करते हैं। अधिकतर जुर्म साथियों के साथ ही होते हैं। साथियों के साथ दो तरह के जुर्म होते हैं। एक तो जब बराबर उम्र वाला एक लड़का दूसरे लड़के को जुर्म करने के लिये उक-साता है और दूसरे जब कई लड़के मिलकर शरारत या जुर्म एक साथ करते हैं जो उनमें से कोई भी अकेला नहीं कर सकता।

अक्सर देखा गया है कि एक लड़का दूसरे लड़के को झूठे

क़िस्से सुनाता है, किस तरह से उसने चोरी की, किस तरह से उसने और शरारतें कीं तथा किस तरह से वह पुलिस की आँखों में धूल झोंक आया। यह क़िस्से बिल्कुल झूठ होते हैं किन्तु दूसरे लड़के इनको वीरता समझकर इन पर काम करने की कोशिश करते हैं और फँस जाते हैं।

रेलवे ट्रेनों पर पत्थर फेंकना, बिना टिकट रेल यात्रा या ट्राम पर सवारी करना, उन स्थानों में घुस जाना जहाँ जाने की मनाही हो, आग लगा देना, चोरी करना इत्यादि जुर्म साथियों के साथ अधिक किये जाते हैं।

लड़कों के लिये मनोरंजन और खेल कूद की जगहों का होना बहुत ज़रूरी है। जहाँ इन चीज़ों की कमी है लड़के जुर्म करते हैं। खेल कूद और मनोरंजन से लड़कों की अधिक कार्यशक्ति को एक उचित रास्ता मिल जाता है। लड़का काम चाहता है, बेकारी में उसका मन बुरी ओर ही खिंचता है और जब उसे अपनी कार्यशक्ति को लगाने के लिये काम नहीं मिलता तो वह जुर्म करता है। शहरों में बाग बग़ीचे, पार्क इत्यादि का होना बहुत आवश्यक है।

स्कूलों से भी लड़के जुर्म करना सीख जाते हैं। यह सुन कर बहुतों को ताज्जुब होगा किन्तु बात बहुत कुछ सच है। स्कूल में पचासों घरों से लड़के पढ़ने आते हैं। परन्तु स्कूल के अन्दर उनके निजी व्यक्तित्व का विचार नहीं किया जाता। सबको एक ही साँचे में ढाला जाता है। अधिक लड़के तो उस

साँचे में ढल जाते हैं और मास्टरों की आज्ञानुसार आचरण करते हैं। परन्तु थोड़े से लड़के ऐसे निकलते हैं जो उस साँचे में ढलने से इनकार करते हैं। ऐसे लड़के स्कूल से घृणा करने लगते हैं और भागते हैं। भागकर चोरी करते हैं और फिर पकड़े जाते हैं।

जिन लड़कों की बुद्धि मन्द होती है वह स्कूल में और लड़कों का मुक़ाबिला नहीं कर सकते। पढ़ने से जी चुराते हैं और स्कूल से भागना शुरू कर देते हैं। कुछ लड़कों की बुद्धि बहुत तेज़ होती है। स्कूल का उन पर कुछ असर नहीं होता। दर्जे की पढ़ाई बिलकुल थोड़ी मालूम होती है। वह भी दर्जे से भागने लगते हैं। स्कूल में सब लड़कों को एक ही चाल से हाँकने की कोशिश की जाती है। इससे मन्द बुद्धि और तीव्र बुद्धि दोनों ही तरह के लड़कों के बिगड़ जाने का डर रहता है।

कुछ पेशे तो लड़कों के लिये खतरनाक होते ही हैं। इनका ज़िक्र किया जा चुका है। परन्तु अच्छे पेशों में भी काम करने वाले लड़कों का बिगड़ जाने का डर रहता है। रोज़ रोज़ वही काम करने से मन ऊब जाता है। कुछ पेशों में तरक़्क़ी ही नहीं होती, उनमें काम करने से लड़कों का कुछ दिनों बाद जी नहीं लगता। अकसर देखा गया है कि दिन में लड़के काम करते हैं और रात को मन बहलाने के लिये चोरी और जुर्म करते हैं।

घर और पास पडोस का वर्णन हो चुका है। लड़कों की निजी शारीरिक और मानसिक दशा भी जुर्म करने का कारण हो सकती है किन्तु इस तरह का विभाजन केवल काल्पनिक है। व्यक्ति और उसका घर और पास पडोस अलग अलग वस्तु नहीं मानी जा सकतीं और एक का दूसरे पर हर समय असर होता रहता है।

बच्चों के शारीरिक कज, जुर्म करने के कोई अलग कारण नहीं हैं। परन्तु देखा गया है कि कजदार बच्चे अधिक जुर्म करते हैं। काने को सभी ऐबी कहते हैं। जिस लड़के को कोई भी कज होता है उसे दूसरे लड़के चिढ़ाने लगते हैं। कज वाला लड़का अपनी कमी को समझता है और चिढ़ने लगता है। वह यह भी देखता है कि वह किस प्रकार अन्य बातों से अपने कज की कमी पूरा कर सकता है या अपने चिढ़ाने वालों से बदला ले सकता है। और लड़के जब चोरी करते हैं तो वह पहरा देता है या उनका काम कर देता है और इस तरह से अपनी उपयोगिता साबित करता है। परन्तु धीरे धीरे वही आचरण आप भी करने लगता है।

जो लड़का अधिकतर बीमार रहता है उसका भी यही हाल होता है। जो लड़के तन्दुरुस्त होते हैं, वह उनसे मन ही मन नाराज रहता है और अपनी कमी को समझने लगता है। बदला लेने की भावना उसके मन में रहती है और इसलिए वह प्रायः जुर्म करने लगता है।

जो लड़का अपनी उम्र के हिसाब से कम बढ़ता है या जो उम्र के हिसाब से अधिक बढ़ता है दोनों को अपने बराबर के लड़कों के साथ चलने में कठिनाई होती है। जो लड़का उम्र के हिसाब से कम बढ़ा है उसे उसी उम्र के दूसरे लड़के बराबरी से अपने साथ नहीं खिलाते और जो लड़का उम्र के हिसाब से अधिक बढ़ जाता है वह बड़े लड़कों का बुद्धि में मुक़ाबिला नहीं कर सकता है। इस प्रकार की लड़कियों को तो विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है। शारीरिक गठन से तो वे पूरी स्त्री हो जाती हैं परन्तु उनकी मानसिक दशा लड़कियों ही की सी रहती है। ख़राब आदमी उनकी दशा से अनुचित लाभ उठाकर उन्हें बिगाड़ देते हैं।

मानसिक उथल पुथल से लड़के जुर्म करने लगते हैं इसका ज़िक्र किया जा चुका है। जवानी शुरू होने पर लड़के और लड़कियों के मन में एक उथल पुथल मच जाती है। इस विषय में उनकी जानकारी बहुत ही कम होती है। ग़लत धारणाओं और ग़लत फ़हमियों का वे शिकार हो जाते हैं और अक्सर बुरे काम और जुर्म करने लगते हैं। अगर बडी उम्र के लोग उन्हें ठीक तौर पर सिखा पढ़ा दें तो व्यर्थ का कष्ट उन्हें न उठाना पड़े।

कुछ मानसिक बीमारियों के कारण भी लड़के जुर्म करने लगते हैं परन्तु लड़कों में मानसिक बीमारियाँ कम मिलती

हैं। कुछ लड़कों की आदत मन के पुलाव पकाने की पड़ जाती है। वह हर समय कुछ न कुछ सोचा करते हैं। दुनिया की स्थिति से उन्हें कम काम रहता है। ऐसे लड़के दर्जे में पढ़ नहीं सकते और जुर्म करने लगते हैं। मन्द बुद्धि और जुर्म में निकट सम्बन्ध माना गया है परन्तु मन्द बुद्धि को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया है। इसका कारण यह है कि अदालतों के सामने मन्द बुद्धि वाले लड़के मुजरिम बन कर अधिकतर आते हैं। तीव्र बुद्धि वाले प्रायः पकड़ ही में नहीं आते। मुजरिम बच्चे प्रायः मन्द बुद्धि वाले होते हैं परन्तु यह बात साबित नहीं हो सकी कि उन्होंने केवल मन्द बुद्धि ही के कारण जुर्म किया या जुर्म करने के अन्य ही कारण थे। यह बात अवश्य है कि कम बुद्धि वाले लड़के उन प्रलोभनों में आसानी से फंस जाते हैं जिनसे एक मामूली बुद्धि वाला लड़का आसानी से अपनी रक्षा कर सकता है। इसलिए मन्द बुद्धि वाले लड़कों की समाज की ओर से ठीक देख भाल होनी चाहिए।

कुछ बीमारियाँ ऐसी होती हैं जिनसे पीड़ित लड़का चिड़चिड़ा हो जाता है। इन बीमारियों में मिर्गी, हर समय नींद आने की बीमारी और कोरिया (Chorea) मुख्य हैं। इन बीमारियों से मन कमज़ोर होजाता है और स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। लड़के का आत्मबल कमज़ोर हो जाता है और वह दूसरे के प्रभाव में जल्दी आ सकता है।

परन्तु अभी तक इन बीमारियों और जुर्म करने की आदत में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं साबित हो सका है।

बच्चों में जुर्म करने के अनेक कारण हैं और किसी भी जुर्म करनेवाले लड़के में केवल एक ही कारण नहीं मौजूद होता। बहुत से कारणों के मिलने से, उनके चक्कर में फंसकर लड़का जुर्म करता है। अकसर देखने में आया है कि लड़के के जुर्म करने का प्रत्यक्ष कारण जाँच करने से ग़लत साबित हुआ है। किसी लड़के को चोरी करते देख कर यह नहीं बताया जा सकता कि उसने चोरी क्यों की। ग़रीबी या बुरा पास पड़ोस ही लड़के के जुर्म करने का कारण बताना उचित न होगा। हर एक लड़के की जाँच पड़ताल अलग अलग होनी चाहिये और उसके जुर्म करने के कारणों को खोजना चाहिये। बच्चों के जुर्म करने के कारणों को ढूँढ़ निकालना बहुत ही कठिन काम है और इसी कठिनाई के कारण मुजरिम बच्चों का उचित निदान नहीं होपाता। जब हम उनका उचित निदान नहीं कर पाते तो उन लड़कों का जुर्म करना जारी रहता है और आगे चलकर वे पक्के बदमाश और मुजरिम बन जाते हैं।

पन्द्रहवां परिच्छेद

युवा अपराधी और बोर्स्टल

बच्चों के क़ानून के अंदर, 'बच्चों' की परिभाषा से १६ वर्ष की उम्र ही में बचपन समाप्त हो जाता है। १६ वर्ष की उम्र के बाद बालक युवावस्था में पदार्पण करता है। जवानी का समय बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। बचपन से भी अधिक देखभाल की आवश्यकता, युवावस्था में होती है। अधिक अपराधी इसी समय में जुर्म करना आरम्भ करते हैं। लड़के को युवावस्था के ज़माने में अधिक स्वतंत्रता मिलने लगती है। घर की बन्दिशें ढीली पड़ने लगती हैं। काम भावना जग उठती है और इस-लिये युवावस्था का समय बहुत जोखिम का समय हो जाता है। मन में नई नई चीज़ों को देखकर तरंगें उठती हैं और यह आवश्यक हो जाता है कि इस अवस्था में व्यभिचार और जुर्म की आदतें न पड़ने पायें।

युवावस्था कब से कब तक मानी जाय इसमें कुछ मत-भेद है और यह जलवायु और देश के रहन सहन पर बहुत कुछ निर्भर होता है। अमेरिका में सोलह से तीस वर्ष तक युवा-वस्था मानी जाती है। परन्तु सोलह वर्ष के बालक और तीस

साल के आदमी में बहुत अन्तर है। डाक्टर गोरिंग ने जाँच करके बताया है कि संगीन जुर्म बीस से पच्चीस साल की उम्र के मुजरिम अधिकतर करते हैं और २५ साल के बाद संगीन जुर्म करने की इच्छा कम हो जाती है। इसी तरह दुबारा जेल जाने वालों की औसत उम्र बाईस साल की है। इन्हीं कारणों से इङ्गलैंड में सोलह से इक्कीस वर्ष की आयु युवावस्था मानी गई है।

युवावस्था में जो लोग अपराध करते हैं उन्हें सज़ा मिलती है। उनके साथ बर्ताव कैसा होना चाहिये ? जेल में बड़े क़ैदियों के साथ साथ रखना तो उचित न होगा। बड़े क़ैदी उन्हें अधिक बिगाड़ सकते हैं। दूसरी ओर अगर युवा लड़कों को बच्चों के साथ रखा जायगा तो यह डर है कि यह लड़के बच्चों को बिगाड़ देंगे। जेलों में मेहनत पर ज़ोर दिया जाता है और जिस तरह के नियमों का पालन करना पड़ता है वह इन युवा लड़कों के लिये लाभदायक साबित नहीं हो सकता। युवा लड़कों और बालिग़ क़ैदियों को एक साथ रखने से जेल के प्रबन्ध में गड़बड़ी होती है। युवा लड़कों के सुधार में साधारण शिक्षा देने और किसी विशेष हुनर सिखलाने के अतिरिक्त नीति और धर्म की शिक्षा देना आवश्यक है जो मामूली जेलों में देना सम्भव नहीं है। इन सब बातों को देखते हुए यह आवश्यक है कि युवा लड़कों को रखने के लिये अलग जेल या अन्य संस्थायें बनाई जायँ

और जहाँ तक हो सके जवान लड़कों को बड़े क़ैदियों से न तो हवालाती की दशा में और न सज़ा मिलने के बाद मिल-जुलकर रहने का अवसर दिया जाय।

बहुत से देशों में १६ से २१ वर्ष तक के जवान लड़के जो जुर्म करते हैं उनके रखने के लिये अलग स्थान बना दिये गए हैं। इन स्थानों को बोर्स्टल कहते हैं। बोर्स्टल इङ्गलैंड में एक छोटा सा गाँव है। सबसे पहिले १६ से २१ वर्ष तक की उम्र के जवान लड़कों के लिये यहीं पर रखने के लिये एक जगह बनाई गई थी। इस जगह पर उन लड़कों के रखने का उद्देश्य उनका सुधार करना था, सज़ा देना नहीं। जब इस प्रकार की संस्थायें अन्य जगहों पर खोली गईं तो उन्हें भी बोर्स्टल ही का नाम दिया गया जिसका मतलब यह है कि उन जगहों में १६ से २१ साल के मुजरिम लड़कों के लिये उसी रीति का प्रयोग होता है जो बोर्स्टल में प्रचलित है।

हिन्दुस्थान के भी कुछ सूबों में बोर्स्टल संस्थायें खोली गई हैं। पंजाब और मद्रास में बोर्स्टल को खुले हुए बहुत साल हो गये और इन संस्थाओं ने बिगड़े हुए बदचलन मुजरिम जवान लड़कों को सुधारने का बहुत अच्छा काम किया है। हमारे सूबे में भी काँग्रेस मिनिस्ट्री ने बोर्स्टल खोलने के लिये क़ानून बनाया था। क़ानून तो बन गया परन्तु लड़ाई छिड़ जाने के कारण बोर्स्टल अभी तक नहीं खुल पाया है। बोर्स्टल संस्था की हमारे प्रान्त में अत्यन्त आवश्यकता है।

इङ्गलैंड में बोर्स्टल में युवा लड़कों के भेजने का क़ानून प्रिवेनशन आफ़ क्राइम एक्ट की पहिली धारा में दिया हुआ है।

"जब किसी व्यक्ति पर कोई जुर्म साबित हो गया हो जिस पर उसे सज़ा दी जा सकती है और अदालत को यह मालूम पड़े कि उस व्यक्ति की आयु १६ वर्ष से अधिक और २१ साल से कम है और उस व्यक्ति की जुर्म करने की आदत है या उसकी रुचि जुर्म करने की ओर रहती है या ख़राब चालचलन के आदमियों से उसका संग रहता है, और उसके लिये यह उचित है कि वह इतने दिनों के लिये, ऐसी शिक्षा और संयम के साथ रोका जाय जिससे उसका सुधार हो सके और जुर्मों की रोक थाम हो सके, तो अदालत को यह अधिकार होगा कि जेल की सज़ा के स्थान में उसे दो साल से अधिक और तीन साल से कम समय तक बोर्स्टल में रखे जाने की और वहाँ के नियम पालन करने की सज़ा दे।"

"सज़ा देने के पहिले मुलज़िम लड़के के विषय में बोर्स्टल संस्था से जो रिपोर्ट प्रिज़न कमिश्नर द्वारा या उसकी ओर से आयेगी उस पर अदालत विचार करेगी और उस लड़के के चालचलन, स्वास्थ्य, मानसिक दशा और जुर्म करने के कारण यदि ऐसे हैं कि वह बोर्स्टल की शिक्षा और नियम से सुधर सकता है तो अदालत उसे वहाँ भेजे जाने का हुक्म देगी।"

गवर्नमेंट को अधिकार है कि २३ वर्ष के मुजरिमों को भी बोर्स्टल भेज सके परन्तु यह अधिकार अभी तक काम में नहीं

लाया गया है। रिफ़ारमेटरी स्कूल में जो बच्चे रहते हैं यदि वे वहाँ न सुधरें या वहाँ से भागें तो उन्हें बोर्स्टल में भेजा जाता जा सकता है और जिनको बोर्स्टल में भेजा गया हो और उनका रहना बोर्स्टल में उचित न हो तो उन्हें जेलों में भेजा जा सकता है।

अदालत को जो रिपोर्ट जवान लड़कों के चालचलन आदि के विषय में दी जाती है वह जेल के अधिकारी भेजते हैं। सन्देह होने पर प्रिज़न कमिश्नरों से राय ली जाती है। जाँच के लिये छपे छपाये फ़ार्म जवान लड़के के माता पिता, मास्टर और उन सब लोगों के पास भेजे जाते हैं जो उस लड़के के विषय में सूचना दे सकते हैं। इन सूचनाओं और जेल के गवर्नर, पादरी और डाक्टर की रिपोर्ट पर विचार करके ही अन्तिम रिपोर्ट तैयार की जाती है और अदालत को भेजी जाती है।

सभी जवान लड़के एक से नहीं होते और न सबको एक से बर्ताव से सुधारा ही जा सकता है। इसके लिये इङ्गलैंड में कई बोर्स्टल खोल दिये गये हैं। बोर्स्टल की सज़ा पड़ने के बाद लड़कों को वर्मवुडस्क्रब्स और लड़कियों को आयन्सबेरी भेजा जाता है। यहाँ इन लड़के और लड़कियों की ख़ूब अच्छी तरह देखभाल होती है। यहाँ से उन्हें दूसरी बोर्स्टल संस्थाओं में भेजा जाता है। जो अधिक उम्र के या अधिक बिगड़े हुए लडके होते हैं उन्हें नाटिंघम, पोर्टलैंड और कैम्पहिल भेजा जाता

है। जो बीच के होते हैं उन्हें बोर्स्टल भेजा जाता है और जिनके सुधरने की सबसे अधिक आशा होती है उन्हें लाउढेमग्रेंज भेजा जाता है। जिनकी सुधरने की आशा तो अच्छी होती है किन्तु मानसिक दशा अच्छी नहीं होती उन्हें फेलटम भेजा जाता है। बोर्स्टल में रखे जाने की कम से कम मियाद दो वर्ष और अधिक से अधिक तीन वर्ष है परन्तु यदि लड़के का चाल-चलन ठीक रहे तो प्रिज़न कमिश्नरों को अधिकार है कि वह लड़के को छः महीने के बाद लाइसेंस पर छोड़ दें। लड़कियाँ तो तीन महीने बाद लाइसेंस पर छोड़ दी जा सकती हैं।

बोर्स्टल में रहनेवाले लड़कों को मानसिक शारीरिक, नैतिक और सामाजिक शिक्षा, साधारण दस्तकारी की शिक्षा के अतिरिक्त दी जाती है। शिक्षा का कोई निर्धारित तरीक़ा नहीं है। उसमें दिन ब दिन उन्नति हो रही है। जेल के क़ानून और नियम बोर्स्टल पर भी लागू हैं किन्तु जेल और बोर्स्टल में बहुत भेद है। बोर्स्टल का फाटक दिनभर खुला रहता है और काम या खेल के समय लड़के चहारदीवारी के भीतर भी नहीं रखे जाते हैं।

बोर्स्टल का उद्देश्य सज़ा नहीं, किन्तु शिक्षा ही है। मतलब यह है कि उन जवान लड़कों को जिनके मन पर अभी असर पड़ सकता है एक नया दृष्टिकोण दिया जा सके, एक नई दिशा में उनको घुमाया जा सके और बोर्स्टल के मास्टरों के निजी प्रभाव और आदर्श से, रहनेवालों में भाई चारा और

ऐसा सामाजिक बर्ताव स्थापित किया जा सके जो बोर्स्टल से छूटने के बाद भी स्थित रहे। बोर्स्टल का यह काम नहीं है कि रहने वालों की आत्मा को कुचला या दबाया जाय। वहां कोशिश यह होती है कि लड़कों के अन्दर अच्छी भावनाओं को जगाया जाय और उनमें शक्ति पैदा की जाय कि वे अपना चालचलन ठीक कर सकें। बोर्स्टल संस्था में हर एक लड़के पर अलग अलग ध्यान दिया जाता है और यह आशा नहीं की जाती कि एकही लकड़ी से सब लड़के हांके जायें और सुधारे जायें। हर एक लड़के की आवश्यकताओं का सहानुभूति के साथ पता लगाया जाता है और उसे उचित शारीरिक, मानसिक, नैतिक और उद्योग धंधों की शिक्षा दी जाती है और उसमें विश्वास उत्पन्न करके उसकी उन्नत की जाती है जिससे वह स्वाधीनता और आत्म संयम सीख सके। बोर्स्टल तभी सफल हो सकता है जब उसके अधिकारी और शिक्षक अच्छे और चुने हुए आदमी हों और जो चरित्र गठन के काम में रुचि रखते हों।

बोर्स्टल के सबसे बड़े हाकिम को विलायत में गवर्नर कहते हैं। बोर्स्टल का प्रबन्ध और शिक्षा उसी के आधीन होती है। बोर्स्टल के अन्दर हाउज़ सिस्टम जारी किया गया है। लड़कों को इन्हीं, हाउज़ या, घरों में रखा जाता है। एक घर में ७० से अधिक लड़के नहीं रहते। हर एक घर में अलग अलग इमारतें होती हैं और सोने, खाने, खेलने आदि के लिये

अलग अलग कमरे होते हैं। हर एक घर का प्रबन्ध करने के लिये अलग अलग अफ़सर होते हैं। हाउज़ के अन्दर लड़कों को छोटी छोटी टुकड़ियों में बांट दिया जाता है। हाउज़ के प्रधान अफ़सर को हाउज़ मास्टर कहते हैं। उसके नीचे तीन चार अफ़सर रहते हैं। हाउज़ मास्टर हर एक लड़के के लिये संरक्षक का काम करता है। अपने मातहतों की सहायता से वह प्रत्येक लड़के के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है और फिर प्रत्येक के लिये उपयुक्त शिक्षा प्रणाली बनाता है और उसके लिये खेल और पढ़ाई और काम निश्चित करता है और उसकी रिपोर्ट गवर्नर के पास भेजा करता है। लड़कों में से ही मानीटर चुने जाते हैं और यही मानीटर खाने पीने और लाइब्रेरी इत्यादि का प्रबन्ध करते हैं।

बोर्स्टल संस्था में जब लड़का भरती होता है तो उसे भूरे रंग की वर्दी पहिनने को मिलती है। दूसरे वर्ष में उसे नीले रंग की वर्दी पहिनने को मिलती है। नीले रंग की वर्दी वाले लड़कों में से उनके अध्यक्ष चुने जाते हैं। इन लोगों को अधिक काम करना पड़ता है और ज़िम्मेदारी भी निभानी पड़ती है परन्तु इसके बदले में उन्हें कोई विशेष सुविधा नहीं दी जाती। नीली वर्दी वाले लड़कों को बोर्स्टल में मिलने जुलने की आज़ादी होती है। नीले रंग की वर्दी वाले लड़के बोर्स्टल के बाहर घूमने के लिये, गिरजे में प्रार्थना के लिये या किसी विशेष हुनर सीखने के लिये बिना किसी अफ़सर के जा सकते

हैं। भूरी रंग की वर्दी वाले लड़के बढ़ कर नीली वर्दी वाले लड़कों की टोली में आ सकते हैं। यह उन्नति सहज नहीं मिल सकती। धीरे धीरे लड़कों को स्वाधीन काम दिया जाता है और उन्हें ज़िम्मेदारी सिखाई जाती है और जब वे इसमें सफल होते हैं तब उन्हें अगली श्रेणी में भेजा जाता है। साल में एक दफ़ा गरमी के मौसम में समुद्र के किनारे किसी स्थान पर कैम्प किया जाता हैं जिसमें नीली वर्दी वाले लड़के जाते हैं और कुछ दिन रहते हैं। इस कैम्प में रहने का लड़कों के ऊपर वहुत अच्छा असर होता है।

बोर्स्टल में दिन में १५ घंटे का कार्यक्रम होता है। ८ घंटे काम करना पड़ता है, २ घंटे पढ़ाई होती है और कुछ समय कसरत और खेल में लगता है। पहिले आने पर लड़के को बोर्स्टल का कुछ घरेलू काम करना पड़ता है जैसे सफाई करना, खाना पकाना, खाना बांटना आदि। उसके बाद कुछ दिनों उसे बाहरी काम करना पड़ता है जैसे इमारत की मरम्मत या बगीचे या खेती का काम। फिर लड़के को कोई शिल्पकारी सिखाई जाती है और उसी धंधे को वह करने लगता है। उद्योग धंधों में बढ़ई, लुहारी, मशीन का काम, जूते का काम, राजगीरी, दरज़ी का काम इत्यादि होता है। कुछ लड़कों को खेती, दस्तकारी और खाने पकाने का काम भी सिखाया जाता है। उद्योग धंधों के सिखाने में लड़के और उसके माता पिता की राय भी पूंछी जाती है। पढ़ाई का उद्देश्य यह नहीं रखा जाता

है कि मूर्ख को पंडित बना दिया जाय या उन्हें कुछ जानने योग्य बातें बता दी जायँ परन्तु यह होता है कि मन्द बुद्धि लड़कों की जिज्ञासा जागृत कर दी जाय और कुछ चीजों में उनकी रुचि बढ़ा दी जाय। शिक्षा शाम को होती है। साधारण शिक्षा के साथ साथ उपयुक्त विषयों पर व्याख्यान भी होते हैं तथा कला और गाने की और टेकनिकल शिक्षा भी दी जाती है। खेल कूद में फुटबाल और हाकी खेली जाती है और लड़कों से कसरत भी कराई जाती है। हर एक बोर्स्टल में अखाड़ा होता है और उसमें डम्बेल, मुगदर इत्यादि कसरत का सामान रहता है। ड्रिल और कसरत सिखाने के लिये मास्टर होते हैं। मनोरंजन के लिये कमरे के भीतर वाले खेल भी खिलाये जाते हैं। इन खेलों को केवल मनोरंजन के लिये ही नहीं रखा जाता है किन्तु इनके द्वारा शिक्षा भी दी जाती है। हाउज़ों के बीच खेल बदे जाते हैं। और इस प्रकार साथ साथ मिलकर काम करने की शिक्षा लड़कों को मिलती है। हरएक बोर्स्टल के साथ खेलने का मैदान होता है और बहुतों के साथ तैरने के कुंड भी होते हैं।

बढ़नेवाले युवा लड़कों को दिन भर के खेल, काम और शिक्षा के बाद काफ़ी खाने की आवश्यकता होती है। बोर्स्टल में खाना सादा किन्तु अच्छा और काफ़ी दिया जाता है। जेलों के मुकाबले में खाने की चीज़ें अधिक अदल बदल कर मिलती हैं। खाने के कमरे अलग होते हैं और खाना मेजों पर खाया

जाता है। मोज़ा, जूता, क़मीज, कोट और जांघिया हर एक लड़के को दिये जाते हैं। बोर्स्टल के अधिकारी कोई वर्दी नहीं पहिनते केवल सादे कपड़े पहिनते हैं।

चिट्ठियों और मुलाकातों पर कोई विशेष रोक नहीं है। लड़कों को बाहर चिट्ठी भेजने के लिये आज्ञा होती है और यदि किसी लड़के का सम्बन्धी, मित्र या जानपहिचान का आदमी बाहर होता है जिसका असर लड़के पर अच्छा पड़ने की आशा हो तो यत्न करके उस सम्बन्ध को क़ायम रखा जाता है। माता पिता और रिश्तेदारों से मुलाकात और चिट्ठी पत्री करने में सब सुविधायें दी जाती हैं और यत्न किया जाता है कि लड़के के सुधार में उनका भी सहयोग हो सके। सर विलियम मैरिस के दान से एक सहायता फंड खोला गया है जिससे लड़कों के ग़रीब या असमर्थ माता पिता को भेंट के लिये आने जाने का ख़र्चा मिलता है।

बोर्स्टल के अफ़सरों से आशा की जाती है कि वह अपने निजी प्रभाव से ही, सौंपे हुए लड़कों को क़ाबू में रखेंगे। इसीलिये न तो उन्हें कोई वर्दी दी जाती है न उनके हाथ में कोई डंडा आदि रह सकता है। हल्के अपराधों पर हाउज़ मास्टर कुछ सुविधायें छीन लेता है। अगर लड़का अपराध के लिये गवर्नर के पास लाया जाय तो गवर्नर उसे झिड़क सकता है या उससे सुविधायें छीन सकता है या उसका ग्रेड कम कर सकता है या भारी अपराध पर उसे

१४ दिन के लिये अलग बन्द करवा सकता है या कम खाना दे सकता है। भारी अपराधों पर हाउज़ के बाहर, सज़ा की कोठरियों में भी बन्द किया जा सकता है या उससे कड़ा काम जैसे हड्डी पीसना या पत्थर तोड़ना लिया जा सकता है। अधिक समय के लिये भी कोठरी की सज़ा दी जा सकती है और लड़का अगर बहुत ही ख़राब हो और न सुधरे तो उसका जेल से तबादला किया जा सकता है।

बोर्स्टल के स्टाफ़ में एक गवर्नर, एक डिप्टी गवर्नर, एक पादरी, एक डाक्टर, एक स्ट्यूवर्ड, क्लर्क और हाउज़ अधिकारी जिनका ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है होते हैं। काम कराने के लिये, अस्पताल के लिये और नियम सिखाने के लिये अलग अलग अधिकारी होते हैं और उद्योग धंधे सिखाने के लिये अलग अलग मास्टर होते हैं। इन नौकरियों में वही तनख्वाह और नियम होते हैं जो जेल की नौकरियों में होते हैं। इन सब अधिकारियों को एक बोर्स्टल में नियम के साथ शिक्षा दी जाती है। एक चुनाव बोर्ड की सिफ़ारिश पर प्रिज़न कमिश्नर, पढ़े लिखे और लड़कों के विषय में अनुभव रखने वाले लोगों को अस्थाई रूप से असिस्टेन्ट हाउज़ मास्टर बना देता है। काम ठीक करने पर उन्हें स्थाई कर दिया जाता है। हाउज़ मास्टर या तो सीधे ही नियुक्त किये जाते हैं या असिस्टेंट हाउज़ मास्टरी से उन्नति करके हाउज़ मस्टर हो जाते हैं। गवर्नर के पद पर सफल हाउज़ मास्टर ही नियुक्त

किये जाते हैं । गवर्नर, हाउज़ मास्टरों और असिस्टेंट हाउज़ मास्टरों की प्राय: कान्फ्रेंस होती है जिनमें एक दूसरे के विचारों को सुनने और एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठाने का अवसर मिलता है ।

बोर्स्टल प्राय: पुरानी जेल की इमारतों में ही खोली गई हैं । बोर्स्टल और पोर्टलैंड में जेल ही की इमारतों से काम लिया जा रहा है परन्तु उन इमारतों में उचित तबदीलियाँ कर ली गई हैं । फेलटम का बोर्स्टल एक उद्योग धंधों के स्कूल की इमारत में है । १९३१ में कैम्पहिल के जेलख़ाने में बोर्स्टल खोला गया और थोड़ी सी इमारत में रद्दोबद्‌ल से काम चल गया । नोटिंघम की बोर्स्टल भी जेल की पुरानी इमारत में खोली गई है । जगह की तंगी के कारण इसमें बोर्स्टल खोला गया । जेल की इमारत में बोर्स्टल का होना संभव नहीं है और इसीलिये यहाँ सबसे ख़राब लड़के रखे जाते हैं । बोर्स्टल के विषय में यंग ओफ़ेंडर्स कमेटी ने लिखा था—"बोर्स्टल की शिक्षा में सबसे बड़ी कमी यह है कि वह पुराने जेलख़ानों की इमारतों में खोली गई हैं चाहे उनमें कितनी चतुराई से तबदीलियाँ कर ली गई हों ।" कोई भी जेल की इमारत बोर्स्टल के योग्य नहीं होती और इसलिये आशा की जाती है कि अब अगर कोई बोर्स्टल की इमारत बने तो उसे विशेष ढंग से बनवाया जाय । इसके बाद प्रिज़न कमिश्नरों ने एक नई बोर्स्टल बनवाने के लिये लाउढेमग्रेंज में

जगह ली और वहाँ पर बोर्स्टल के उपयुक्त इमारत बनवाई।

इस बात पर भी बहुत बहस हुई कि बोर्स्टल में रात को लड़के अलग अलग कोठरियों में सोयें या सबके सोने का प्रबन्ध एक बड़े कमरे में हो। पहिले जो बोर्स्टल की इमारतें थीं उनमें अलग अलग कोठरियों में सोने का प्रबन्ध था। लड़के भी इसी प्रबन्ध को पसन्द करते थे और प्रबन्ध के विचार से इसमें बहुत सी अच्छाइयाँ भी हैं। परन्तु कुछ लड़के साथ साथ रहने ही से सुधर सकते हैं और कोठरियाँ बनाने में खर्चा अधिक होता है। इसलिये अब जो बोर्स्टल बन रहे हैं उनमें एक स्थान में सोने के लिये बड़े कमरे बनवाये जा रहे हैं।

लड़कियों के लिये आइल्सबेरी में बोर्स्टल है। स्त्रियों का जेल और लड़कियों का बोर्स्टल एक ही चहारदीवारी के भीतर हैं। जो लड़कियाँ बोर्स्टल में ठीक चालचलन नहीं रखतीं उन्हें जेल में भेज दिया जाता है। जेल और बोर्स्टल एक ही गवर्नर के अधिकार में है और दोनों जगह एक ही अधिकारी काम करते हैं। बोर्स्टल के साथ २० एकड़ ज़मीन है जिस पर लड़कियाँ काम करती हैं। गाय बैलों की देखभाल, दूध और मक्खन का काम और बाज़ार के लिये तरकारी तैयार करना लड़कियों का काम है। कपड़े धोना, खाना पकाना और सिलाई करना भी लड़कियों को सिखाया जाता है। लड़कियों और लड़कों के बोर्स्टल के क़ायदे क़ानून में भेद नहीं है। लड़कियों

की तादाद कम है, उनमें दोष दूसरे प्रकार के हैं, इसलिये उनके इलाज में थोड़ा परिवर्तन करना पड़ता है।

लड़कों को कितने दिनों बाद बोर्स्टल से रिहा किया जाय यह उसके चालचलन पर ही निर्भर होता है। एक ग्रेड से दूसरे ग्रेड में लड़कों को तरक्की, बोर्ड की सिफ़ारिश पर ही मिलती है और जब बोर्ड का यह विचार होता है कि लड़के ने उचित शिक्षा प्राप्त कर ली है तब उसकी रिहाई लाइसेन्स पर की जाती है। यह रिहाई विज़िटिंग कमेटी ही करती है। कुछ लड़कों की जो शीघ्र उन्नति करते हैं रिहाई छः महीने के बाद ही होजाती है परन्तु अधिक लड़कों को पूरी शिक्षा प्राप्त करने में दो वर्ष लग जाते हैं। कुछ लड़कों को पूरे तीन वर्ष तक रुकना पड़ता है। लाइसेन्स पर रिहाई कुछ शर्तों ही पर होती है और लड़कों को बोर्स्टल असोसियेशन की सुपुर्दगी ही में छोड़ा जाता है। बोर्स्टल एसोसियेशन जहाँ लड़कों को रखेगा वहीं उन्हें रहना पड़ेगा, जहाँ नौकरी करने देगा वहाँ लड़का नौकरी करेगा और प्रायः उनका पूरा कहना मानेगा। यदि उसे कभी दूसरे जुर्म में सज़ा हो जाय या बोर्स्टल एसोसियेशन की राय में लड़के का चालचलन ठीक न हो तो उसे फिर गिरफ्तार करके बोर्स्टल में भेज दिया जाता है।

बोर्स्टल एसोसियेशन का भी काम बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह एसोसियेशन अर्ध सरकारी संस्था है। सरकार से इसे रुपये से मदद मिलती है और जनता से चन्दा भी मिलता

है। एसोसियेशन का प्रेसीडेन्ट होम सेक्रेटरी होता है और इसका मुख्य दफ़तर लन्दन में है। दफ़तर का काम एक डाइरेक्टर की मातहती में होता है। एसोसियेशन के कर्मचारी प्रिज़न कमिश्नरी के द्वारा रखे जाते हैं।

एसोसियेशन की मातहती में प्रोबेशन अफ़्सर काम करते हैं। बोर्स्टल एसोसियेशन और बोर्स्टल संस्थाओं का बहुत ही निकट सम्बन्ध रहता है।

डाइरेक्टर सभी विज़िटिंग कमेटियों का मेम्बर होता है। जब कोई लड़का बोर्स्टल में आता है तो उसी शहर का प्रोबेशन अफ़्सर उससे बोर्स्टल में मिलता है और उसके घरवालों से जान पहिचान करता है। लन्दन के सदर दफ़्तर की ओर से भी एक आदमी आता है। वह भी लड़के से बोर्स्टल में मिलता है और बोर्स्टल के अधिकारियों से मिलता है। छूटने के बाद लड़का क्या करेगा यह निश्चय करता है और फिर वहाँ से प्रोबेशन अफ़्सर को लिख भेजता है। यदि लड़के का घर अच्छा होता है और उसे काम मिलने की सुविधा होती है तो लड़के के लिए जल्दी प्रबन्ध हो जाता है। परन्तु अधिक लड़कों का अपना घर ही नहीं होता या घरवालों का उन पर बुरा असर पड़ता है। एसोसियेशन इन लड़कों के लिये उचित घर और काम दोनों ही ढूँढ लेता है।

जब लड़के के विषय में सब योजना ठीक हो जाती है तो बोर्स्टल से रिहा होने के बाद उसे लन्दन के बोर्स्टल एसो-

सियेशन के सदर दफ़्तर में लाया जाता है। उसे पहिनने के लिये अच्छे कपड़े दिये जाते हैं। यहाँ उसे समझा बुझा कर उसके शहर के प्रोबेशन अफ़सर के पास भेजा जाता है। एसोसियेशन की सुपुर्दगी में लड़का प्रायः दो वर्ष तक रहता है। एसोसियेशन दो प्रकार के काम करता है। एक तो लड़के के मित्र और सलाहकार की हैसियत से दूसरे पुलिस-मैन की हैसियत से। इस काम में बहुत धैर्य की आवश्यकता होती है। लड़के को जो काम दिलवाया जाता है उसे कभी छोड़ने के लिये वह तैयार हो जाता है। उसे बराबर समझाना पड़ता है, झिड़कना पड़ता है, चेतावनी देनी पड़ती है। लड़का बराबर ग़लतियाँ करता है, प्रोबेशन अफ़सर उसे ठीक करता है। परन्तु यदि किसी तरह भी लड़के का चालचलन नहीं सुधरता है तो उसके विरुद्ध रिपोर्ट कर दी जाती है और उसका लाइसंन्स रद्द कर दिया जाया है और उसे फिर बोर्स्टल भेज दिया जाता है। जिन लड़कों को दुबारा सज़ा होती है या चालचलन ख़राब होने के कारण जिनकी बोर्स्टल एसो-सियेशन के द्वारा ख़िलाफ रिपोर्ट जाती है उन्हें वैण्डस्वर्ग की बोर्स्टल में भेजा जाता है। प्रायः लड़के को छः महीने और रखा जाता है और फिर उसकी रिहाई लाइसेन्स पर की जाती है। वैण्डस्वर्ग के बोर्स्टल में लड़कों के साथ क़ैदियों जैसा बर्ताव होता है। यहाँ कोई शिक्षा लड़के को नहीं दी जाती और उसे यह बताया जाता है कि उसने लाइसेन्स की शर्तों को तोड़ने

में बुराई की है और इसलिये उसके साथ सख्ती की जा रही है। यहाँ इस बात का भी पता लगाया जाता है कि वह लाइसेन्स पर क्यों ठीक से नहीं चल सका। जाँच करने की एक कमेटी होती है। यह कमेटी ही निश्चय करती है कि लड़का कितने दिन और बोर्स्टल में रहेगा। फिर लड़के की रिहाई लाइसेन्स पर होती है। यदि लड़का फिर लाइसेन्स की शर्तें तोड़ता है तो उसे जेल भेज दिया जाता है।

बोर्स्टल संस्था के द्वारा बहुत लाभ हुआ है। १९१० से १९२५ तक जितने लड़के बोर्स्टल भेजे गये उनमें पैंसठ फ़ी सैकड़ा सुधर गये, पैंतिस फ़ी सैकड़ा दुबारा जेल गये। दुबारा जेल जाने वालों में भी कुछ लड़के दूसरी सज़ा के बाद सुधर गये। १९२९ में बोर्स्टल एसोसेयेशन की रिपोर्ट थी कि जो लड़के पहिली ही बार बोर्स्टल संस्था में भेजे गये थे उनमें ७१ फ़ी सैकड़ा सुधर गये। ५५ फ़ी सैकड़ा ऐसे लड़के सुधर गये जो बोर्स्टल के पहिले जेल में रह आये थे। लड़कियों के लिये भी अलग बोर्स्टल एसोसियेशन है।

इङ्गलैंड में जिन लड़कों को बोर्स्टल में नहीं भेजा जाता उन्हें जेल की सज़ा होने पर जेल भेजा जाता है। इन लड़कों को बड़े क़ैदियों से अलग रखा जाता है। हमारे सूबे में अभी तक कोई बोर्स्टल नहीं है। बोर्स्टल खोलने का क़ानून तो बन गया है परन्तु अभी तक काम में नहीं लाया गया है। जवान लड़कों को इसलिये जेल ही भेजा जाता है। जेल में जहाँ तक

सम्भव हो सकता है उन्हें बड़े क़ैदियों से अलग रखा जाता है। कम सज़ा वाले को तो ज़िला जेल में ही रखा जाता है। परन्तु जिनको अधिक सज़ा होती है उन्हें बरेली जुवनाइल जेल में भेजा जाता है। बरेली का जुवेनाइल जेल आइज़ट नगर में बरेली के सेन्ट्रल जेल के पास बना है। सेन्ट्रल जेल ही का सुपरिनटेनडेन्ट जुवेनाइल जेल का सुपरिनटेनडेन्ट होता है। जुवेनाइल जेल भी जेल के मुहकमे के मातहत है। बरेली जेल में लगभग १५० लड़के हैं। इनको भी बोर्स्टल की तरह भिन्न भिन्न हाउज़ों में रखा जाता है। हाउज़ रंगों के नाम से पुकारे जाते हैं और हाउज़ का दरवाज़ा उसी रंग से रंगा होता है। जुवेनाइल जेल में दस्तकारी और कई तरह के उद्योग-धंधे सिखाये जाते हैं। कपड़ा बुनना, सिलाई का काम, चमड़े का काम, तरकारी की खेती, मुर्ग़ी पालना, छपाई का काम इत्यादि सिखाये जाते हैं। सभी लड़कों को दर्जा चार तक की शिक्षा अवश्य दी जाती है। ड्रिल और खेल का भी उचित प्रबन्ध है। लड़कों को रखने लिये अलग अलग कोठरियाँ हैं जिनमें लड़के रात को वन्द कर दिये जाते हैं।

जुवेनाइल जेल में पंचायत भी है। यह पंचायत लड़कों ही के द्वारा चुनी गई है। लेफटिनेन्ट कर्नल मेहरोत्रा जब जुवेनाइल जेल के सुपरिनटेनडेन्ट थे तब उन्होंने पंचायत शुरू की थी। पंचायत को अधिकार दिया गया था कि निम्नलिखित अपराधों के अतिरिक्त सब अपराधों का फ़ैसला करे।

१—जेल अफ़सरों पर हमला।

२—अनैतिक चालचलन।

३—संगीन अपराध।

कुछ दिनों बाद पंचायत ठीक काम करने लगी। पंचायत के जो फ़ैसले होते थे उन्हें सुपरिनटेनडेन्ट मंजूर कर लेता था। पंचायत से जेल की अन्य बातों पर भी राय ली जाने लगी। क्या सामान खाने का ख़रीदा जाये, मिठाई किस तरह से बंटे, क़ैदियों की शिकायतों पर क्या किया जाया यह सब बातें भी पंचायत से पूँछी जाती हैं। पंचायत अच्छा काम कर रही है। जुवेनाइल जेल में रात का स्कूल है। स्काउटिंग की शिक्षा दी जाती है। जिम्नास्टिक और हिन्दुस्थानी और विलायती खेल खिलाये जाते हैं और गाना भी सिखाया जाता है।

कर्नेल शेख़ ने जुवेनाइल जेल में और भी सुधार किये हैं। उन्होंने जुवेनाइल जेल के क़ैदियों को सज़ा के दौरान में घर जाने के लिये छुट्टी देना शुरू किया है। लड़के अपने घर वालों से मिलने के लिये जेल के खर्चे पर जाते हैं। उन्हें पांच सात दिन की छुट्टी दी जाती है जिसमें घर पर रह कर वह लौट आते हैं। उनके साथ न तो कोई जेल का अफ़सर ही जाता है और न उनकी इत्तिला पुलिस ही को दी जाती है। अभी तक इस सुविधा का किसी लड़के ने दुरुपयोग नहीं किया और जितने लड़के घर भेजे गये सब ठीक समय पर जेल वापस आ गये।

कर्नेल शेख़ ने जुवेनाइल जेल के क़ैदियों को बरेली शहर

की फैक्टरियों में भी नौकर करा दिया है। लड़के रात को जेल के अन्दर रहते हैं, सबेरा होते ही फैक्टरियों में काम पर चले जाते हैं। बाहर के आदमियों के बराबर ही उन्हें भी तनख्वाह मिलती है। यह तनख्वाह जेल में जमा रहती है। लड़के के ऊपर खाने इत्यादि का जो खर्च होता है वह उसकी तनख्वाह से काट लिया जाता है, बाक़ी रुपया उसके नाम जमा रहता है जो उसे रिहाई पर मिल जायगा। इन लड़कों को ख़ूब सोच समझ कर चुना गया है। यह ऐसे लड़के हैं जिन्हें चोरी वग़ैरह में सज़ा नहीं हुई है। जब लड़के काम पर जाते हैं तो जेल की तरफ़ से उनके ऊपर पहरा नहीं रहता है। यदि कोई लड़का भाग जाय तो उसकी ज़िम्मेदारी फैक्टरी वालों पर नहीं है। यदि काम ख़राब करेगा तो उसकी रिपोर्ट जेल को कर दी जायगी।

आइज़ट नगर में लकड़ी के कारख़ाने में छः लड़के काम पर नौकर रखाये गये। उन्हें ११ रु० ४ आने महीना तनख्वाह मिलती है। टरपनटाइन कम्पनी में ४ आने रोज पर छः लड़के नौकर रखें गये। वेटेरेनेरी इन्स्टीट्यूट में बारह लड़के ६ रुपये महीने पर नौकर रखे गये हैं। लड़कों से इस प्रकार का काम कराने की स्वीकृति सरकार से मिल गई है। अब यह भी तय किया गया है कि जब तक लड़के के नाम ५० रुपया जमा न हो जायँ तब तक उसके खाने और कपड़े के दाम न काटे जायँ। इन लड़कों को काम के लिये छांटने से पहिले उनके

पिछले जीवन के बारे में ख़ूब जांच पड़ताल की गई और वही लड़के छांटे गये जिनमें चोरी करने, घर से भागने, झूठ बोलने और मार पीट करने की आदतें न थीं और जो मन्द बुद्धि नहीं थे। ऐसे लड़के जो झेंपू थे या दूसरे के बहकावे में आजाने वाले थे वे भी नहीं छांटे गये थे। जिन लड़कों का काम में मन लगता था उनको चुना गया। जो लड़के ग़रीब थे और जिन्हें छूटने पर रुपयों की जरूरत होगी उनको भी छांटा गया। पहिली जून १६३६ से लड़के काम कर रहे हैं। उनका काम हर प्रकार से अच्छा रहा है। फैक्टरी वालों को उनके काम पर संतोष है। कोई लडका अभी तक भागा नहीं हैं। अपने आपही लड़के फैक्टरी जाते हैं और अपने आपही वापस आजाते हैं। दोपहर और सबेरे का खाना वे आप ही पका लेते हैं।

कारखानों में नौकरी कराने और छुट्टी देकर घर भेजने के प्रयोग जो बरेली जुवेनाइल जेल में हो रहे हैं बहुत उत्सुकता के साथ देखे जा रहे हैं और यदि यह प्रयोग यहाँ सफल हुआ तो आशा की जाती है कि अन्य जेलों में भी लागू किये जायेंगे।

सोलहवां परिच्छेद

बालिग़ क़ैदी

पिछले अध्यायों में छोटे बच्चों और जवान लड़कों के साथ, यदि वे जुर्म करें तो क्या बर्ताव होना चाहिये बयान किया गया है। छोटे बच्चों को रिफ़ारमेटरी और जवान लड़कों को बोर्स्टल या जुवेनाइल जेल में रखकर शिक्षा देना और सुधारना चाहिये। बालिग़ क़ैदियों को जेल भेजा जाता है। जेल का मतलब क़ैदियों को सज़ा देना ही नहीं है, उनका सुधार करना और उन्हें ठीक शिक्षा देना भी है जिससे वे जेल से बाहर निकल कर अच्छे नागरिक बन सकें।

बालिग़ क़ैदियों को छाँटना और अलग अलग रखना सबसे ज़रूरी है, अलग अलग रखने के बाद हर एक क़ैदी की अलग अलग जाँच होनी चाहिये और हरएक क़ैदी की ज़रूरत का विचार रखकर उसका सुधार होना चाहिये।

हवालाती क़ैदी

जब कोई आदमी जुर्म करता है तो वह पकड़कर जेल भेजा जाता है। यदि उसकी ज़मानत न हुई या उसका जुर्म

इतना संगीन हुआ कि उसको ज़मानत पर रिहा ही न किया जा सकता हो, तो उसे मुक़दमे के दौरान में जेल ही में रहना पड़ता है। ऐसे क़ैदी को हवालाती क़ैदी कहते हैं। क़ानून का सिद्धान्त है कि जब तक आदमी पर दोष साबित न हो जाय तब तक उसे निर्दोषी ही समझना चाहिये। यह बहुत ही अच्छा सिद्धान्त है। देखा भी गया है कि बहुत से आदमी पकड़ लिये जाते हैं परन्तु अदालत उन्हें निर्दोषी ठहराती है। हवालाती क़ैदियों के साथ इसलिये क़ैदियों का सा बरताव नहीं होना चाहिये। उनके ऊपर केवल इतनी ही रोक होनी चाहिये और इतना ही पहरा रहना चाहिये जिससे वे जेल से भाग न सकें। खाना खाने में उनके लिये किसी पाबन्दी की आवश्यकता नहीं है। वे चाहे आप बनायें चाहे घर से मँगायें। जो अपने घर से न मंगा सकें उन्हें खाना सरकारी ख़र्चे पर मिलना चाहिये। हवालातियों को अपने कपड़े पहिनने का भी अधिकार होना चाहिये। मुलाक़ात, चिट्ठी, वकीलों से मिलने और अपने मुक़दमे की पैरवी करने की पूरी सुविधायें मिलनी चाहिये। हवालाती क़ैदियों के बेड़ी भी नहीं पड़नी चाहिये। हजामत बनवाने या दाढ़ी रखने की भी स्वतंत्रता होनी चाहिये। हमारे सूबे में हवालाती क़ैदियों को उपरोक्त सुविधायें प्राप्त हैं। कुछ देशों में हवालातें जेल से अलग होती हैं। और जब क़ैदियों को सज़ा हो जाती है तब उन्हें जेल भेज दिया जाता है।

हमारे सूबे और हिन्दुस्थान के और सूबों में एक ख़राब रिवाज़ प्रचलित है और वह यह है कि हवालाती क़ैदियों के ऊपर क़ैदी नम्बरदार और क़ैदी पक्के तैनात किये जाते हैं। जिन आदमियों पर मुक़द्दमा चल रहा हो और सम्भव है कि उनमें बहुत से निर्दोषी हैं उन्हें क़ैदियों की मातहती में रखना ठीक नहीं है। १६२० की जेल कमेटी ने भी इस रिवाज के विरुद्ध सिफ़ारिश की थी परन्तु उसे पूरे तौर से माना नहीं गया।

हवालाती क़ैदियों में भी सभी तरह के आदमी होते हैं परन्तु उनको अलग अलग नहीं रखा जाता। जो आदमी पहिले पहल जेल में आता है और जिसने कई मर्तबा सज़ा पाई है दोनों को बहुत दिनों तक साथ रखा जाता है और इसका परिणाम बुरा होता है और ऐसे आदमी जिनके सुधरने की आशा भी होती है दुबारा क़ैदियों की संगत से बिगड़ जाते हैं। १६२० की जेल कमेटी नें सिफ़ारिश की थी कि हवालाती क़ैदियों को रात में अलग अलग कोठरियों में रखा जाया करे। और दिन में उन्हें मिलने जुलने की आज्ञा होनी चाहिये। साथ ही एकबारा और दुबारा मुलज़िमों को रखने के लिये अलग अलग बाड़े होने चाहिये और एकबारा और दुबारा मुलज़िमों को मिलने जुलने की आज्ञा नहीं होनी चाहिये। जेल कमेटी की इस सिफ़ारिश पर भी अमल नहीं किया गया।

फ़िलिपाइन देश में क़ायदा है कि जितने दिन हवालाती

क़ैदी मुकद्मे के दौरान में जेल में रहता है उसके आधे दिन उसकी सज़ा में कम कर दिए जाते हैं। हिन्दुस्थान में कभी कभी मुकद्मे में साल भर और कभी कभी इससे अधिक भी लग जाता है परन्तु उससे सज़ा के दिन कम नहीं किए जाते। फ्रांस में नियम है कि सज़ा के पहले या मुकद्मे के दौरान में जितने दिन मुलज़िम जेल में काटता है उतने दिन उसकी सज़ा में कम कर दिये जाते हैं।

औरत क़ैदी

१८९४ के जेल क़ानून की दफ़ा २७ में लिखा है कि यदि किसी जेल में मर्द और औरत दोनों तरह के क़ैदी रखे जाते हैं तो औरतों से मर्दों को बिलकुल अलग रखा जायगा और मर्दों को औरतों को देखने या उनसे बात-चीत करने या चिट्ठी-पत्री का व्यवहार करने की आज्ञा न होगी। हिन्दुस्थान के सब जेलों में मर्द और औरतें अलग अलग रखे जाते हैं। कुछ जेलों में औरतों के लिये बारक, जेल के अन्दर के हिस्सों में होती है। अब जो नये जेल बन रहे हैं उनमें औरत बारक जेल के अहाते के अन्दर तो होती है परन्तु उसका दरवाज़ा बाहर खुलता है इसलिए कोई मर्द क़ैदी उसके अन्दर नहीं जा सकता। औरतों पर पहरेदार औरतें ही होती हैं। औरत क़ैदियों को अब सेन्ट्रल जेल में रखा जाने लगा है परन्तु अब भी उनमें सब तरह के क़ैदियों को एक साथ ही रखा

जाता है। यहाँ तक कि हवालाती औरतें और सज़ा पाई हुई औरतें भी एक ही साथ रखी जाती हैं। इसी तरह एकबारा औरत क़ैदियों और दुबारा औरत क़ैदियों को भी एक साथ रखा जाता है। यह बात ज़रूर है कि और देशों की अपेक्षा हिन्दुस्थान में औरतों की तादाद जेलों में बहुत कम है। फिर भी जेलों में कितनी ही रंडियाँ और औरतों को बहकाने वाली औरतें क़ैद होती हैं और उनको उन औरतों से अलग रखना ज़रूरी है जो अधिक बिगड़ी हुई न हों। १९२० की जेल कमेटी ने सिफ़ारिश की थी कि औरतों को कुछ ख़ास सेंट्रल जेलों में रखना चाहिए और उनको एक योग्य मेटरन के आधीन रखना चाहिए। हमारे सूबे ने तो इस नियम को मान लिया है परन्तु योग्य मेटरन अभी तक नियुक्त नहीं की गई है। प्रायः सेन्ट्रल जेल के जेलर की बीवी को मेटरन नियुक्त कर दिया जाता है। यह नियम ठीक नहीं है। मेटरनों को उनकी योग्यता पर ही नियुक्त करना चाहिए। ज़िला जेलों से जब औरत क़ैदियों का तबादला सेन्ट्रल जेलों को होता है तो उन्हें औरत वार्डर की ही रक्षा में भेजा जाना चाहिये। १९२० की जेल कमेटी ने सिफ़ारिश की थी कि जिन जेलों में औरतें रखी जायँ वहाँ काफी तादाद में औरत वार्डर भी रहें और जिस जेल से औरतों का तबादला हो वहाँ का सुपरिनटेनडेन्ट इस जेल से औरत वार्डरों को बुलवा ले और क़ैदी औरतें उन्हीं की सुपुर्दगी में भेजी जाया करें।

औरतों को तबादले के समय बेड़ी या हथकड़ी नहीं पहनाई जाती और न उनकी कमर से रस्सी ही है बाँधी जाती है।

औरतों से जेल में हल्का काम लिया जाता है। फटे कपड़ों की मरम्मत, दाल चावल को साफ़ करना, बान बटना तरकारी छीलना या काटना प्रायः ऐसे ही काम करने को दिए जाते हैं। आटा पीसने का काम पहिले लिया जाता था परन्तु अब बन्द कर दिया गया है। औरत क़ैदियों को अपने छोटे बच्चों को साथ रखने की आज्ञा है।

औरतों को यू० पी० के जेलों में पहिले ओढ़नी और लहंगा पहिनने को दिया जाता था। कांग्रेस गवर्नमेंट ने तजवीज़ की थी कि ओढ़नी और लहंगे के वदले में उन्हें साढ़े पांच गज की साड़ियां ही पहिनने को दी जाया करें और अब ऐसा ही होता है। पहिले औरतों की चूड़ियां और बिछिये उतरवा लिये जाते थे परन्तु अब औरत क़ैदियों को इन सुहाग की चीज़ों के पहिनने की आज्ञा है। औरतों के बालों के लिये तेल भी दिया जाता है।

सत्रहवां परिच्छेद

एकबारा और दीवानी क़ैदी

जो आदमी पहिली मर्तबा जेल जाते हैं उन्हें एकबारा क़ैदी माना जाता है। एकबारा क़ैदियों को जेल में इस तरह रखा जाना चाहिये कि वह वहाँ जाकर ठीक आदमी और अमन चैन से रहनेवाले नागरिक बन जायँ। जो क़ैदी दुबारा जेल में आता है वह इस बात को साबित करता है कि जेल में उसे ठीक शिक्षा नहीं मिली और वह जेल से लौटने के बाद समाज में ठीक से न रह सका।

एकबारा क़ैदियों में सब तरह के क़ैदी शामिल होते हैं हत्या करनेवाले, चोरी करनेवाले तथा इसी तरह के अन्य जुर्म करनेवालों की गिनती यदि उन्हें पहिली दफ़ा ही सज़ा मिली है एकबारा क़ैदियों में ही होती है। मारपीट करनेवाले, औरत भगानेवाले, पुलिस और म्युनिसिपेलिटी तथा और छोटे छोटे क़ानून जैसे मोटर का क़ानून या खाने पीने की चीज़ों में मिलावट करने के क़ानून में जो लोग सज़ा पाते हैं वे भी एकबारा ही कहलाते हैं। इन जुर्मों में यदि कोई आदमी दुबारा भी क़ैद काटता है तो भी वह एकबारा ही कहलाता है।

एकबारा और दुबारा क़ैदियों को खाना एक ही तरह का मिलता है। कपड़े भी एक ही तरह के मिलते हैं केवल उनकी वर्दी में लाल और नीली धारी का भेद रहता है। यू० पी० के जेलों में एकबारा क़ैदियों को लाल धारी के कपड़े मिलते हैं और इस तरह एकबारा और दुबारा क़ैदियों की दूर ही से पहिचान हो सकती है।

एकबारा क़ैदियों को भी दो दर्जों में बाँटा जा सकता है। १—स्टार क्लास। २—मामूली। इस तरह का वर्गीकरण अपने सूबे में लागू नहीं है। कांग्रेस गवर्नमेंट ने इस बात की तजवीज़ की थी परन्तु अभी तक वह अमल में नहीं लाई गई है। यह बात उचित नहीं है कि हल्के जुर्म वाले और संगीन जुर्म वाले सच्चरित्र एकबारा क़ैदी और ऐसे एकबारा क़ैदी जिनका जेल आने से पहिले ही चालचलन बहुत बिगड़ चुका हो सबको एक साथ रखा जाय। बुरे क़ैदी अच्छे क़ैदी को शीघ्र ही बिगाड़ सकते हैं और जिसे थोड़ी ही सज़ा हुई हो या जिसे हल्के ही जुर्म में सज़ा हुई हो वह फिर संगीन जुर्म करने के इरादे से जेल को जाता है। जिन देशों में स्टार क्लास का वर्गीकरण अमल में लाया जाता है वहाँ इस प्रकार के क़ैदियों को अलग छाँट लिया जाता है और उन्हें मामूली एकबारा क़ैदियों के साथ रखा जाता है। जेल में जहाँ तक हो सके इस बात का यत्न होना चाहिये कि सबसे बुरे क़ैदी अलग रखे जायँ जिससे वे दूसरों को बिगाड़ न सकें। उसी

तरह इस बात का भी यत्न होना चाहिये कि सबसे अच्छे क़ैदी भी अलग रहें जिससे वे बिगड़ न सकें। इङ्गलैंड में स्टार क्लास के क़ैदियों को मेडिस्टेन जेल में रखा जाता है। यहाँ क़ैदियों को जेल की चहारदीवारी के बाहर काम करने की आज्ञा है। जेल में छापाखाना है और पढ़ाई तथा खेल की विशेष सुविधा है। स्टार क्लास के लिये कांग्रेस गवर्नमेंट ने तजवीज़ किया था कि उन्हें खाना और कपड़ा तो मामूली क़ैदियों का ही मिले परन्तु और बातों में उन्हें 'बी' क्लास के क़ैदियों की सी सुविधायें प्राप्त हों।

कुछ देशों में कम सज़ा वाले और अधिक सज़ा वाले क़ैदियों के बर्ताव में भेद रहता है। यह आवश्यक बात है कि जिस क़ैदी को लम्बी सज़ा हुई हो वह यह आशा कर सके कि यदि उसका जेल में चालचलन ठीक है तो ज्यों ज्यों उसकी सज़ा कटती जायगी उसे जेल में अधिक सुविधायें मिलती जायेंगी। यह अच्छा भी नहीं मालूम होता कि जो बर्ताव साल और दो साल की क़ैद वाले क़ैदियों के साथ हो वही लगातार दस और बीस साल के क़ैदी के साथ किया जाय। इङ्गलैंड में चार साल बाद मर्दों को और तीन साल बाद औरतों को विशेष सुविधायें मिलने लगती हैं। मर्द को मिलने जुलने की, अख़बार ख़रीदने की, तम्बाकू पीने की आज्ञा हो जाती है। औरत को चाय पीने की आज्ञा हो जाती है। अपने सूबे में भी लम्बी क़ैद वाले एकबारा क़ैदियों को विशेष सुविधायें मिलती हैं।

सज़ा के तीसरे भाग के कट जाने पर उन्हें पहरेदार (कनविक्ट नाइट वाचमैन) बनाया जा सकता है। इन पहरेदारों को दिन में काम करने के अतिरिक्त रात को दो घंटे के लिये बैरक के अन्दर पहरा देना पड़ता है। पहरेदारों को हर महीने में पाँच दिन की छूट मिलती है। मामूली क़ैदियों को केवल चार दिन की छूट मिलती है। आधी सज़ा कट जाने पर एकबारा क़ैदी नम्बरदार (कनविक्ट ओवरसियर) बनाये जा सकते हैं। नम्बरदार की वर्दी कुछ अच्छी होती है और उसे कोट और पायजामा भी मिलता है, जूते पहिनने की आज्ञा होती है और उसे महीने में छः दिन की छूट भी मिलती है। नम्बरदार क़ैदी को जेल का काम भी नहीं करना पड़ता। वह दूसरे क़ैदियों की निगरानी करता है और उनसे काम कराता है और जेल की चहारदीवारी पर भीतर की तरफ़ से रात या दिन में पहरा देता और ग़श्त करता है। नम्बरदार के ऊपर काफ़ी ज़िम्मेदारी का काम होता है। जिन नम्बरदारों का काम अच्छा होता है उन्हें छाँटकर क़ैदी वार्डर या पक्का बना दिया जाता है। इनकी वर्दी नम्बरदार से भिन्न होती है। पैरों में पट्टी और जूते पहिनने को मिलते हैं एक डंडा और चपरास भी मिलती है। इनको अपना खाना अलग पकाने की आज्ञा होती है और हर महीने एक रुपया वेतन मिलता है। यह तनख़्वाह जमा होती रहती है और छूटने पर उन्हें मिल जाती है। क़ैदी वार्डरों से जेल के वार्डरों ही का काम लिया जाता है और उन्हें काफ़ी ज़िम्मेदारी

का काम सौंपा जाता है। क़ैदी वार्डरों को महीने में आठ दिन की छूट मिलती है। लम्बी क़ैद वाला क़ैदी यदि जेल में अपना चाल चलन ठीक रखे तो उसे काफ़ी सुविधायें मिलती हैं और उसकी सज़ा में भी काफ़ी कमी हो जाती है।

एकबारा क़ैदियों को जेल में काम करना पड़ता है। इनसे काम इस ढंग से लिया जाता है कि जिससे कोई अच्छा हुनर सीख जायँ और जेल के बाहर जाकर अपना जीवन मेहनत और ईमानदारी से बसर कर सकें। शुरू में सख़्त काम लिया जाता है जिससे उनके मन में जेल का डर पैदा हो जाय और साथ ही साथ उनकी काम करने की आदत पड़ जाय।

दीवानी क़ैदी

जिन लोगों को क़र्ज़ या लगान या मालगुज़ारी का रुपया न देने के कारण दीवानी या माल की अदालत से जेल में रखे जाने का हुक्म होता है वह लोग दीवानी क़ैदी कहलाते हैं। इन क़ैदियों को और क़ैदियों से अलग रखा जाता है। यह लोग अपने कपड़े पहन सकते हैं, अपना खाना पका या मँगवा सकते हैं, तम्बाकू पी सकते हैं। जेल में रहते हुए अपना धंधा कर सकते हैं। मुलाक़ात का भी इन्हें अधिकार रहता है। इनके ऊपर जो ख़र्चा होता है वह उसी आदमी को देना पड़ता है जो उन्हें जेल भिजवाता है। इन क़ैदियों को जेल

की कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती। वास्तव में ऐसे आदमियों को जेल में न रखना चाहिये। इन्होंने कोई जुर्म नहीं किया है। अन्य क़ैदियों के जेल में इन्हें रखना अनुचित है। इनके रहने से और जो इनको विशेष सुविधायें मिलती हैं उनसे दूसरे क़ैदियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कुछ लोगों की तो राय है कि दीवानी की अदालतों से जेल भेजने के अधिकार ही ले लेना चाहिये। किन्तु बहुत से लोगों की राय है कि दीवानी क़ैदियों को रखने के लिये जेल ही अलग होना चाहिये।

अठारहवां परिच्छेद

दुबारा क़ैदी

जो क़ैदी दूसरी मर्तबा जेल आता है वह जैसा पहिले कहा जा चुका है इस बात को साबित करता है कि एक बार जेल में आकर उसका सुधार नहीं हो सका। दुबारा क़ैदियों को इसलिये सुधार के लिये और विशेषतः समाज की रक्षा के लिये जेल में रखा जाता है। जितने दिन वे जेल में रहेंगे उतने ही दिन बाहर जनता को आराम मिलेगा। दुबारा क़ैदियों को इसलिये एकबारा क़ैदियों से कम सुविधायें दी जाती हैं और उन्हें सज़ा में कम छूट मिलती है। दुबारा क़ैदियों को नम्बरदार और पक्का नहीं बनाया जाता और उनसे जेल में कोई जिम्मेदारी का काम नहीं लिया जाता। दुबारा क़ैदियों को महीने में केवल चार दिन छूट मिलती है। दुबारा क़ैदियों को पहरेदार तक बनाया जा सकता है और ऐसी दशा में उन्हें भी महीने में पांच दिन छूट मिलती है।

दुबारा क़ैदियों के मन से एक प्रकार से जेल का डर निकल जाता है। बहुत से दुबारों को देखा गया है कि जेल से छूटते समय अपने साथियों से कह जाते हैं कि जेल में उनकी जगह

सुरक्षित रखें और फिर शीघ्र ही आकर वे अपना स्थान आबाद कर देते हैं। दुबारा क़ैदी जेल के नियमों से भली भाँति जानकारी रखते हैं और उनका पालन करते हैं। जेल का काम भी अच्छा और जल्दी करते हैं। जेल ही एक तरह से उनका घर हो जाता है और जेल ही में उन्हें रहना अच्छा लगता है। जेल की सख्ती का उन पर कम असर होता है। छूटने पर भी बाहर नहीं रहते और शीघ्र ही कोई जुर्म करके वापस लौट आते हैं। समाज में स्वतंत्रता के साथ मेहनत मज़दूरी करके रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता। दुबारों को जेल में सुधारना बहुत कठिन काम है। इसलिये जेल में प्रबन्ध किया जाता है कि दुबारा क़ैदी अलग रहें और एकबारा क़ैदियों को न बिगाड़ें। दुबारा क़ैदियों को अधिक दिनों तक जेल में इसलिये रखा जाता है कि वे बाहर जाकर समाज की हानि न कर सकें। इसीलिये दुबारा जुर्म करने पर सज़ा अधिक मिलती है और जेल में छूट भी कम मिलती है।

चूँकि दुबारा क़ैदियों को एकबारा क़ैदियों से अलग रखना आवश्यक है इस कारण दुबारा क़ैदियों को छांटने का तरीक़ा ठीक होना चाहिये। पहिले जेल में नियम था कि यदि किसी आदमी को ताज़ीरात हिन्द के १२ या १८ अध्याय के अन्दर किसी जुर्म में दो मर्तबा सज़ा हो तो उसे जेल में दुबारा बना दिया जाय। इस नियम का अमल करने में बहुत कठिनाई होती थी और ऐसे आदमियों को भी दुबारा बना दिया

जाता था जिन्हें नहीं बनाना चाहिये था। यदि एक आदमी को जब वह लड़का था फल चुराने के जुर्म में एक दफ़ा ३ रु० जुरमाने की सज़ा हुई थी और अब वह दस साल बाद फिर किसी मामले में जेल आये तो उसे भी दुबारा बना दिया जाता था। १६२० की जेल कमेटी ने दुबारा क़ैदियों की परिभाषा फिर से बनाई और इसे सरकार ने मान लिया। उनकी परिभाषा यह थी।

१—दुबारा या दुबारा क़ैदी वह आदमी है—

जिसे ताज़ीरात हिन्द के १२, १७ या १८वें अध्याय के अन्दर सज़ा हुई हो और जिसकी अब की सज़ा और पुरानी सज़ा या सज़ाओं को देखते हुए यह मालूम पड़े कि वह आदमी स्वभाव ही से लूटता है, नकब लगाता है, डाका डालता है, चोरी करता है या चोरी का माल रखता है या लोगों को धमका कर उनसे रुपया लेता है या उन्हें धोखा देता है या जाली सिक्का, नोट या टिकट बनाता है या जाल बनाता है।

२—जिसे ताज़ीरात हिन्द के १६वें अध्याय के अन्दर किसी जुर्म में सज़ा हुई हो और जिसकी अब की सज़ा और पुरानी सज़ा या सज़ाओं को देखते हुए यह मालूम पड़े कि वह स्वभाव ही से दूसरों के शरीर के विरुद्ध जुर्म करता है।

३—जिसे दफ़ा ११० जाब्ता फ़ौजदारी में ज़मानत न देने

के कारण सज़ा हुई हो। कुछ लोगों की राय है कि दुबारा क़ैदियों को भी दो दर्जों में बांट देना चाहिये।

अ—मामूली दुबारा। ब—पेशेवर दुबारा।

पेशेवर दुबारा को अलग जेल में रखा जाना चाहिये जिससे वे दूसरे मामूली दुबारा क़ैदियों को बिगाड़ न सकें। कुछ देशों में दुबारा क़ैदियों को जेल में रखने के लिये अलग क़ानून बने हैं। इङ्गलैंड में १९०८ में दुबारा क़ैदियों के लिये क़ानून बनाया गया था। १८९५ की ग्लैडस्टोन कमेटी ने दुबारा क़ैदियों की पूरी जाँच की थी और उसने कहा था कि बहुत से ऐसे क़ैदी हैं जो लगातार जुर्म करते हैं। बीच बीच में उन्हें थोड़े दिनों की सज़ायें होती हैं जिनकी वह बिलकुल परवाह नहीं करते। उनको किसी एक जुर्म के लिये सज़ा देने से कोई लाभ नहीं है। उनका असल जुर्म यह है कि वे जानबूझ कर जुर्म करने का अपना स्वभाव बना लेते हैं। इसलिये उनके लिये जजों के पास एक नया हथियार होना चाहिये। यह हथियार १९०८ के क़ानून ने दिया। उस क़ानून के अन्दर यह अधिकार दिया गया कि यदि किसी आदमी को तीन मर्तबा जेल की सज़ा हो चुकी हो और फिर भी उस पर कोई जुर्म साबित हुआ हो और उसे जेल की सज़ा हुई हो और अदालत को यह मालूम पड़े कि वह पेशेवर मुजरिम है, तो अदालत को यह अधिकार है कि वह यह हुकुम दे कि वह मुजरिम अपनी सज़ा काटने के बाद कम से कम

पाँच वर्ष और ज़्यादा से ज़्यादा १० वर्ष तक नियम बद्ध किया जाय।

ऐसे क़ैदियों के लिये विलायत में आइलआफ ह्विट में कैम्प हिल पर एक नया जेल बनाया गया है। इस जेल में क़ैदियों के साथ मामूली क़ैदियों से कम सख्ती होती है और इस प्रकार की शिक्षा और नियंत्रण रखा जाता है कि छूटने पर वे ईमानदारी और मेहनत से अपनी जीविका चला सकें। १९३१ के कैम्पहिल में बोर्स्टल खोल दिया गया और इस प्रकार के क़ैदी पहिले तो लेबिस और १९३३ में पोर्टस्मथ जेल को भेज दिये गये। यह क़ैदी भी और क़ैदियों की तरह रात को अलग कोठरियों में और दिन में एक साथ रहते हैं। यहाँ भी क़ैदियों को वही काम करना पड़ता है परन्तु यहाँ क़ैदी को दो आने रोज़ मजदूरी मिलती है। एक साल बाद तीन आने रोज़ और दो साल बाद चार आने रोज़ मज़दूरी मिलती है। अच्छा चालचलन रहने पर उन्हें हर छठे महीने पाँच शिलिंग इनाम मिलता है। यह रुपया उनके नाम जमा कर दिया जाता है वे चाहें तो उसे अपने घर भेज सकते हैं और चाहे वहीं कुछ स्वीकृत चीज़ों के ख़रीदने में ख़र्च कर सकते हैं। यह स्वीकृत चीज़ें प्रातः खाने का सामान, हजामत का सामान और सिगरेट आदि होती हैं। खाने के समय और शाम को सिगरेट पीने की आज्ञा होती है। खाना साथ साथ खिलाया जाता है और संध्या को भी

क़ैदी मिलजुल सकते हैं। कमरे के अन्दर खेल सकते हैं। मिलने के कमरे में अख़बार भी आते हैं और क़ैदी अपनी इच्छा के अनुसार अख़बार ख़रीद सकते हैं। मामूली क़ैदियों से अधिक सुविधा इन क़ैदियों को मुलाक़ात और चिट्ठी पत्री के लिये मिलती है और खाने में भी कई प्रकार का खाना मिलता है। नियंत्रण में अधिक कठिनाई नहीं होती। यह मानी हुई बात है कि जो लोग स्वतंत्र रहने पर बारबार जुर्म करते हैं वे जेल के अन्दर अपना बर्ताव ठीक रखते हैं। इस जेल में अनुशासन अच्छा रहता है और विरला ही क़ैदी यहाँ के नियमों का उल्लंघन करता है। मामूली क़ैदियों की तरह इन क़ैदियों को जेल की सज़ा मिल सकती है। साथ में उनका रुपया भी ज़ब्त किया जा सकता है।

इस तरह के क़ैदी सज़ा के बीच में भी लाइसेंस पर छूट सकते हैं। इस तरह की रिहाई तभी हो सकती है जब कि सरकार को यह विश्वास हो जाय कि यह क़ैदी छूटकर मेहनत मज़दूरी करके ईमानदारी से अपनी जीविका चलावेगा और उनकी जुर्म करने की आशंका कम है प्राय: जिन क़ैदियों को पांच साल की सज़ा होती है वे साढ़े तीन साल बाद लाइसेंस पर छोड़ दिये जाते हैं। जिनके सुधरने की आशा कम होती है वे साढ़ेचार वर्ष में और जिनकी आशा बिलकुल नहीं होती है वे पूरे पांच साल में छूटते हैं। मामूली क़ैदी लाइसेंस पर जिन शर्तों पर छूटता है उससे इन क़ैदियों की शर्तों में बहुत

भेद होता है। मामूली क़ैदियों की शर्तों में केवल इस बात का जिक्र होता है कि छूटने वाला इन कामों को नहीं करेगा। एक प्रकार से वह नकरात्मक शरायतनामा होता है। परन्तु इन क़ैदियों के शरायत नामे में ठीक ठीक लिखा होता है कि किस व्यक्ति या किस सोसाइटी की सुपुर्दगी में वह छोड़ा जा रहा है और किस की आज्ञा के अनुसार ही उसे रहना और काम करना पड़ेगा। लाइसेंस की शर्तों को तोड़ने पर उसे फिर जेल की सज़ा भुगतनी पड़ती है और इस जेल की भी अपनी बाक़ी सज़ा को पूरा करना पड़ता है।

उन्नीसवां परिच्छेद

मन्द बुद्धि क़ैदी

मन्द बुद्धि क़ैदियों पर किसी तरह की ज़िम्मेदारी नहीं सौंपी जा सकती। कोई काम न उनसे लिया जा सकता है और न उन्हें कुछ सिखाया जा सकता है। बोर्स्टल में मन्द बुद्धि के जवान लड़के नहीं भेजे जाते। मन्द बुद्धि बच्चे प्रोबेशन से भी नहीं सुधर सकते हैं। मन्द बुद्धि क़ैदियों को पैरोल पर भी नहीं छोड़ा जाता है।

हिन्दुस्थान में मन्द बुद्धि क़ैदियों के लिये न तो क़ानून बना है और न जेल ही में उनका कोई अलग दर्जा बनाया गया है। सरकार ने एक हुक्म अवश्य निकाला था कि जो पागल हों, मन्द बुद्धि हों या जिनका मन दुर्बल हो या जिनके मन में कुछ ख़रावी हो उन्हें अन्डमान में न भेजा जाया करे। पागलों के लिये तो अलग क़ानून है और उनको रखने के लिये अलग पागलख़ाने या मानसिक चिकित्सालय हैं। परन्तु ऐसे क़ैदी जो पागल तो नहीं हैं किन्तु जिनका मन ठीक नहीं है या जो मन्द बुद्धि हैं उन्हें अन्य क़ैदियों के साथ ही रखा जाता है।

अमेरिका और इङ्गलैंड में आदमी की बुद्धि की जांच की जाती है। इस जांच के तरीक़े निकाल लिये गये हैं। आदमी से कुछ प्रश्न किये जाते हैं और कुछ काम कराये जाते हैं जिससे पता चल जाता है कि उसमें कितनी बुद्धि है। उम्र के हिसाब से सूची बना ली गई है कि इस उम्र का बच्चा इस तरह के प्रश्न का उत्तर दे सकता है या इस तरह के काम कर सकता है। यदि उस उम्र का बच्चा उस उम्र के अनुसार जो काम हैं उन्हें कर सकता है तो उसकी बुद्धि ठीक कही जाती है। परन्तु यदि ६ वर्ष का बच्चा ८ वर्ष की बुद्धि के बच्चे का काम करे तो उसकी बुद्धि कुछ कम बताई जायगी। यदि वह १० वर्ष की उम्र वाले बच्चे की तरह काम करे और प्रश्नों का उत्तर दे तो उसकी बुद्धि कुछ अधिक कही जायगी। परन्तु यदि ३० साल का बालिग़ आदमी १० वर्ष के बच्चे का काम करे और उसी बुद्धि से प्रश्नों के उत्तर दे तो वह मन्द बुद्धि कहलायेगा।

मन्द बुद्धि आदमी भी बहुत तरह के होते हैं। उनके ठीक से दर्जे बनाना कठिन काम है। हिन्दुस्थान में इस विषय पर जानकारी भी कम प्राप्त की गई है। विलायत में मन्द बुद्धि वालों के लिये जो क़ानून बना है उसमें कई दर्जे किये गये हैं। मन्दबुद्धि होने की परिभाषा यह है। जन्म या बचपन ही से मन को पूरी तरह विकास न होने के कारण मन की ख़राबी की वह दशा जिससे आदमी अपने उन सामाजिक कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकता जिसके लिये वह पैदा हुआ है।

सबसे मन्दबुद्धि वह आदमी कहा जाता है जो जन्म या छुटपन ही से मन की ख़राबी के कारण साधारण शारीरिक भय से अपनी रक्षा न कर सके।

उसके ऊपर उन लोगों का दर्जा है जो जन्म या छुटपन से मन की ख़राबी के कारण अपनी जीविका न पैदा कर सकते हों चाहे वह साधारण शारीरिक भय से अपनी रक्षा कर सकते हों।

सबके ऊपर उन लोगों का दर्जा है जो जन्म या छुटपन से मन की ख़राबी के कारण भली प्रकार अपनी जीविका तो कमा सकते हैं परन्तु जन्म या बचपन से मन की ख़राबी के कारण ठीक बुद्धि वाले आदमियों से काम में बराबरी नही कर सकते और न अपना न अपने घर आदि का साधारण बुद्धि से प्रबन्ध कर सकते हैं।

अमेरिका में १९१६ में एक कमेटी मन्द बुद्धि और जुर्म के सम्बन्ध की जाँच के लिये बैठाली गई थी। उन्होंने क़ैदियों की जाँच की और अपनी राय दी कि मन्द बुद्धि क़ैदी जितने मौजूद हैं उनसे मालूम होता है कि जुर्म और मन्द बुद्धि में निकट सम्बन्ध है। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने लिखा है कि मन की ख़राबी, बुद्धि की कमी, मिर्गी और अन्य मन के रोगों से पीड़ित आदमियों की एक काफ़ी तादाद जेलों में मिलती हैं। साधारण क़ानून और नियमों से उनको लगातार सुधारने के यत्न करने से कोई लाभ नहीं। इन लोगों को

सुधारने के लिये दूसरी ही तरकीब निकालनी पड़ेगी। डाक्टर क्रिश्चियन ने राय दी थी कि यदि इस प्रकार के आदमी जेलों में न भेजे जायँ तो जेल में फिर दूसरी सज़ा देने की आवश्यकता ही न पड़े। डाक्टर फर्डिनैण्ड ने बिल्कुल ही सच कहा है कि मन्द बुद्धि ही जुर्म, ग़रीबी और दुराचारों को जन्म देती है।

हिन्दुस्थान ग़रीब और खेतिहर देश है। यहाँ अधिक आदमी खेती ही से जीविका चलाते हैं और देहात में रहते हैं। ऐसे देश में मन्द बुद्धि आदमी का गुज़ारा सहज हो जाता है और जुर्म करने के लिये उन्हें प्रोत्साहन कम मिलता है। साधारण खेती के काम में अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती है। बँधा हुआ काम होता है सहज ही दिन भर में पूरा किया जा सकता है। समाज को वह अधिक हानि नहीं पहुँचाता। हाँ वे बच्चे पैदा करके मन्द बुद्धि वालों की तादाद अवश्य बढ़ाते हैं। बड़े शहरों या कारख़ानों और उद्योग धंधे वाले देशों की बात दूसरी है। शहर में उनके मन पर अधिक ज़ोर पड़ता है। चारों ओर उनके प्रलोभन की सामग्री होती हैं। वे कभी भी मन्द बुद्धि के कारण समाज के नियमों को तोड़कर जुर्म कर सकते हैं और फिर सारी उम्र समाज के लिए एक समस्या बन जाते हैं। सौ वर्ष के भीतर जो सामाजिक उन्नति हुई उसका कम बुद्धि वालों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। आजकल के लोग शिक्षा चाहते हैं और मन्द बुद्धि

वाले उसे प्राप्त नहीं कर सकते। लोग हाथ की कारीगरी और हुनर चाहते हैं और मन्द बुद्धि वाले उन्हें नहीं सीख सकते। जीवन आवश्यकताओं का पैमाना ऊँचा हो गया है और वह उसे समझ ही नहीं सकते और न उसकी इच्छा करते हैं और न उसे पा ही सकते हैं। जैसे जैसे शहर बढ़ेंगे और देश के उद्योग धंधों की उन्नति होगी समाज को अपने आदमियों में मन की कमज़ोरी अधिक मालूम होगी। जब ही तिजारत में उथल पुथल होगी मन्द बुद्धिवाले आदमी सबसे पहिले हटाये जायेंगे और सबसे पीछे नौकरी पायेंगे।

हिन्दुस्थान में अभी तक सभी मुजरिमों के साथ एकही सा बर्ताव होता आया है। यह तरीका ग़लत है। जुर्म के कारण का पता लगाना ज़रूरी है। बीमारी का इलाज बीमारी के पूरे कारण के पता लगाए बिना भी हो सकता है परन्तु ठीक लाभ तभी होगा जब उसके कारण का पूरा पूरा पता चल जायगा। यही बात जुर्म और उसके इलाज के लिए लागू है।

अमेरिका में मन की बीमारियों की भली भाँति छानबीन की जाती है बहुत सी अदालतों में मनोवैज्ञानिक (साइकालो-जिस्ट) और मनोचिकित्सक (साइकोट्रस्ट) नौकर होते हैं जो मुलज़िम के मन और बुद्धि की जांच करके अदालत को सूचना देते हैं। जुर्म साबित होने पर मुजरिम की मानसिक दशा पर ध्यान रखते हुए ही उसे सज़ा दी जाती है। बहुत

से जजों की राय है कि बिना इस तरह की जांच किए हुए वे ठीक फैसला ही नहीं दे सकते। बच्चों और जवान लड़कों के लिए तो इस तरह की मानसिक जाँच की बहुत ही ज़रूरत है। शरीर और मन की दशा का ठीक से बिना पता लगाये कोई भी क़ानून जाननेवाला यह सलाह नहीं दे सकता कि मुजरिम बच्चे या जवान लड़के को तम्बीह करके या जुर्माना करके या आज़माइशी रिहाई पर छोड़ दिया जाय या उसे रिफ़ारमेटरी या जेल में भेजा जाय। बच्चों और जवान लड़कों के हित के लिए आवश्यक है कि उनके मन और शरीर और घर इत्यादि की जाँच के पीछे ही उनके लिए उचित चिकित्सा की योजना की जाय। कुछ विद्वानों की राय है कि मन्द बुद्धि और कमज़ोर मन वाले लड़कों को प्रोबेशन या आज़माइशी रिहाई पर नहीं छोड़ना चाहिए। उन पर आज़माइशी रिहाई सफल नहीं हो सकती और उन्हें बिलकुल बिना सज़ा के छोड़ना भी अधिक खराब करना है। उनके रहने के लिए अलग ही जगह बनवानी चाहिए।

अमेरिका के जेलों में भी मनोवैज्ञानिक नौकर हैं। जेल में पहुँचने पर क़ैदी की शारीरिक जांच डाक्टर करता है और मन की जांच मनोवैज्ञानिक करता है। उसकी बुद्धि को नापा जाता है तथा उसमें कोई मानसिक बीमारी या कमी है इसका पता लगाया जाता है। इस जांच पड़ताल ही के पीछे जेल का गवर्नर हर एक क़ैदी का ठीक से नियंत्रण कर

सकता है, उसे सज़ा दे सकता है और उसका सुधार कर सकता है या उसकी रिहाई की शर्तों को निश्चित कर सकता है। साधारण बुद्धि वाले क़ैदियों का जेल, दुर्बल मन वाले या मन्द बुद्धि वाले क़ैदियों के लिये उचित स्थान नहीं है और इस तरह के लोग जेल के प्रबन्ध में गड़बड़ डालते हैं और साधारण क़ैदियों के सुधार में रोड़ा अटकाते हैं।

दुर्बल मन और मन्द बुद्धिवाले क़ैदियों के लिए अमेरिका में अलग संस्थायें हैं जिनमें वे रखे जाते हैं। इस तरह रखने की कोई मियाद तय नहीं है और कुछ लोगों को तो वहाँ सदा के लिए रहना पड़ता है। यदि उनकी मानसिक दशा सुधर गई तो वे पैरोल पर छूट सकते हैं। यह भी ठीक जान लेना चाहिए कि मन की दुर्बलता और कम बुद्धि का कोई इलाज नहीं है। इसलिए ऐसे लोगों के मन की जांच होना बचपन ही में ज़रूरी है जिससे उनको अलग ,कर दिया जाय और वह आगे चलकर जुर्म करने से रुक जायँ।

अमेरिका की सरकारी कमेटी ने नीचे लिखी सिफ़ारिशें की थीं—

१—मानसिक जांच के अस्पताल खोले जायँ।

२—सब क़ैदी पहिले ऐसे जेल में भेजे जायँ जहाँ उनके शरीर और मन की जाँच हो सके।

३—क़ैदियों को इस तरह बाँटा जाय—

(क) क्षय रोग से पीड़ित एक जेल में रखे जायँ।

(ख) रिफ़ारमेटरी वाले लड़के रिफ़ारमेटरी में भेजे जायँ यदि उनकी शारीरिक और मानसिक दशा ठीक हो।

(ग) कम उम्र के और ठीक मन के क़ैदी ऐसे जेलों में भेजे जायँ जहाँ उद्योग धंधे चलते हों।

(घ) अधिक उम्र के क़ैदी और ऐसे क़ैदी जिन्हें कुछ और न सिखाया जासके ऐसे जेल में रखे जायँ जहाँ खेती का काम कराया जाता हो।

(ङ) पागलों या मानसिक रोगियों को मानसिक चिकित्सालयों में रखा जाय। जो पागल अच्छे हो सकते हों उन्हें चिकित्सालय के अलग भाग में रखा जाय।

(च) मानसिक दोष वाले, कम बुद्धि वाले और मिर्गी वाले क़ैदी अलग रखे जायँ उनकी काफ़ी दिनों तक अच्छी तरह जाँच की जाय और उन्हें शिक्षा देने की कोशिश की जाय। जो सुधरने के लिये बिलकुल असमर्थ हों उन्हें एक अलग स्थान में रोक लिया जाय। जो सुधर सकते हों उनका ठीक इलाज कराया जाय और ठीक होने पर उन्हें रिहा कर दिया जाय।

४—सरकार की ओर से मुजरिम आदमी और औरतों के लिये जिनमें मानसिक दोष हों उनकी रक्षा और इलाज के लिये अलग अलग अस्पताल बनवाये जायँ।

५—जिन आदमियों को साधारण जुर्म में सज़ा हो उनकी मानसिक दशा की जाँच की जाय और इसका प्रबन्ध हर अदालत में हो।

६—मानसिक रोगों के इलाज के लिये अस्पताल खोले जायँ।

७—इन अस्पतालों की जाँच के लिये एक सदर दफ़्तर खोला जाय।

८—जिन लड़कों को जुर्म करने के अपराध में या अनुचित संरक्षता के कारण अदालत के सामने लाया गया हो उनकी मानसिक दशा की जाँच की जाय और जो कम बुद्धि वाले साबित हों उन्हें एक अलग संस्था में रखा जाय।

सभी देशों में और हिन्दुस्थान में भी अब प्रोबेशन या आज़माइशी रिहाई, पैरोल, जेलों में क़ैदियों के वर्गीकरण की रीति, स्कूलों या बोर्स्टल या रिफ़ारमेंटरी में जवान लड़कों और बच्चों का भेजना, चालू है। परन्तु यदि बच्चों, जवान लड़कों और बालिग़ क़ैदियों की मानसिक जाँच न की जाय और उन्हें औरों के साथ मिला कर रखा जाय तो यह जितने सुधार के तरीक़े हैं ठीक से काम में न लाये जा सकेंगे और पीछे निराश होना पड़ेगा और व्यर्थ रुपया और उद्योग नष्ट होंगे। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि मानसिक जाँच पहिले कर ली जाय और जिनकी मानसिक दशा या स्वास्थ्य ख़राब हो या जिन्हें कोई मानसिक रोग हो उन्हें अलग छाँट लिया जाय।

१६२० की जेल कमेटी के दो मेम्बरों ने इस बात की सिफ़ारिश की थी कि हिन्दुस्थान में भी धीरे धीरे मनोविज्ञा

और मनोविकार चिकित्सा के तरीक़े आरम्भ किये जायँ। उन्होंने राय दी थी कि शिक्षा विभाग और जेल विभाग मिल कर हिन्दुस्थान के बच्चों की उम्र के हिसाब से औसत बुद्धि के पैमाने स्थिर करें। हिन्दुस्थान में रुपये की कमी है और इसलिये जो लड़के पढ़ाये नहीं जा सकते या जो आदमी सुधारे नहीं जा सकते उनकी पढ़ाई या सुधार में रुपया क्यों नष्ट किया जाय। उन्होंने यह भी सिफ़ारिश की थी कि हिन्दुस्थान से डाक्टर ऐसी शिक्षा प्राप्त करने के लिये अमेरिका भेजे जायँ। पागलखाने का डाक्टर जेल में भी काम करे और क़ैदियों के उचित वर्गीकरण में सहायता दे। उन्होंने यह भी सिफ़ारिश की थी कि दोषी बच्चों और जवान लड़कों की मानसिक जाँच आज़माइशी रिहाई के पहिले एक विशेषज्ञ के द्वारा होनी चाहिये। यदि विशेषज्ञ न हो तो डाक्टर ही के द्वारा जाँच कराई जाय। इसी प्रकार क़ैदियों की रिहाई भी यदि कुछ शर्तों के साथ की जाय तो उनकी मानसिक जाँच पहिले होनी चाहिये। मानसिक विकार एक ख़तरे की घंटी है। ऐसे आदमियों को उनके और समाज दोनों ही के हित के लिये सदा किसी जगह रोककर रखना चाहिये। यह आवश्यक नहीं है कि उन्हें जेल ही में रखा जाय। यही आर्थिक बचत का सच्चा उपाय है और समाज की पूरी रक्षा इससे हो सकती है। ग़लत आदमियों को यदि आज़माइशी रिहाई पर छोड़ा जायगा तो आज़माइशी रिहाई का तरीका भी बदनाम होगा।

उन्होंने यह सिफ़ारिश की थी की कम बुद्धि और मान सिक रोग वाले सब क़ैदी एक विशेष जेल में रखे जाने चाहिये। यदि एक जेल न सुधरने वाले और न ठीक हो सकने वाले क़ैदियों के लिये अलग कर दिया जाय तो थोड़े दिनों में मालूम पड़ेगा कि उसमें अधिकतर क़ैदी मन्द बुद्धि और मानसिक रोगों से पीड़ित हैं। कम बुद्धि और मानसिक विकार रखने वाले बच्चों के लिये अलग रिफ़ारमेटरी स्कूल होने चाहिये।

जेल कमेटी के दूसरे मेम्बरों ने इन सिफारिशों को नहीं माना और इसलिये अभी तक इस ओर हिन्दुस्थान में बिलकुल उन्नति नहीं हो सकी।

बीसवां परिच्छेद

जरायम पेशा जातियाँ

हिन्दुस्थान ही ऐसा देश है जिसमें कुछ संगठित जातियाँ हैं जिनका पेशा जुर्म करना ही है। और देशों में इस तरह की जातियाँ नहीं पाई जाती। कब और कैसे इन जातियों की उत्पत्ति हुई यह पता लगाना कठिन काम है। इन जातियों का पेशा ही जुर्म करना है। बच्चों को छुटपन ही से जुर्म करने की शिक्षा दी जाती है। जुर्म करने में न तो इन्हें शर्म आती है और न इनमें ग्लानि ही पैदा होती है। यहाँ तक कि यह लोग समझते हैं कि ईश्वर ने इन्हें जिस काम के लिये पैदा किया है वे वही कर रहे हैं।

ऐसी जरायम पेशा जातियों का सुधार करना कठिन काम है। जिन तरकीबों से साधारण पेशेवर दुबारा क़ैदी सुधारा जा सकता है वह इन लोगों के लिये बिल्कुल बेकार साबित हो चुकी हैं। जेल की सख़्ती और जेल में सुधार की योजनायें दोनों ही उनके सुधारने में बेकार साबित हुई हैं। शुरू में इन जरायम पेशा जातियों के साथ भी वही व्यवहार होता था जो दूसरों के साथ किया जाता था परन्तु जब देखा

गया कि इन पर उनका बिल्कुल प्रभाव नहीं पड़ता तो इनके लिये अलग क़ानून बनाया गया। १८७१ में जरायम पेशा जातियों के लिये अलग क़ानून बनाया गया। इस क़ानून के द्वारा ऐसी जातियाँ जो जुर्म करती थीं जरायम पेशा जातियाँ स्थिर की जा सकती थीं और उस जाति के आदमियों की रजिष्ट्री की जा सकती थी और उनकी देखरेख और उनका नियंत्रण किया जा सकता था। १८८९ में इस क़ानून में संशोधन हुआ। परन्तु इस क़ानून में अभी तक इन जातियों के आने जाने पर कोई रोक या पाबन्दी लगाने का नियम न था इसलिये क़ानून कारगर न हो सका। १९११ में भारत-सरकार ने एक कमेटी जरायम पेशा कानून की जाँच करने के लिये बनाई जिसके स्वर्गीय गोखलेजी भी सदस्य थे। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट दी और फिर जरायम पेशा जातियों के लिये कड़े नियम बनाये गये। बसी हुई जरायम जातियाँ और चलती फिरती हुई जरायम जातियाँ दोनों पर पाबन्दियाँ लगाने के नियम बनाये गये। इन जातियों में जो लोग अच्छे और सच्चरित्र थे उनकी बचत का भी प्रबन्ध किया गया। १९२० की जेल कमेटी ने भी कुछ सिफ़ारिशें कीं। १९२४ में नये सिरे से जरायम जातियों के लिये क़ानून बना। १९३३ तक उसमें कई संशोधन हो चुके हैं। इस क़ानून से प्रांतीय सरकार को अधिकार है कि किसी जाति या उसके किसी भाग को जरायम जाति स्थिर कर दे और उसके सब या कुछ आद-

मियों की रजिस्टरी कर ले। रजिस्टरी किये हुए लोगों के आने जाने के विषय में पाबन्दियाँ लगा दे या उनको सेटिलमेंटों में रखने की आज्ञा दे। हिन्दुस्थान में कई स्थानों में जरायम पेशा जातियों के सुधार के लिये सेटिलमेंट या बस्तियाँ बसाई गई हैं। हमारे सूबे में कानपुर के पास कल्यानपुर में, लखनऊ के पास आर्यनगर में मुरादाबाद के पास फ़ज़लपुर गाँव में और भी कई स्थानों में ऐसी बस्तियाँ हैं। इन बस्तियों का या तो सरकार के द्वारा या सालवेशन आर्मी के द्वारा या आर्य-समाज के द्वारा प्रबन्ध होता है।

जरायम पेशा जातियों की तादाद हिन्दुस्थान में क़रीब क़रीब ५० लाख है। हमारे सूबे में ४६ जातियाँ जरायम पेशा स्थिर की गई हैं। इन जातियों की आबादी क़रीब १५ लाख है। पंजाब में ७६ जातियाँ जरायम पेशा स्थिर की गई हैं और उनकी आबादी ११ लाख है। यह तादाद इतनी अधिक है कि सहज में इन जातियों का न तो सुधार हो सकता है और न उन्हें जुर्म करने ही से रोका जा सकता है। केवल एक फ़ीसदी जरायम पेशा जातियों को सेटिलमेंट में रखा गया है। ६६ फ़ीसदी की रोकथाम का कोई उचित प्रबन्ध नहीं है। १६३८ की यू० पी० की पुलिस रिपोर्ट में लिखा गया है कि एक ही साल में जरायम पेशा जातियों ने दो हज़ार रुपया डाका डालकर लूटा, ३० लाख रुपयों की चोरी की, ३४२६ जानवर चुराये और ३४००० स्थानों में नक़ब लगाई। जुर्मों

की तादाद इतनी अधिक है कि कोई भी गवर्नमेंट या समाज बिना इसकी रोक थाम किये नहीं रह सकती।

जिस तरह किसी भी क़ैदी को सुधारने के लिये उसकी जाँच पड़ताल करनी और यह पता लगाना कि वह जुर्म क्यों करता है आवश्यक है, उसी तरह किसी भी जरायम पेशा जाति का सुधार तभी हो सकता है जब उस जाति की जाँच पड़ताल अच्छी तरह से की जाय और यह पता लगाया जाय कि वह जुर्म क्यों करती है। परन्तु यह दुख की बात है कि जरायम पेशा जातियों की उस तरह की कोई जाँच पड़ताल नहीं की गई है जिस तरह से अन्य लोगों की की गई है। इसलिये जरायम पेशा जातियों के विषय में कोई बात केवल अटकल ही से कही जा सकती है। जुर्म करने वाले व्यक्तियों के बारे में कहा जाता है कि वे समाज के भीतर ठीक से नहीं चल पाते हैं और इसीलिये वे जुर्म करते हैं। यही बात इन जरायम पेशा जातियों में भी है, यह भी समाज में ठीक से नहीं चल पाती हैं और इसलिये जुर्म करती हैं। परन्तु जरायम पेशा जाति का कोई भी आदमी अपने जाति के प्रति जो वफ़ादारी दिखाता है और जिस प्रकार से उसके नियम का पालन करता है वह एक साधारण आदमी अपनी समाज के प्रति नहीं कर सकता है। जिस तरह और जातियाँ अपना संगठन रखती हैं वैसे ही इन जरायम पेशा जातियों का अपना अपना संगठन होता है। उनकी पंचायतें भी अलग होती हैं

और यह पंचायत ही जातियों के अन्दर नियम बनाती हैं। जरायम पेशा जातियों का हर आदमी पंचायत को मानता है और हर एक नियम का पालन करने का यत्न करता है। जुर्म करना वे बुरा काम नहीं किन्तु अच्छा काम समझते हैं, और बहुत सी जातियों में तो तब तक लड़के का व्याह नहीं हो सकता जब तक वह कोई जुर्म करके न दिखा दे।

बहुत सी जातियों का सुधार उनकी पंचायतों द्वारा हो गया है। परन्तु जरायम पेशा जातियों के सुधार में जो सबसे बड़ी अड़चन है वह उनकी पंचायतें ही हैं। जब कोई दल कोई जुर्म करने जाता है तो अपने साथियों को सोच समझ कर उसे चुनना पड़ता है और वह लूट के माल के विषय में पहिले से समझौता कर लेता है। जरायम पेशा जातियों में कोई चुनने की आवश्यकता नहीं है। जाति का हर एक आदमी विश्वासी माना जाता है। लूट के माल का बटवारा पंचायत के द्वारा हो जाता है। पंचायत निम्नलिखित काम करती है—

१—जो लोग जुर्म करने के अपराध में पकड़े जाते हैं, उनके परिवार के पालन पोषण का प्रबन्ध करती है।

२—जो मुजरिम भागे रहते हैं, उन्हें पुलिस की कारगुजारियों की सूचना देती है।

३—चोरी या लूट के माल को बेचने का प्रबन्ध करती है।

४—किसी स्थान में जुर्म करना आरम्भ किया जाय या कैसा भेष बदला जाय यह निश्चय करती है।

५—जो लोग पुलिस को भेद देते हैं उन्हें दंड देती है।

६—औरतों के द्वारा जासूसी का काम करती है और दूसरों के घरों का भेद लेती है।

७—लूट के माल के बटवारे का प्रबन्ध करती है।

८—पकड़े जाने वाले आदमियों के मुक़दमों की पैरवी का प्रबन्ध करती है।

९—जो लोग जुर्म करने में मारे जाते हैं उनके परिवार के निर्वाह का प्रबन्ध करती है।

और जातियों में पंचायतें जाति के अन्दर उपयोगी सामाजिक कार्यों का प्रबन्ध करती हैं, परन्तु जरायम पेशा जातियों की पंचायतें तरह तरह के जुर्मों का संगठन करती हैं।

जरायम पेशा जातियों के जुर्म भी निश्चित हैं। एक जाति एक ही तरह के जुर्म करगी, दूसरी जातियों के जुर्मों के अधिकार पर पद नहीं रखेगी। अलीगढ़, बुलन्दशहर और बदायूँ ज़िले के अहेड़िये नक़ब लगाते हैं और सड़क पर लूटमार करते हैं। वे चोरी कभी नहीं करते। कञ्जड़ पशुओं की चोरी करते हैं, चुराकर मार डालते हैं और खा जाते हैं परन्तु अपने रहने के स्थान के निकट कभी चीरी नहीं करते। कञ्जड़ डाका नहीं डालते। औंधिया केवल जाली सिक्के ढालते हैं, चोरी नहीं करते। बदक और पासी घर में शराब बनाते हैं। दूसरे स्थानों में बसकर और भेष बदल कर दूसरों को ठगते हैं। बरवार गोंडा और हरदोई ज़िलों में रहते हैं। मेले और घाट की

चोरी करते हैं। अपने को दिनिया चोर कहते हैं, सूर्य छिपने के बाद और दिन निकलने के पहिले चोरी नहीं करते और किसी से ज़बरदस्ती नहीं करते। आँख चूकी और पगड़ी ग़ायब इसी मसल पर काम करते हैं। बौरिया, बेडिया, डोम, हाबुड़ा, नट, सासिया, करबाल भी जरायम पेशा जातियाँ हैं।

सूरत शक्ल में जरायम पेशा जातियों और दूसरी जातियों में अधिक भेद नहीं मालूम पड़ता। समाज में उसी तरह की और जातियों में और जरायम पेशा जातियों में केवल देखकर पहिचान करना कठिन है। इस कारण जरायम पेशा जातियों के आदमी सहज भेष बदल कर दूसरों को धोखा दे पाते है। बौरिया, गोसाईं या सन्यासी बन जाते हैं। मल्लाह, ठाकुर, बनिया, माली, तेली का भेष बना लेता है। डोम, कहार, धीमर या कुर्मी बन जाते हैं।

दूसरे देशों में पेशेवर मुजरिमों की जाँच की गई है और यह साबित हुआ है कि उनमें और अन्य आदमियों की सूरत शकल में बहुत भेद नहीं होता। हिन्दुस्थान में जरायम पेशा जातियों की कोई जाँच नहीं हुई है। परन्तु यदि जाँच की जाय तो नतीजा वही निकलेगा जो अन्य देशों में निकला है। जरायम पेशा जातियाँ कम बुद्धि वाली होती हैं या उनमें किसी प्रकार का मानसिक विकार होता है या उनकी नस्ल ही में कुछ खराबी होती है या उनमें आत्म संयम नहीं होता है या उनमें किसी प्रकार का दौरा उठता है जिससे वे जुर्म

करती हैं, इन बातों का अभी तक ठीक पता नहीं लगा है। जरायम पेशा जातियाँ बहुत ग़रीब हैं। उन्हें कठिनाई से खाने भर को मिलता है। तन ढकने को कपड़े भी नहीं मिलते। शायद ही उनमें कोई पढ़ा लिखा हो। अधिकांश के पास जोतने के लिए ज़मीन भी नहीं होती और न कोई उद्यम ही होता है कि जिससे वे अपना पेट पालन कर सकें। जरायम पेशा जातियों में अधिक जातियाँ ऐसी हैं जो अछूत या हरिजन कहलाती हैं। इसलिये न केवल यह आर्थिकरूप ही से नीच और अधम समझी जाती हैं किन्तु धर्म से भी उन्हें नीचा ही माना जाता है। ऊँची जातियाँ उनसे मिलना जुलना तो दूर रहा उनके पास भी नहीं फटकतीं। इन आर्थिक और सामाजिक और धार्मिक बातों का फल यह हुआ है कि इन जातियों ने जुर्म करना ही अपना प्रधान काम बना लिया जिससे अपना जीवन निर्वाह कर सकें और सदियों से और पीढ़ियों से यह काम करने के पीछे वे इसे ही अपना धर्म समझने लगे हैं और बिना किसी हिचक के जुर्म करते हैं और ऐसा करना उचित समझते हैं। पंजाव में ज़िला कांगड़ा में बुहरा ब्राह्मण नामक एक जरायम जाति है वे लूट मार करते हैं। उनका कहना है कि जब दिन अच्छे थे तब लोग ब्राह्मणों को दान देते थे। आज कल के गिरे हुए समय में ब्राह्मणों को लोग दान नहीं देते इसलिये यदि वे लूटमार कर कुछ छीन लेते हैं तो वह एक प्रकार का दान

लेना ही है। चमारों का कहना है कि जिस तरह बनिया तौल और हिसाब की गड़बड़ी कर दूसरों को लूटता है या सुनार सोने में ताँबा मिलाकर दूसरों को ठगता है, इसी प्रकार यदि यह लोग दूसरों के यहाँ चोरी करके थोड़ा सा धन पैदा करते हैं तो कोई बुरा काम नहीं करते हैं। जरायम पेशा जातियों का कहना है कि जैसे और जातियों के कर्म बंधे हुये हैं वैसे ही जुर्म करना उनका भी कर्म है।

जरायम पेशा जातियों की रजिस्ट्री की आज्ञा सूबे की सरकार देती है और ज़िले का कलेक्टर उनकी रजिस्ट्री करने के लिए एक अफ़सर नियुक्त करता है। जिन लोगों की रजिस्ट्री होने को होती है उन्हें नियत समय और स्थान पर बुलाया जाता है और रजिस्टर में उनका नाम दर्ज कर लिया जाता है और उनकी उंगलियों की छाप भी ली जाती है। इस अफ़सर को यह भी अधिकार है कि यदि वह चाहे तो किसी आदमी को माफ़ी दे दे और उसकी रजिस्ट्री न करे। रजिस्टर जब पुराना हो जाता है तब पुलिस सुपरिनटेन्डेन्ट के यहाँ रख दिया जाता है। इस रजिस्टर में बिना कलक्टर के हुक्म के न तो किसी का नाम काटा जा सकता है और न किसी का नाम बढ़ाया जा सकता है। जिन आदमियों की रजिस्टरी होती है, उन्हें नियत समय पर अपनी सूचना देनी पड़ती है। अपने रहने के स्थान की सूचना भी देनी पड़ती है। और यदि उसमें कोई परिवर्तन होता है या आदमी कहीं

बाहर जाना चाहता है तो उसे उसकी भी सूचना देनी होती है। इस रजिस्ट्री के द्वारा पुलिस जरायम पेशा जातियों का नियंत्रण करती है। इसके अतिरिक्त सरकार को अधिकार है कि जरायम पेशा जातियों पर आने जाने के नियम लगा दे और सीमा स्थापित कर दे कि जिसके अन्दर ही वे रह सकते हैं। जरायम पेशा जातियों को सेटिलमेंटों या बस्तियों में भी रखने का हुक्म दिया जा सकता है। इस हुक्म के देने के पहिले निम्नलिखित बातों पर विचार किया जाता है—

१—जरायम पेशा जाति के लोग किस तरह का जुर्म करते हैं।

२—जरायम पेशा जाति के लोग क्या काम करते हैं और वह काम वास्तव में करते हैं या केवल दिखाने के लिये करते हैं जिससे उन्हें जुर्म करने में आसानी हो।

३—जिस स्थान पर उन्हें रखने का विचार किया जाता है वह स्थान उचित है या नहीं।

४—जहाँ यह लोग रखे जायँगे वहाँ वे अपना जीवन निर्वाह कैसे करेंगे। सरकार को यह भी अधिकार है कि जरायम-पेशा जातियों के लड़कों को माता पिता से अलग कर दे और उनकी पढ़ाई लिखाई और उद्योग-धंधों की शिक्षा का प्रबन्ध करे। यदि किसी जरायम पेशा जाति का कोई भी आदमी क़ानून के विरुद्ध कोई भी काम करे तो उसे कड़ी सज़ा दी जा सकती है। मतलब यह है कि जरायम पेशा जातियों

को गाँव ही में रखा जाय और वहाँ उन लोगों की निगरानी की जाय। गाँव के मुखिया और चौकीदार का काम है कि जरायम पेशा जातियों के लोगों की देखभाल करें और यदि उनमें से कोई ग़ैरहाज़िर हो तो उसकी सूचना दें। जो लोग बदमाश हैं और लगातार जुर्म करते हैं उन्हें सेटिलमेंटों में रखा जाता है। थोड़े दिनों पीछे यह पता चला कि घर के लोगों से अलग सेटिलमेंटों में जरायम पेशा लोग रहना पसंद नहीं करते। सेटिलमेंटों से जरायम पेशा लोग बहुत भाग भी जाते थे। इसलिये यह तय किया गया कि जो लोग सेटिलमेंट में रखे जायँ उनके परिवार वाले भी उनके साथ रहें। सेटिलमेंटों का मतलब यह है कि जरायम पेशा लोगों के ऊपर कड़ी किन्तु सहानुभूति पूर्ण हुकूमत रहे और उनको ईमानदारी और मेहनत से रोटी कमाने का अवसर दिया जाय। जरायम पेशा जातियों के लिये चार प्रकार के सेटिलमेंट बनाये गये हैं।

१—बस्तियाँ जहाँ रहने वाले उद्योग-धंधों में काम करते हैं। ऐसी बस्तियाँ मिलों के पास बसाई जाती हैं।

२—बस्तियाँ जहाँ के रहने वाले किसानी करते हैं। सरकार जोतने के लिये उन्हें ज़मीन देती है।

३—बस्तियाँ जहाँ के रहने वाले जंगलों में काम करते हैं।

४—रिफ़ारमेंटरी ढँग की बस्तियाँ।

इनके अलावा लड़कों और बदचलन औरतों के लिये अलग बस्तियाँ हैं। इन सब बस्तियों में रहने वाले अपनी

आमदनी पूरी अपने काम में ला सकते हैं और नेक चलन रहने पर छुट्टी लेकर बाहर भी जा सकते हैं। कानपुर के पास कल्यानपुर में एक बस्ती है। यहाँ के रहने वाले कानपुर में कूपरऐलन फ़ैक्टरी में काम करते हैं। पहिले वे लोग स्पेशल ट्रेन से मिल में काम करने आते थे। अब सेटिलमेंट में मोटर लारी है जिस पर बैठकर आते हैं। बस्ती में उद्योग-धंधे भी हैं, कपड़े की सिलाई होती है और सरकारी मुहकमों की वर्दियाँ सी जाती हैं। बस्ती के साथ खेत भी हैं जिनमें खेती भी होती है। सरकार के द्वारा ही इस बस्ती का प्रबन्ध होता है।

मद्रास के सूबे में स्टुवर्टपुरम नाम की जगह में जरायम पेशा जातियों के लिये एक बस्ती बनाई गई है। यहाँ के रहने वाले खेती करते हैं। मद्रास में नैलोर ज़िले में वित्रगुन्ठा स्थान में भी इसी तरह की एक बस्ती है। उन लोगों के लिये वहाँ ढाई सौ घर बनवाये गये हैं। मिलने बैठने के लिये एक बड़ा कमरा है। लड़कों के लिये स्कूल हैं। हर एक परिवार को ज़मीन दी गई है। कुल एकसौ दो एकड़ ज़मीन है। यह ज़मीन रहने वालों के बीच में बाँट दी गई है। जिनका चाल-चलन ठीक रहता है उन्हें अपना माल बेचने के लिये बाहर जाने की आज्ञा दे दी जाती है।

मद्रास के सूबे में कबाली स्थान पर रिफ़ारमेटरी सेटिलमेंट है। पंजाब में अमृतसर में भी इसी प्रकार की सेटिलमेंट

है। रिफ़ारमेंटरी सेटिलमेंटों में कड़े नियम होते हैं। सेटि-लमेंट के चारों ओर काँटेदार तार लगा होता है और पहरा रहता है। रिफ़ारमेंटरी सेटिलमेंट एक प्रकार का जेल ही है और उसका प्रबन्ध जेल ही के ढंग पर होता है। इस प्रकार के सेटिलमेंटों में अधिक ख़तरनाक लोग रखे जाते हैं।

१६२० की जेल कमेटी ने जरायम पेशा जाति के सेटिल-मेंटों का मुआइना किया था। कमेटी ने अपनी सिफ़ारिशों में लिखा है कि जरायम पेशा जाति के सुधार में तभी सफलता मिल सकती है जब उन लोगों के आर्थिक आराम का विचार रखा जाय। इस कारण सेटिलमेंट ऐसे स्थान पर खोली जानी चाहिये जहां काम भली भांति मिल सके। उनकी राय थी कि अलग अलग आदमियों को सेटिलमेंन्ट में न भेजना चाहिये किन्तु एक दल के सब आदमियों को उसमें भेजना और बसाना चाहिये। सेटिलमेंटों में सरकारी और गैर-सरकारी दोनों आदमियों का मिलकर प्रबन्ध होना चाहिये। जिस धर्म की जरायम पेशा जाति हो उसी धर्म के लोगों के द्वारा उनका सुधार होना. चाहिये। जरायम पेशा जाति को एक सूबे से हटाकर दूसरे सूबे में न भेजना चाहिये। जहाँ तक हो सके सेटिलमेन्ट उनके रहने के स्थान के पास ही होना चाहिये। बच्चों को उनके माता पिता से अलग न करना चाहिए। बच्चों की पढ़ाई का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे सहज से अपनी

रोटी कमा सकें। सेटिलमेन्ट के लिए ऐसे स्थान चुनना चाहिये जो स्वास्थ्य के लिये ठीक हों और सेटिलमेन्ट में दवाई और इलाज का उचित प्रबन्ध होना चाहिये।

कमेटी ने राय दी थी कि उन लड़कों की जो सेटिलमेन्ट में पैदा हुए हों या जो वहाँ अपने माता पिता के साथ आये हों, रजिस्ट्री नहीं होनी चाहिये। उनकी रजिस्ट्री तभी होनी चाहिये जब उन्हें किसी जुर्म में सज़ा मिले। सेटिलमेन्ट के मैनेजर का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वहाँ रहने वाले सभी आदमियों को उचित काम दे। यदि खेती के लिए ज़मीन दी गई हो तो वह ज़मीन अच्छी होनी चाहिये और सिंचाई का ठीक प्रबन्ध होना चाहिए।

सेटिलमेन्ट के अन्दर पुलिस का पहरा नहीं होना चाहिए। सेटिलमेन्ट के रहने वालों के ही द्वारा पहरे का प्रबन्ध होना चाहिए। बाहर पुलिस का पहरा रह सकता है जिससे पास पड़ोस की रक्षा हो सके। जो लोग सेटिलमेन्ट से भागें या अन्दर रहकर नियम के विरुद्ध चलें उन पर अदालत में मुकदमा चलना चाहिए। कमेटी ने यह भी राय दी थी कि सेटिलमेन्ट से रिहाई किस प्रकार हो नियम बनने चाहिये। सेटिलमेन्ट का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि उसमें रहने वालों का सुधार हो। सेटिलमेंट केवल जरायम पेशा आदमियों को रोक रखने का स्थान न होना चाहिए।

अपने सूबे में जरायम पेशा क़ानून को फिर से ठीक करने के लिए काँग्रेस गवर्नमेंट ने श्री पं० वैङ्कटेशनारायण तिवारी की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई थी। इस कमेटी ने इस मामले की बड़ी अच्छी जाँच की और बहुत उचित सिफ़ारिशें की परन्तु काँग्रेस गवर्नमेंट के इस्तीफ़ा देने के बाद इस कमेटी की सिफ़ारिशों पर काम न हो सका।

फिर भी काँग्रेस गवर्नमेंट ने हुक्म निकाल दिया था कि कोई भी जाति जरायम पेशा न कहलावेगी। केवल जो आदमी बार बार जुर्म करेंगे उन्हीं की रजिस्टरी की जायगी।

इक्कीसवां परिच्छेद

जेल की मशक़्क़त

जेल में क़ैदियों से क्यों काम लिया जाय यह कड़ी समस्या है। जब जेलों में क़ैदी कड़ी सज़ा काटने के लिये नहीं भेजे जाते थे और केवल मुक़दमें के दौरान में रखे जाते थे तब क़ैदियों से कोई काम नहीं लिया जाता था। जान हौवर्ड ने उस समय के जेलों का मुआइना किया था और अपनी राय दी थी कि जेलों में आदमियों को अपना जीवन मजबूरन काहिली से बिताना पड़ता है और यही उनके पतन का कारण है।

चार कारणों से जेल में मशक़्क़त ली जाती है।

१—जेल की सख़्ती को कम करने के लिये।

२—क़ैदी से काम करा कर या काम की चीज़ें बनवाकर उसके ऊपर जो खर्च होता है उसे कम करने के लिये।

३—क़ैदियों के सुधार के लिये।

४—जेल में अनुशासन स्थापन करने के लिये।

१७७० में हौवर्ड ने हालैंड के जेलों के विषय में एक किताब लिखी थी। उन दिनों जेलों में मशक़्क़त करवाना जेल के अनुशासन की एक रीति मानी जाती थी। १९वीं सदी के

आरम्भ में जेल की मशक़्क़त इसलिये करवाई जाने लगी कि उसकी सख़्ती का विचार करके दूसरे लोग जुर्म करने से घबड़ायें। जेल की मशक़्क़त एक प्रकार से भय की दृष्टि से देखी जाती थी। पीछे को देखा गया कि यदि क़ैदियों को काम में लगा कर रखा जाय तो जेल का प्रबन्ध अच्छा हो सकता है। काहिल आदमी का मन शैतान का कारख़ाना ही है। इसलिये इङ्गलैंड के जेलखानों में काम शुरू कराये गये। कुछ जेलरों का यह भी विचार था कि क़ैदियों से काम कराकर आमदनी कराई जाय जिससे उनके रखने और खिलाने में जो ख़र्च पड़े वह कम हो जाय। १८०५ के लगभग बहुत से उद्योग-धंधे विलायत के जेलों में चलाये गये। औरतें मोज़ा, मछली पकड़ने के जाल और सन का कपड़ा बुनती थीं। आदमी सिलाई का काम करते थे। जेल लाभ उठा कर काम करने वाले कारख़ाने बनने लगे थे। शुरू में जेलों में मशक़्क़त के दो ही उद्येश्य थे। (१) जेलों को स्वालम्बी बनाना यानी जेलों का ख़र्च क़ैदियों की मशक़्क़त से निकालना। (२) जेलों में अनुशासन स्थापित करना। कुछ लोग जो क़ैदियों के सुधार के पक्षपाती थे उन्होंने क़ैदियों के सुधार के लिये भी मशक़्क़त कराने की राय दी। क़ैदियों की मशक़्क़त से लाभ उठाने के लिये क़ैदियों को ठेकेदारों के सुपुर्द कर दिया जाता था। ठेकेदार जेल को क़ैदी की मेहनत की मज़दूरी देते थे जो बाहर की मज़दूरी से आधी होती थी और उनसे मन-

माना काम लेते थे। इसका परिणाम जेल के अनुशासन पर बहुत ही बुरा पड़ा। जो लोग कोई हुनर जानते थे वे जेलर के मुँह लग जाते थे चाहे वे बाहर से कैसा ही बुरा जुर्म करके क्यों न आये हों। और जो सीधे सादे आदमी मामूली जुर्म करके जेल में आते थे उन्हें जेल में बहुत कष्ट उठाना पड़ता था। जब जेल के भीतर ठेकेदारों को आधी मज़दूरी पर क़ैदी काम करने के लिये मिल गये तब बाहर के ईमानदार मज़दूर बेकार होने लग गये और इस कारण उन लोगों ने जेल की मशक़्क़त के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इन सब बातों पर विचार करके जेल में लाभ के लिये मशक़्क़त बन्द कर दी गई और दूसरे प्रकार की मशक़्क़त आरम्भ की गई।

विलियम कूबिट ने १८१८ में एक प्रकार की चक्की निकाली। इसे ट्रेडह्वील करते थे। इससे नाज पीसा जाता था। प्रायः खाली भी चलाई जाती थी। क़ैदियों को इस पर बहुत मेहनत करनी पड़ती थी। मशीनों का बनना शुरू हो चुका था इसलिये जो काम हाथ से होते थे वह मँहगे पड़ते थे। दूसरे बाहर के मज़दूर जेल में क़ैदियों को लाभ के काम करने के लिये विरुद्ध थे। इससे ट्रेडह्वील इङ्गलैंड के सब जेलों में चालू कर दिया गया। इङ्गलैंड में ट्रेडह्वील का कोई विरोध नहीं था। केवल इस बात पर बहस थी कि इस पर कितना काम लिया जाय। कुछ जेलों में सबेरे से शाम तक क़ैदी इसे चलाया करते थे, कुछ जेलों में थोड़े ही घंटे इस पर

काम लिया जाता था। कुछ लोगों की राय थी कि इसका असर क़ैदियों के स्वास्थ्य पर बुरा पड़ेगा। कुछ लोग इस कारण विरोध करते थे कि इस मशक़्क़त से क़ैदी नहीं सुधर सकते हैं। २० साल के अनुभव के बाद ट्रेडह्वील की मशक़्क़त बंद कर दी गई। यह ज्ञात हुआ कि ट्रेठह्वील की मशक़्क़त का औरतों के स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा असर पड़ा और आदमियों का भी स्वास्थ्य बिगड़ गया और इस मशक़्क़त से न तो क़ैदियों का सुधार हुआ और न कोई उद्योगधंधा ही उन्होंने सीखा जिससे वे बाहर निकल कर अपनी रोटी कमा सकें।

१८४६ में जिब्स नामक एक आदमी ने पेन्टोनवील जेल में क़ैदियों की मशक़्क़त के लिये एक नई मशीन तैयार की। इसको क्रैंक कहते थे। यह एक लोहे का पतला ढोल था जो पायों पर खड़ा कर दिया जाता था। ढोल में ऊपर की ओर एक क्रैंक या हत्तेदार पहिया लगा रहता था। ढोल के अन्दर घूमती हुई कटोरियाँ होती थीं जो ढोल की पेंदी में जमी हुई रेत को भर लेती थीं और घूमती हुई ऊपर जाती थीं और ऊपर जाकर ख़ाली हो जाती थीं। क़ैदियों को पहिया घुमाकर निरर्थक काम करना पड़ता था। पहियों के चक्कर गिनने की मशीन लगी हुई थी। आठ घंटे बीस मिनट में एक क़ैदी को दस हज़ार चक्कर क्रैंक के लगाने पड़ते थे। इस मशीन पर बहुत दिनों तक इङ्गलैंड के जेलों में काम होता रहा।

१८६४-६५ की जेल कमेटी ने ट्रेडह्वील और क्रेंक दोनों का विरोध किया। और इसलिये जेल की मशक्कत की यह रीति बन्द कर दी गई और जेल में क़ैदियों को साथ साथ काम करने की रीति आरम्भ कर दी गई।

अमेरिका में भी पहिले क़ैदियों के काम का ठेका ठेकेदारों को दे दिया जाता था। ठेकेदार सरकार को क़ैदियों के काम की मज़दूरी देते थे। अमेरिका में काम कराने का उद्देश्य था कि जेल में क़ैदी काहिल न रहें और जेल के अन्दर ऐसा काम सीख लें जिससे बाहर जाकर अपनी जीविका कमा सकें। १८०१ में न्यूयार्क की रियासत में क़ानून बनाया गया जिससे जेल में कारख़ाने खोले गये और उनका माल बाज़ार में बिक-ने लगा। अमेरिका में भी मिलों के मज़दूर और मालिकों की ओर से इसके विरोध में आन्दोलन हुआ। १८४१ में एक कमेटी बनाई गई जिसने इस मामले की जाँच की। मज़दूरों और मिलों के मालिकों के आन्दोलन पर तो ध्यान नहीं दिया गया परन्तु इस कमेटी ने ठेकेदारी प्रथा का विरोध किया। और साथ ही जो क़ैदियों को चुप रहने का नियम था उसका भी विरोध किया। इस कमेटी ने दो बहुत महत्वपूर्ण बातें जेल के सम्बन्ध में लिखी थीं।

१—जेलख़ानों को सुधार की जगह बनाना नापसन्द करते हुए कमेटी ने राय दी कि असली सुधार बाहर होना चाहिये। रहने के लिये अच्छे मकान, ठीक और लगातार

नौकरी या काम और उचित मज़दूरी मिलने की तजवीज़ की जिससे जुर्म ही न हों।

२—कमेटी ने यह राय प्रगट की कि क़ैदियों और पागल-ख़ाने के पागलों के लिये जिन चीज़ों की आवश्यकता होती है केवल उन्हीं चीज़ों को जेलों में बनाया जाय।

१७९५ में क़ानून बनाया गया कि जेल में उद्योग धंधे स्थापित किये जायँ और क़ैदियों का बनाया हुआ माल बाज़ार में बेचा जाय। १८९९ में क़ानून बनाया गया कि क़ैदियों से सड़कों और रास्तों के बनवाने का काम लिया जाय। १८२० में पत्थर की कानों पर क़ैदियों को काम के लिये भेजने का क़ानून बना। १८१७ में सरकारी नहरों की खुदाई का काम भी क़ैदियों से लिये जाने का क़ानून बना। १८२१ में क़ानून बना कि जिससे क़ैदियों के काम का ठेका ठेकेदारों को दिया जा सके।

अमेरिका में काम के यह सभी नियम जारी हैं। कुछ रियासतों में क़ैदियों के काम का ठेका ठेकेदारों को दे दिया जाता है। क़ैदियों के खाने पीने, कपड़े और रखवाली का काम तो सरकार करती है परन्तु उनके काम करने का प्रबन्ध ठेके-दार करता है। एक प्रकार से क़ैदियों के ऊपर दोहरा प्रबन्ध रहता है। ठेकेदार सरकार को क़ैदियों की मज़दूरी के दाम देता है। परन्तु अब अमेरिका में ठेकेदारी की प्रथा बन्द हो गई है।

दूसरा नियम क़ैदियों को ठेकेदारों को सौंप देने का है। इसमें क़ैदियों की रखवाली, उनके खाने पीने का प्रबन्ध और काम सभी ठेकेदारों के सुपुर्द रहते हैं। यह नियम फ्लोरिडा रियासत में है। क़ैदियों का ठेका कुछ कम्पनियों को दे दिया गया है। यह बहुत बुरा नियम है और इसमें क़ैदियों के साथ बहुत अत्याचार होता है। उनको बुरा खाना मिलता है और जंगलों में कमर तक पानी में खड़े रहकर काम करना पड़ता है और उनकी सुनवाई कहीं नहीं होती। सरकार के लिये उचित नहीं है कि जिन लोगों की स्वतंत्रता उसने अपने हुक्म से छीनी है उनकी ओर अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जावे।

कहीं कहीं ऐसा भी है कि सरकार की ओर से ठेकेदारों का काम जेल में क़ैदियों से कराया जाता है। खाने पीने, कपड़े और रखवाली के प्रबन्ध भी सरकार करती है। काम ठेकेदारों के कहने पर किये जाते हैं और ठेकेदार काम के हिसाब से जेल को मज़दूरी देते हैं। कुछ रियासतों में केवल सरकार के काम का ही माल जेल में बनने पाता है। कुछ रियासतों में सब तरह का माल जेल में बनता है और बाज़ारों में बेचा जाता है। कुछ रियासतों में क़ैदियों से सड़कें, नहर, रेल आदि के बनवाने का काम जेल के बाहर लिया जाता है।

और देशों का भी यही हाल है। सभी देशों में जेलों में उद्योग-धंधे आरम्भ हो गये हैं और जेलों की चीज़ों को बाज़ार

में बेचा जाता है। परन्तु अधिक माल जेल में ऐसा ही तैयार किया जाता है जो सरकार के काम आ जाय।

हिन्दुस्थान में पहिली जेल कमेटी का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस कमेटी ने राय दी थी कि क़ैदियों से काम लेने का उद्देश्य उनका सुधार न होना चाहिये। जेल का काम कष्ट देने वाला और निष्फल होना चाहिये और एक ही प्रकार का होना चाहिये जिसमें न तो क़ैदी का मन लगे और न उसे संतोष हो कि वह कोई लाभदायक काम कर रहा है। जेल में काम का उद्देश्य यह होना चाहिये कि जेल के कष्ट का भय क़ैदी के मनमें बैठ जाय और जेल के कष्ट का हाल सुन कर दूसरे भी डरें। सख़्ती पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। इसलिये चक्की से आटा पीसना, कोल्हू से तेल निकालना, गर्रे से पानी खींचना, रामबाँस कूटना इत्यादि कठिन कठिन काम जेलों में आरम्भ किये गये। कुछ जेलों में कारीगरी के भी काम कराये जाने लगे। आगरा जेल में दरियाँ और क़ालीन विशेष अच्छे बनते हैं।

१९२० की जेल कमेटी ने पहिले पहल जेल की मशक़्क़त का उद्देश्य निश्चय किया। उन्होंने कहा कि जेल की मशक़्क़त का उद्देश्य क़ैदी का सुधार ही होना चाहिये। साथ ही उन्होंने जेल के बाहर सड़कों पर क़ैदियों से काम कराने के नियम की निन्दा की और सिफ़ारिश की कि जिन क़ैदियों की सज़ा की मियाद अधिक हो उनसे जेल ही के अन्दर काम लिया

जाया करे। क़ैदियों का सुधार तभी हो सकता है जब उन्हें ऐसे उद्योगधंधे सिखाये जायँ जिन्हें वे छूटने के बाद अपना सकें और जिसके द्वारा वे अपनी जीविका कमा सकें। इसके लिये उचित विधि यही है कि हर एक जेल में एक या दो विशेष उद्योगधंधों पर ज़ोर दिया जाय। जेल में बनी हुई चीज़ों को सरकारी मुहकमों में जहाँ उन चीज़ों की आवश्यकता हो ख़रीदा जाय। सरकारी मुहकमों के लिये जेल का सामान ख़रीदना यदि वह अच्छा है और दाम में ठीक है तो आवश्यक कर देना चाहिये।

जेल कमेटी ने यह भी राय दी थी कि जेलों में बिजली और मशीन के द्वारा काम कराया जाय। मशीन लगाने की तजवीज़ को उन्होंने उचित समझा। उनका विचार था कि मशीन के काम में क़ैदियों का मन लगेगा और वह उससे मेहनत करना सीख लेगा। मशीन से काम भी अधिक हो सकेगा और लाभ भी अधिक होगा। उनका कहना था कि जेल में केवल हाथ का काम कराने से क़ैदियों का मन काम से उचटता है और लाभ भी नहीं होता है। जेल में ऐसे उद्योग-धंधे आरम्भ किये जाने चाहिये जिनका प्रभाव नये व्यापार या दुर्बल या असंगठित धंधों पर न पड़े। धंधे ऐसे ही होने चाहिये जो पहिले ही से समाज में संगठित हों। कमेटी की यह राय थी कि जेल का माल जनता को या तो न बेचा जाय या जहाँ तक हो सके कम बेचा जाय। जिन जेलों में अधिक

काम हो वहाँ काम की देख भाल के लिये अलग आदमी नौकर रखना चाहिये जिससे माल अच्छा बने। जेल के माल के दाम उतने ही रखे जाने चाहिये जितने बाहर तैयार किये हुये माल के हों।

जेल कमेटी ने यह भी राय दी थी कि जेल के बाहर सड़कों आदि पर क़ैदियों से काम न लिया जाय। यदि कहीं इस प्रकार का काम लिया जाय तो वहीं उनके लिये जेल बनवाई जाय और काम ऐसा हो जो कम से कम दस वर्ष तक चलता रहे। जेल कमेटी ने ऐसे जेलों के बनाने की भी सिफ़ारिश की थी कि जहाँ क़ैदियों से खेती का काम बड़े परिमाण पर कराया जा सके।

१९२० की जेल कमेटी ने जो सिद्धांत जेल की मशक़्क़त के लिये तय किये थे उन्हीं पर अब तक काम हो रहा है। हमारे सूबे के भिन्न भिन्न जेलों में तरह तरह के उद्योग धंधे जारी हैं। १९३८ की जेल के मुहकमे की रिपोर्ट से पता चलता है कि सूबे के निम्नलिखित जेलों में क्या क्या उद्योग धंधे चल रहे हैं।

१—बरेली सेंट्रल जेल—इस जेल में क़ालीन और दुसूती कपड़ा बनते हैं तथा बढ़ई का काम होता है। डिस्ट्रिक्टबोर्ड का तमाम लकड़ी का सामान यहीं बना। जिससे साल में १६७२२ रु० का लाभ हुआ।

२—आगरा सेंट्रल जेल—इस जेल में कम्बल, दरी और क़ालीन बनते हैं, दुसूती, गाढ़ा, मूँज के फ़र्श बुने जाते हैं

और बढ़ईगीरी का काम भी होता है। साल में ४०१७ रु० का लाभ हुआ। इसके पहिले साल १७,६७३ रु० का लाभ हुआ था।

३—फ़तेहगढ़ सेन्ट्रल जेल—इस जेल में तम्बू बनते हैं, छाते बनाये जाते हैं, दुसूती और ट्वील की बुनाई होती है और चादरें बुनी जाती हैं। साल में १५६६७ रु० का लाभ हुआ।

४—इलाहाबाद सेन्ट्रल जेल—इस जेल में तरह तरह का तेल निकाला जाता है। दुसूती, गाढ़ा, डस्टर, तौलिया, चादर और निवाड़ बुने जाते हैं। क़ालीन भी बुने जाते हैं। सूती व गरम पट्टी की बुनाई होती है। जेल में एक छापाख़ाना भी है। जेल में उपयोग के लिये पीतल और लोहे के बर्तन बनते हैं और लकड़ी का सामान भी बनता है। पहिले यहाँ रेंडी का तेल भी निकाला जाता था परन्तु आदमी ही कोल्हू चलाते थे इसलिये बन्द कर दिया गया। साल भर में २४५६ रु० का लाभ हुआ। इलाहाबाद जेल के अन्दर गवर्नमेंट प्रेस की एक शाखा है। इसमें १३५ क़ैदियों ने काम किया जिसकी वार्षिक मज़दूरी १९२७३ रु० मिली। जेल का जो छापाख़ाना है उसमें जेल के उपयोगी सभी फ़ार्म और रजिस्टर छापे जाते हैं। रियासतों के जेल के भी फ़ार्म छपते हैं।

५—बनारस सेन्ट्रल जेल—इस जेल में नीचे लिखा विशेष काम होता है—

१—क़ैदियों के खाने के बर्तन बनते हैं। २ क़ैदियों के पहिनने के ऊनी कपड़े यहीं बनते हैं। ३—क़ैदियों के पहिनने के लिये दुसूती कपड़ा बुना जाता है। ४—बस्तों का कपड़ा बुना जाता है। ५—तराज़ू और बाट बनाये जाते हैं। ६—वार्डरों के कन्धे और साफ़ों के पीतल के बैज बनते हैं।

इस जेल में नीचे लिखे हुए धंधे और आरम्भ कर दिये गये हैं—

१—दीवानी क़ैदियों के खाने के बर्तन। २—सुनहरी पट्टियाँ। ३—रेशमी साड़ी और रेशमी सूट के लिये कपड़ा। जेल में क़ालीन दरी और मूँज के फट्टे भी बनते हैं जो बाज़ार में बेचे जाते हैं। साल में १०४५२ रु० का लाभ हुआ।

६—लखनऊ सेन्ट्रल जेल—इस जेल में दरी, निवाड़, बैंडेज, और गौज़ का कपड़ा बनता है। सूती जालीदार थैले बुने जाते हैं। क़ैदियों के काम की दरियाँ बुनी जाती हैं। ऊनी क़ालीन और रेशमी कपड़ा भी बनाये जाने लगे हैं। पच्चीस जेलों को सूत रंगकर भेजा जाता है। १४२४५ रु० का कुल लाभ हुआ।

७—बरेली जुवेनाइल जेल—यहाँ दर्ज़ी का काम, चमड़े का काम, बढ़ई का काम होता है और कपड़ा भी बुना जाता है। दुसूती कपड़ा बुनकर २१ जेलों को भेजा गया। जेल वार्डरों के लिये जूते और 'बी' क्लास के क़ैदियों के लिये चप्पलें बनाई गईं। जेल में मुर्ग़ियाँ भी पाली गईं। मुर्ग़ियों का

पालना अब बन्द कर दिया गया है। साल में २४२३ रु० का लाभ हुआ।

८—कानपुर डिस्ट्रिक्ट जेल—इस जेल में बहुत बड़ा दर्ज़ीख़ाना है, पुलिस, जेल, जंगल, डाकख़ाने और आबकारी के मुहकमों की वर्दियाँ बनती हैं। सूबे के बाहर के सरकारी मुहकमों की भी वर्दियाँ बनती हैं। ग्वालियर पुलिस की वर्दी और कानपुर म्युनिसिपल बोर्ड की वर्दियों का भी ठेका था। साल में १६१११ रु० की वर्दी जेलों को दी गई जिन पर कोई मुनाफ़ा नहीं लिया गया। कुल लाभ २५०४० रु० का हुआ। कानपुर डिस्ट्रिक्ट जेल में स्थान की कमी के कारण अब यह दर्ज़ीख़ाना उन्नाव जेल भेज दिया गया है।

सब जेलों का सालाना लाभ १,६६,११२ रु० हुआ। २,३३,८६२ रु० का माल जेलों को भेजा गया जिस पर कोई मुनाफ़ा नहीं लिया गया। ३,३६,१५२ रु० का माल दूसरे सरकारी मुहकमों को भेजा गया। कुल माल ७,२२,०११ रु० का बिका। जेलों में बना हुआ माल मेरठ और लाहौर की प्रदर्शिनियों में भी भेजा गया।

१६३८ में जेल की औसत तादाद सादी सज़ावाले क़ैदियों की १३७ थी। सख़्त सज़ा वाले क़ैदियों की औसत तादाद २५१२३ थी। ३१६८ क़ैदी, क़ैदी अफ़सरों का काम करते थे। ३८६४ क़ैदी जेलों का निजी काम जैसे आटा पीसना इत्यादि में लगे रहे। ५१५० क़ैदियों को उद्योग धंधों में लगाया गया।

बरेली की पोटाश फ़ेक्टरी में १७ क़ैदियों को काम में लगाया गया जिसकी मज़दूरी १५०० रु० मिली।

१९३८ में कांग्रेस गवर्नमेंट ने जो कमेटी बनाई थी उसने जेल की मशक़्क़त के विषय में यह सिफ़ारिशें की थी—

१—कोल्हू, गर्रा और चूने चक्की की मशक़्क़त बन्द कर दी जाय। यह काम बैलों के द्वारा कराया जाय।

२—रामबांस की मशक़्क़त बिलकुल बन्द कर दी जाय।

३—ऊन धुननेवालों को मज़दूरी दी जाय।

४—उन क़ैदियों को जो नियत मशक़्क़त से अधिक और अच्छा काम करें मज़दूरी दी जाय।

५—कमेटी जेल में मशीन लगवाने के विरुद्ध थी। उन्होंने नये प्रकार का करघा और सूत कातने की मशीन जो अल्मोड़ा के मिस्टर पांडे ने बनाई है, जेल में लगवाने की शिफ़ारिश की।

६—सब सरकारी मुहकमों को हिदायत दी जाय कि वे केवल जेल ही से अपनी आवश्यकता का सामान खरीदें। एकाउन्टेन्ट जनरल खर्चा तभी मंजूर करें जब एक सार्टिफ़िकेट इस बात का हो कि वह सामान जेल में नहीं बनता है।

७—जेल के उद्योगधंधों के लिये एक नया अफ़सर नियुक्त किया जाय।

८—जेल की ओर से जेल का बना सामान बेचने के लिये लखनऊ में एक दूकान खोली जाय।

९—हाथ से सूत कातने का काम आरंभ किया जाय।

१०—तकली पर सूत कातने का काम आरम्भ किया जाय।

जेल के सौ साल के अनुभव के बाद मशक़्क़त के विषय में नीचे लिखी हुई बातें अब बिलकुल तय हो गई हैं।

१—ख़र्च कम करने के लिये, क़ैदियों के हित के लिये और जेल के प्रबन्ध को अच्छा रखने के लिये क़ैदियों को लाभ-दायक कामों में लगा रखना आवश्यक है।

२—क़ैदियों से काम एक साथ लेना चाहिए। अलग-अलग कोठरियों में नहीं।

३—कोड़ों के डर से काम नहीं कराना चाहिए। इनाम के लालच से काम लेना चाहिए।

जेल की मशक़्क़त के विषय में यह बातें प्रायः तय हो गई हैं—

१—जेल में सज़ा की छूट, सुविधाओं और मज़दूरी से काम अच्छा होता है।

२—क़ैदियों की मज़दूरी का ठेका देना ही जेल में सबसे अच्छी मशक़्क़त की विधि है।

३—यदि ठीक से काम कराया जाय तो क़ैदियों का स्वास्थ्य सुधरता है और जेल का अनुशासन ठीक रहता है।

४—क़ैदियों को काम की योग्यता के विचार से छांटा जाना चाहिए और उन्हें कई प्रकार के काम सिखाने चाहिए।

५—जिन लोगों के काम की योग्यता कम हो उनसे खेती आदि का काम लेना चाहिए।

जो बातें अभी तक पूर्ण-रूप से तय नहीं हो पाई हैं वह यह हैं।

१—जेलखाने की मशक़्क़त की अनुपयोगिता।

२—जेल के उद्योगधंधे और बाहरी उद्योगधंधों का क्या सम्बन्ध होना चाहिए। जेल के उद्योगधंधों का विरोध बाहरी पूँजीपति और मज़दूर दोनों ही करते हैं।

३ जेल में काम की अधिक से अधिक निकासी और क़ैदियों के सुधार का किस प्रकार से मेल किया जाय।

४—क़ैदियों को मशक़्क़त की मज़दूरी दी जाय या नहीं।

जेल क़ैदियों के द्वारा जो काम होता है उसमें लाभ के बजाय हानि ही होती है। अपने सूबे में २५००० क़ैदियों का औसत रहता है। यही लोग यदि बाहर काम करें तो एक लाख आदमियों को रोटी खिला सकते हैं। जब यह लोग जेल के भीतर काम करने के लिये भेजे जाते हैं तो इनसे कोई लाभ होने के बजाय उनके रखने खिलाने पिलाने में सूबे की सरकार को ३०,००,००० रु० का ख़र्च करना पड़ता है। इस हानि का कुछ कारण यह है कि जो लोग जेल में जाते हैं उनकी मानसिक और शारीरिक दशा अच्छी नहीं होती है और जेल में मेहनत करने में उनका कोई निजी लाभ नहीं होता। इस कारण काम धीरे धीरे और ख़राब होता है।

जेल के उद्योगधंधों का विरोध बाहर के पूँजीपति और मज़दूर दोनों ही करते हैं। पूंजीपतियों का कहना है कि जेल में क़ैदियों से काम बिना वेतन के कराया जाता है इस कारण बाज़ार में सस्ता पड़ता है। मज़दूरों का कहना है कि क़ैदियों की मज़दूरी के कारण उन्हें काम नहीं मिलता। १६२६ में अमेरिका में एक क़ानून बना जिसमें जेल के बने हुए माल पर रोक लगाई गई। १६३४ में जो क़ानून अमेरिका में बना उसमें जेल के अन्दर १६ वर्ष से कम लड़कों से काम कराने की मनाही कर दी गई। जेल में क़ैदियों से ४० घंटे फ़ी सप्ताह काम लिया जा सकता है और जेल में तैयार किया हुआ माल बाहरी तैयार किए हुए माल से सस्ता नहीं बेचा जा सकता।

जेल के काम की उपयोगिता बढ़ाना और क़ैदियों का सुधार एक साथ होना चाहिये। जेल में स्कूल और कारखाने दोनों ही का काम होना चाहिए। यह काम कठिन नहीं है। यदि जेल की सज़ा का उद्देश्य सामने रक्खा जाय और जेल के अफ़सर ठीक चुने जायँ और उन्हें उचित शिक्षा दी गई हो तो दोनों काम हो सकते हैं। इस काम के लिये यही आवश्यक है कि क़ैदी अच्छे प्रकार से छाँटे जायँ। और जिन लोगों में मानसिक विकार है, या मन्द बुद्धि है उन्हें अलग कर दिया जाय। जिनकी मानसिक दशा ठीक है उन्हें फिर शिक्षा दी जा सकती है और हुनर सिखाया जा सकता

है जिससे जेल की आमदनी बढ़े और क़ैदियों का सुधार भी हो।

जेल में क़ैदियों से जो काम कराया जाय उसकी उन्हें मज़दूरी दी जाय या नहीं यह प्रश्न भी अभी सुलझा नहीं है। जो लोग इसके विपक्ष में हैं उनका कहना है कि मुज-रिमों पर बहुत ख़र्चा होता है। वे लोग जुर्म करते हैं, दूसरों की हानि करते हैं। पुलिस, अदालत और जेल में उन पर ख़र्चा होता है। अब यदि उनको मेहनत की मज़दूरी भी दी जाय तो यह उचित नहीं होगा। दूसरा यह कि जेल अपना ख़र्चा अपनी आमदनी से पूरा नहीं कर पाता। यदि क़ैदियों को वेतन दिया जावेगा तो जेलों में और भी घाटा होगा। कुछ लोगों का विचार यह भी है कि रुपये मिलने से क़ैदी और भी खराब हो जायँगे।

जो लोग इस पक्ष में हैं उनका कहना है कि क़ैदियों को क़ानून से केवल स्वतंत्रता छीनी जाती है परन्तु उनकी मेह-नत की कमाई उन्हें मिलनी ही चाहिए। उनका कहना यह भी है कि यदि क़ैदियों को मज़दूरी दी जायगी तो मेहनत से काम करेंगे और जेल की आमदनी अधिक बढ़ जायगी और यदि ठीक से प्रबन्ध किया जाय तो जेल अपना ख़र्च पूरा कर सकता है। मज़दूरी देने से क़ैदियों के सुधार की आशा की जा सकती है और इससे जेल के अनुशासन में भी सहा-यता मिलेगी। क़ैदी के परिवार की भी मदद हो सकेगी, जो

प्रायः बहुत दुःख उठाते हैं। जिन लोगों की क़ैदियों ने हानि की है उनको भी मुआविज़ा दिया जा सकता है। क़ैदियों को यदि मज़दूरी दी जायगी तो बाहर के मज़दूरों को विरोध करने का अवसर नहीं मिलेगा।

इन दलीलों को देखते हुए यही मालूम पड़ता है कि जो क़ैदी जेल में काम करते हैं उन्हें उसकी उचित मज़दूरी मिलनी चाहिए। क़ैदियों को मज़दूरी मिलने की प्रथा बहुत से देशों में प्रचलित हो गई है।

बाईसवां परिच्छेद

क़ैदियों की शारीरिक और नैतिक भलाई

जेल का मुख्य उद्देश्य क़ैदियों का सुधार और समाज की रक्षा है। क़ैदियों को जेल में स्त्री, बच्चों और मित्रों से अलग रखा जाता है। उनको जेल के नियम मानने पड़ते हैं और जेल में मशक़्क़त करनी पड़ती है। जेल जाने का अपयश भी सहना पड़ता है। जेल में जाना और रहना ही काफ़ी कष्ट है और यदि क़ैदियों के सुधार करने का उद्देश्य है तो यह आवश्यक है कि जेल के अन्दर क़ैदियों के साथ आदमियों जैसा बर्ताव किया जाय। जो कष्ट दूर किये जा सकते हैं वे क़ैदियों को न दिये जायँ और क़ैदियों को ऐसी शिक्षा और सुविधायें दी जायँ की जिससे वे सुधर जायँ।

पहिले यह समझा जाता था कि जो लोग जुर्म करते हैं उनमें धर्म की कमी होती है और इसलिये विलायत में पादरियों को यह काम सौंपा जाता था कि वे जेलों में जायँ और क़ैदियों को धर्म और सदाचार का उपदेश दें। इङ्गलैंड में हर जेल में इतवार को प्रार्थना होती थी और उसमें हर क़ैदी को अवश्य जाना पड़ता था। अमेरिका में भी पादरियों को जेल में जाने

और क़ैदियों से मिलने की आज्ञा थी। आरम्भ में इसका कोई अच्छा असर नहीं पड़ा। कुछ सुविधाओं को पाने के लिये क़ैदी धार्मिकता का स्वाँग रच लेते थे। इङ्गलैंड और अमेरिका दोनों स्थानों के जेलों में पादरी नौकर हैं। यह लोग धार्मिक काम कम और सामाजिक काम अधिक करते हैं। इङ्गलैंड में जेलों में इतवार को जो प्रार्थना होती है उसमें क़ैदी इच्छानुसार ही जाते हैं। जो न जाना चाहें वह न जायँ। जेलों में एक कमरा अलग होता है जिसमें पादरी क़ैदियों से मिल सकता है। पादरी केवल दर्शक का काम नहीं करता है। वह क़ैदियों के परिवार से मिलता है और उनकी भी सहायता करता है।

हिन्दुस्थान में भी कुछ जेलों में धार्मिक उपदेशक जाकर क़ैदियों को नेकचलन होने का उपदेश करते हैं। परन्तु हिन्दुस्थान में बहुत से धर्म होने के कारण एक धर्म के प्रचार का दूसरे धर्म के क़ैदी पर कम असर पड़ता है। फिर भी जेल में धार्मिक रीति-रिवाज और भावनाओं का काफ़ी विचार किया जाता है। हिन्दू लोग चोटी, ब्राह्मण जनेऊ, सिक्ख अपने कपड़े और केश और मुसलमान अपनी दाढ़ी रख सकते हैं। स्त्रियों को सुहाग की चीज़ें पहिनने की आज्ञा है। मुसलमान लोग नमाज़ पढ़ सकते हैं और हिन्दू लोग पूजा कर सकते हैं। त्योहारों पर हिन्दू व्रत रख सकते हैं और रमज़ान के महीने में मुसलमान क़ैदी रोज़ा रख सकते हैं। व्रत या रोज़ा रखने

वालों को दोनों समय का खाना एक ही समय दे दिया जाता है।

जेल में मुलाक़ातों का क़ैदी के चालचलन पर बहुत अच्छा असर पड़ता है। प्रायः देखा गया है कि सम्बन्धियों या स्त्री बच्चों से भेंट करने से बहुत ही बदचलन क़ैदी का भी चालचलन जेल में सुधर जाता है। क़ैदी के मन पर बहुत बुरा असर पड़ता है जब उसे यह ज्ञात हो कि बाहर के सम्बंधी उसको भूल गये हैं। इस कारण यह अति आवश्यक है कि जेल के भीतर क़ैदी का उसके बाहर वाले सम्बंधियों से सम्बंध बना रहे। इसलिये हर देश में क़ैदियों को अपने घर वालों से मिलने और उनसे चिट्ठी पत्री का व्यवहार रखने की आज्ञा होती है। विलायत और अमेरिका में क़ैदी अपने घर को हर १५ दिन में एक पत्र लिख सकता है और एक बार मुलाक़ात कर सकता है। हिन्दुस्थान में साधारण क़ैदी तीन महीने में एक पत्र लिख सकता है और एक पत्र पा सकता है और एक दफ़ा घर वालों से मुलाक़ात कर सकता है। मुलाक़ात में केवल तीन आदमी आ सकते हैं और बीस मिनट से अधिक बातचीत नहीं हो सकती। बातचीत जेल के अफ़सरों के सामने होती है और चिट्ठी पत्री भी जेल के अफ़सरों द्वारा स्वीकृत हो कर ही आने जाने पाती हैं। "बी" क्लास के दो महीने में एक बार मुलाक़ात कर सकते हैं और एक पत्र लिख सकते हैं और एक पत्र पा सकते हैं। "ए"

क्लास के क़ैदियों को महीने में दो पत्र और दो मुलाक़ातों का अधिकार होता है। मुलाक़ात के लिये कोई अलग स्थान अभी तक जेलों में नहीं बनाए गए हैं। परन्तु १९२० की जेल कमेटी ने इसके लिये सिफ़ारिश की थी। कांग्रेस गवर्नमेंट ने अपने सूबे में साधारण क़ैदियों की मुलाक़ात और चिट्ठी पत्री का अधिकार दो महीने में एक बार कर दिया था।

क़ैदियों के सुधार के लिये क़ैदियों की शिक्षा बहुत आवश्यक है। शिक्षा ही से क़ैदी सुधर सकते हैं ऐसा समझना भी भूल है परन्तु जो आदमी थोड़ा बहुत पढ़ लिख लेते हैं उनमें एक अपढ़ आदमी से अधिक योग्यता आ जाती है और जेल से छूटने पर उन्हें काम मिलने में आसानी होती है। १९२० की जेल कमेटी ने सिफ़ारिश की थी कि जेल में २५ साल से कम उम्र के क़ैदियों को प्रारम्भिक शिक्षा दी जाया करे। इसका फल यह हुआ कि लड़कों को अब प्रारम्भिक शिक्षा जेलों में दी जाने लगी। १९३७ में बरेली सेंट्रल जेल में २५ साल की उम्र तक के क़ैदियों के लिये प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। हिन्दुस्थान में जेल के बाहर भी अनिवार्य शिक्षा में बहुत कठिनाई पड़ती है। जेल के अन्दर तो कठिनाइयाँ दुगनी हैं। सौ में दो या तीन क़ैदी पढ़े होते हैं और सिखाने वालों की बेहद कमी है। फिर भी बरेली सेण्ट्रल जेल का अनुभव बहुत अच्छा हुआ और थोड़े ही

दिनों में सफेद बालों वाले बड़े क़ैदी भी पढ़ने लगे। अब सभी सेंट्रल जेलों में अनिवार्य शिक्षा आरंभ कर दी गई है। कांग्रेस गवर्नमेंट ने तय किया था कि सभी जेलों में ४५ वर्ष तक के क़ैदियों को अनिवार्य शिक्षा दी जाय।

पढ़ाई के साथ साथ जेलों में पुस्तकालय भी हैं। इनमें कुछ किताबें रहती हैं जो अधिकतर धार्मिक होती हैं। जो क़ैदी प्रारम्भिक पढ़ाई से अधिक पढ़ना चाहें तो उन्हें जेल पुस्तकालयों से किताबें मिल सकती हैं। कांग्रेस गवर्नमेन्ट ने तय किया था कि जेल के पुस्तकालयों की दशा सुधारी जाय और अब इनमें कुछ उन्नति भी हुई है।

और देशों में भी कैदियों की पढ़ाई लिखाई पर अधिक ध्यान दिया जाता है। अमेरिका के जेलों में बहुत अच्छे पुस्तकालय होते हैं और क़ैदियों को अपनी रुचि के अनुसार किताबें पढ़ने का अवसर दिया जाता है। जेलों में क़ैदी अपना अख़बार भी निकालते हैं जिसमें दुनियाँ की रुचिकर घटनाओं का वर्णन होता है। पहिले तो जेल में क़ैदियों को अख़बार पढ़ने की मनाही थी। लोगों का विचार था कि अख़वार में उत्तेजक घटनाओं को पढ़कर क़ैदियों की छूटने पर फिर जुर्म करने की ओर मन जायगा। परन्तु अनुभव से यह पता चला कि जिन लोगों को जेल के अन्दर दुनिया में होने वाली घटनाओं का पता नहीं चलता वे छूटने पर और आदमियों से बहुत पिछड़ जाते हैं और उन्हें नौकरी और काम मिलने

में कठिनाई होती है। जेल में अखबार के द्वारा लोगों को शिक्षा मिलने लगती है और बहुत से क़ैदी छापेखाने का काम भी सीख जाते हैं।

जेल की शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि क़ैदी साधारण पढ़ना लिखना सीख जायँ और उन्हें कोई अच्छा धंधा सिखा दिया जाय जिससे वे बाहर जाकर अपनी जीविका कमा सकें। उनको स्वास्थ्य के नियमों का भी ज्ञान करा देना चाहिये जिससे शारीरिक और सार्वजनिक सफ़ाई रखना सीख जायँ। क़ैदियों को कुछ सामाजिक शिक्षा और लोगों से बातचीत करने के नियम भी सिखाने चाहिये। जेल के अधिकारियों का अनुभव है कि शिक्षा से जेल के अनुशासन में बहुत सहायता मिलती है।

बेलजियम में क़ैदियों के लिये एक उद्योग धंधों की और एक खेती सिखाने की पाठशाला है। रूस के जेलों में क़ैदियों को शिक्षा उसी प्रकार दी जाती है जैसे बाहर की पाठशालाओं में दी जाती है।

कुछ देशों में क़ैदियों को फुटबाल, वालीबाल इत्यादि खेल खिलाये जाते हैं। कमरे के अन्दर खेलने के भी खेलों की आज्ञा है। इन खेलों का उद्देश्य क़ैदियों का मनोरंजन ही नहीं होता है किन्तु यह खेल मानसिक विकास करने के लिये खेले जाते हैं। कांग्रेस गवर्नमेंट ने जो कमेटी बनाई थी उसने भी उचित खेलों को जेलों में आरम्भ करने की राय दी थी।

'ए' और 'बी' क्लास के क़ैदियों को बेडमिन्टन खेलने की भी आज्ञा अपने सूबे में दे दी गई है। दूसरे देशों में गाने की संगत भी होती है। जेल में रेडियो लगा रहता है और मैजिक लेन्टर्न द्वारा लेक्चर दिये जाते हैं जिससे क़ैदियों का मनोरंजन भी होता है और क़ैदियों की जानकारी भी बढ़ती है। यू० पी० के जेलों में भी भजन गाने के लिये आध घंटे की आज्ञा दे दी गई है। सुलतानपुर और लखनऊ सेन्ट्रल जेलों में रेडियो भी लगा दिये गये हैं। स्वास्थ्य विभाग की ओर से मैजिक लेन्टर्न द्वारा लेक्चर भी होने लगे हैं।

जेल में क़ैदियों पर भार देने की विधि पर पहिले एक अध्याय में कुछ लिखा जा चुका है। नम्बरदार और पक्का बनाने से क़ैदियों को अपने काम का भार समझ में आने लगता है। किन्तु जेल में क़ैदियों के ऊपर क़ैदियों को ही अफ़सर वनाने के नियम में लाभ और हानि दोनों ही हैं। क़ैदी क़ैदियों की ही चुग़ली करने लगते हैं और अफ़सरों की ख़ुशामद और जी हुज़ूरी करके दूसरे क़ैदियों को कष्ट देते हैं। १६२० की जेल कमेटी ने राय दी थी कि क़ैदियों को अफ़सर न बनाया जाय परन्तु धन की कमी के कारण क़ैदी अफ़सरों को स्थापित रखा गया है।

हम लिख चुके हैं कि अमेरिका के कुछ जेलों में पंचायतें स्थापित की गई हैं। यही पंचायतें जेलों का काम देखती हैं। खाने का प्रबन्ध करती हैं और उन क़ैदियों को सज़ा देती हैं

जो जेल के नियम तोड़ते हैं। इन पंचायतों को क़ैदी ही चुनते हैं और पंचायत को जेल के उद्योग धंधे, सफ़ाई, पढ़ाई, खेल, मनोरंजन, गाना, दर्शकों का प्रबन्ध और क़ैदियों को काम के लिये बाहर भेजना इत्यादि काम करने पड़ते हैं। जेल के अनुशासन का प्रबन्ध भी पंचायत के हाथ में है। पंचायत ही जेल के नियमों को तोड़ने वाले क़ैदी को सज़ा देती है। कुछ जेलों के अन्दर वार्डर नहीं रहते केवल चहारदीवारी की रखवाली के लिये वार्डर रहते हैं। पंचायतों के खोलने का उद्देश्य यह है कि क़ैदियों में स्वाधीनता और आत्म-संयम आजाय जिससे वे छूटने के बाद भी लाभ उठा सकें। पंचायत से क़ैदियों में भार लेने की शक्ति बढ़ती है और उनको आत्म विकास का अवसर मिलता है। एक दूसरे के प्रति विश्वास बढ़ता है और वे मिलकर रहना सीखते हैं। ओसबर्न ने ठीक ही कहा है कि जेल का उद्देश्य अच्छे क़ैदी बनाने का नहीं है किन्तु अच्छे नागरिक बनाने का है।

पंचायत के विरुद्ध जो युक्तियाँ दी जाती हैं। वह इस प्रकार की हैं। (१) इससे काम कम होता है। (२) थोड़े ही आदमी पंचायत को चलाते हैं और इससे सरकार या क़ैदियों को लाभ नहीं होता। (३) क़ैदियों में आपस में झगड़े होने लगते हैं।

जो लोग इसके पक्ष में हैं वे लोग अपने समर्थन में यह युक्तियाँ देते हैं।

१—क़ैदियों ही पर जेल के अनुशासन का भार होता है। इस कारण जो लोग जेल की सख़्ती के विरुद्ध विद्रोह करते थे उन्हें अब कोई अवसर नहीं मिलता।

२—क़ैदियों का भागना कम होता जाता है। क़ैदी अब समझने लगे हैं कि यदि कोई भागेगा तो उन्हीं की सुविधायें कम होंगी।

३—क़ैदियों को उचित नागरिकता की शिक्षा मिलती है।

४—जेल से छूटने पर क़ैदी की मनोवृति बदल जाती है।

यू० पी० में भी बरेली जुवेनाइल जेल में पंचायत खोली गई है और अच्छा काम कर रही है।

सज़ा में छूट देने का भी जेल में क़ैदियों के चालचलन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। हर एक क़ैदी चाहता है कि वह जल्दी से जल्दी छूटकर अपने घर जाय और बाल-बच्चों से मिले। दुबारा क़ैदी भी जेल के बाहर जाने के लिये उत्सुक रहते हैं। हिन्दुस्थान के जेलों में सज़ा में छूट देने का नियम बहुत दिनों से जारी है। साधारण क़ैदी को महीने में दो दिन काम की और दो दिन नेकचलनी की सज़ा में छूट मिलती है। जो लोग इतवार और छुट्टियों के दिन काम करते हैं उन्हें पाँच दिन की छूट मिलती है। जो लोग रात को पहरा देते हैं उन्ह पाँच दिन, क़ैदी नम्बरदार को महीने में छः दिन और क़ैदी वार्डर को महीने में आठ दिन की छूट मिलती है। साल भर नेकचलन रहने पर १५ दिन की छूट

मिलती है और इन्सपेक्टर जेनरल क़ैदियों को एक महीने तक की छूट दे सकता है। तीन महीने से ऊपर जिन की सज़ा होती है उन्हीं क़ैदियों को सज़ा में छूट मिल सकती है और कुल सज़ा के चौथाई हिस्से से ज्यादा की छूट नहीं मिल सकती है। जिन क़ैदियों को सादी सज़ा होती है उन्हें सज़ा में छूट नहीं दी जाती परन्तु यदि वे जेल में मशक़्क़त करते हैं तो सज़ा में छूट मिल सकती है।

जेल में क़ैदियों का स्वास्थ्य ठीक रखना बहुत आवश्यक है और इसके लिये उन्हें अच्छा खाना खाने को मिलना चाहिए। अच्छा खाने के लिये आवश्यक है कि खाना अच्छा पका हो और क़ैदियों को गरम दशा में बाँट दिया जाया करे और जहाँ तक हो सके खाने में प्रतिदिन कुछ परिवर्तन हुआ करे। पहले यू० पी० के जेलों में खाने का प्रबन्ध बहुत बुरा था। मिट्टी मिले हुए आटे की किसकिसी रोटी जो आधी कची होती थी और कीड़े पड़े हुए पानी से भरी हुई दाल क़ैदियों को एक समय मिलती थी। दूसरे समय भी इसी प्रकार की रोटी और पत्तों और डंठलों से भरी हुई तरकारी जो कटिया कहलाती थी मिलती थी। परन्तु अब ख़ाने के विषय में बहुत सुधार हो गया है। गेहूँ और नाज ख़ूब साफ़ कराये जाते हैं और उनकी रोटी अच्छी सेकी जाती है। पत्तों की जगह अच्छी तरकारी अदल बदल कर मिलती है और दाल भी अब रोज बदली जाती है और

अच्छी घुटी हुई बनती है जिसमें तेल का छौंक लगता ह दोनों समय दाल और तरकारी मिलती है। रोटी के बदले में चावल भी मिल सकता है। सबेरे खाने के लिये भुने हुए चने या और कोई दूसरी चीज़ मिलती है और कभी कभी गुड़ भी मिलता है। त्योहारों पर पूड़ियाँ भी मिलती हैं। यू० पी० में देखा गया है कि जो लोग जेल जाते हैं उनमें बहुतेरों का स्वास्थ्य पहले से सुधर जाता है।

पहिनने के लिये उचित कपड़े भी क़ैदियों के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं। यू० पी० में गर्मी में पहिनने को दो कुरते, दो जांघिये, एक टोपी, एक तौलिया, एक लंगोटी मिलती हैं। यह कपड़े नौ महिने पहिनने के लिये मिलते हैं। जाड़े में एक कम्बल का कोट भी मिलता है। गर्मियों में बिछाने के लिये एक मूँज का फट्टा और एक कम्बल और ओढ़ने के लिये एक चादर मिलती है।

जेलों में अस्पताल भी होते हैं और एक योग्य डाक्टर भी नियुक्त रहता है और जो जेल में बीमार पड़ते हैं उन्हें दवा दी जाती है। अधिक बीमार होने पर अस्पताल ही में रखने का प्रबन्ध होता है। छूत की बीमारियों के मरीज़ों के लिये अलग कोठरियाँ होती हैं। जेल की सफ़ाई का प्रबन्ध भी डाक्टर की देखरेख में होता है। खाना पकाने का प्रबन्ध भी डाक्टर देखता है। क़ैदियों को मशक़्क़त डाक्टर ही की राय पर दी जाती है। यू० पी० में तपेदिक़ के क़ैदी सुलतान-

पुर और कोढ़ी क़ैदी रायबरेली भेजे जाते हैं। पीने के लिये और नहाने के लिये पानी कुएँ से खींचा जाता है और नल के द्वारा बारीकों में पहुँचाया जाता है। जिन शहरों में म्युनिसिपेलिटी की ओर से पानी का प्रबन्ध है वहाँ नल ही का पानी जेलों में दिया जाता है। खेती के लिये कुएँ का पानी निकाला जाता है।

जेलों में सरकारी और ग़ैरसरकारी निरीक्षक या दर्शक नियुक्त किये गये हैं। यू० पी० में कलक्टर, सेशन जज और कमिश्नर सरकारी निरीक्षक होते हैं। म्यूनिसिपलबोर्ड और डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चेयरमैन, असेम्बली और कौंसिल के मेम्बर और यू० पी० डिसचार्जड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी के मन्त्री ग़ैरसरकारी जेल निरीक्षक होते हैं। इनके अतिरिक्त और ग़ैरसरकारी निरीक्षक डिसचार्जड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी और ज़िला मजिस्ट्रेट की सिफ़ारिश पर सरकार चुनती है। इन निरीक्षकों को जेल में जाने और क़ैदियों से मिलने और उनके निवेदन को सुनने का अधिकार होता है। निरीक्षक लोग अपनी रिपोर्ट विज़िटर्स बुक में लिख सकते हैं और जेल के अधिकारियों को उसकी नक़ल अपने जवाब के साथ इन्सपेक्टर जेनरल के यहाँ भेजनी पड़ती है। क़ैदियों के साथ यदि कोई अनुचित बर्ताव या नियम के विरुद्ध कारवाई हो तो क़ैदी इन निरीक्षकों से कह सकता है।

तेईसवां परिच्छेद

प्रोबेशन या आज़माइशी रिहाई

यदि किसी आदमी पर अदालत में किसी जुर्म के विषय में मुक़दमा चले और अदालत सुबूत और सफ़ाई आदि लेने के बाद इस निर्णय पर पहुँचे कि उस आदमी ने जुर्म किया है तब अदालत के सामने यह प्रश्न उठता है कि उसे क्या सज़ा दी जाय। उस समय अदालत यह विचार करती है कि उस आदमी की उम्र, स्वास्थ्य, मानसिक दशा, पिछला चाल-चलन और जुर्म करने का कारण सामने रखते हुए, क्या यह सम्भव नहीं है कि अपराधी को जेल भेजने के स्थान में, कुछ शर्तों पर एक भरोसे वाले आदमी की निगरानी में छोड़ दिया जाय और उसे अवसर दिया जाय कि वह नेक चलन बन सके, और यदि वह उन शर्तों को तोड़े तो फिर बिना दूसरा मुक़दमा चलाये, उसी जुर्म पर उसे जेल की सज़ा दे दी जाय। इस प्रकार की रिहाई को प्रोबेशन या आज़माइशी रिहाई कहते हैं और जिस भरोसे वाले आदमी की निगरानी में मुजरिम छोड़ा जाता है उसे प्रोबेशन अफ़सर कहते हैं। प्रोबेशन पर रहाई, सज़ा की मियाद बता देने के बाद या बिना

सज़ा दिये दोनों ही प्रकार से हो सकती है। पहिले नियम में सज़ा सुनाकर रोक दी जाती है और अपराधी प्रोबेशन पर छोड़ दिया जाता है। दूसरे नियम में सज़ा सुनाई नहीं जाती और पहिले ही से अपराधी को प्रोबेशन पर छोड़ दिया जाता है और केवल शर्तों के तोड़ने पर उसे फिर बुला कर सज़ा सुनाई जाती है।

प्रोबेशन का इतिहास

प्रोबेशन के नियम का सबसे पहिला अमेरिका की मेंसेचुसेटस रियासत में प्रयोग किया गया। सन् १८४८ में बोस्टन शहर का रहने वाला एक मोची जान आगस्टस अदालतों से प्रार्थना करता था कि कम उम्र वाले अपराधियों की सज़ा रोक कर उनको आवश्यक सुपुर्दगी में छोड़ दें। सन् १८७० में, जिरादाँ नामक फ्रांस का रहनेवाला एक विद्वान अपने अख़बार में लेखों द्वारा प्रोबेशन पर रिहाई करने का बहुत प्रबल समर्थन कर रहा था। लगभग उसी समय एक सज्जन जिनका नाम कुक था और जो एक दानी पुरुष थे और जिनके पास समय था, कम उम्र के लड़कों में दिलचस्पी लेने लगे। वे अदालतों में जाते और उन युवा लड़कों के विषय में जिन पर मुक़द्दमा चलता था जाँच करते, कि उन्होंने चालचलन की बुराई या किसी और कारण से जुर्म किया है। और जो अभी तक जुर्म करने में अभ्यस्त नहीं हुए थे उन्हें सुधारने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने

इतने परिश्रम से काम किया और आदमी के स्वभाव का उन्हें इतना अच्छा ज्ञान हो गया था, कि अदालतों में वे ग़ैर-सरकारी सलाहकार का काम करने लगे और जज लोग उनकी सलाह मानकर कम उम्र के मुजरिमों को उनकी सुपुर्दगी में छोड़ देते थे। उन्हीं के यत्न से बोस्टन शहर में सन १८७८ में सबसे पहिले प्रोबेशन अफ़सर की नियुक्ति हुई। इनका नाम एडवर्ड एच० सेवज था। यह पुलिस के मुहकमें में काम कर चुके थे और इन्होंने १४ साल तक बहुत अच्छा काम किया। दो वर्ष के बाद प्रोबेशन अफ़सर की नियुक्ति के विषय में एक क़ानून भी बना। परन्तु इस क़ानून पर अधिक काम नहीं किया गया। १८९१ में गवर्नर रसल की सलाह से एक और क़ानून बनाया गया जिसके अनुसार फ़ौजदारी अदालतों को हुकुम दिया गया कि वे अपने यहाँ प्रोबेशन अफ़-सर की नियुक्ति करें। इस क़ानून में प्रोबेशन अफ़सर के अधिकार और कर्त्तव्य भी दिये गये थे।

मैसेचुज़ेट्स के दृष्टांत की और रियासतों ने धीरे धीरे नक़ल की। १८९९ में रहोड टापू, इलिनियोस और कोलोरीडो की रियासतों में क़ानून बने और फिर धीरे धीरे अमेरिका के संयुक्त राज्य की सभी रियासतों में क़ानून बन गये।

इङ्गलैंड में प्रोबेशन का नियम अमेरिका के बाद से आरम्भ हुआ। १९०८ में लड़कों के लिये एक क़ानून बनाया गया। १९०७ में प्रोबेशन की रिहाई का क़ानून बना। उसमें

अदालतों को अधिकार दिया गया कि किसी भी मुजरिम को बिना शर्त या कुछ शर्तों के साथ रिहा कर दें। क़ानून में यह भी था कि छोड़ने के पहिले अदालत मुजरिम के चालचलन, उसका पिछला रहन सहन, उम्र, मानसिक दशा, और जुर्म करने के कारण इन सब पर विचार करेगी। अदालत को यह भी अधिकार था कि मुलज़िम को अपराधी ठहराने के पहिले या बाद प्रोबेशन पर रिहा कर दे और उस मुजरिम को प्रोबेशन अफ़सर की सुपुर्दगी में कुछ शर्तों के साथ छोड़ दे। बच्चों के लिये विशेष प्रोबेशन अफ़सरों की नियुक्ति की गई थी। प्रोबेशन के नियम का अब दुनिया के प्रायः सभी देशों में प्रयोग किया जा रहा है। अमेरिका के संयुक्त राज्य में सन१९३१ में ३०७ वैतनिक प्रोबेशन अफ़सर थे और इतनी ही तादाद उन व्यक्तियों की थी जो बिना वेतन के यह काम कर रहे थे।

प्रोबेशन की रिहाई औरतों, बच्चों और आदमियों पर एकसाँ लागू होती है। साधारणतः जिन देशों में जो स्त्रियाँ प्रोबेशन पर छोड़ी जाती हैं वे स्त्री प्रोबेशन अफ़सर ही की सुपुर्दगी में रहती हैं। बच्चे जब मुजरिम ठहराये जाते हैं तो उन्हें जेल भेजना या उन पर जुर्माना करने या उनके बेत लगने के स्थान में उनको प्रोबेशन पर ही छोड़ा जाता है। हिन्दुस्थान के कुछ सूबों में भी प्रोबेशन पर रिहाई का नियम प्रचलित है। मद्रास में प्रथम अपराधियों को प्रोबेशन पर

रिहाई का क़ानून बनाया गया बाद को बम्बई, मध्यप्रान्त, बंगाल और मद्रास के सूबों में बच्चों के लिये क़ानून बना जिसके अनुसार वे प्रोबेशन अफ़सर की सुपुर्दगी में छोड़े जाते हैं। सन् १९३८ में संयुक्तप्रान्त में भी प्रथम अपराधियों की प्रोबेशन पर रिहाई का क़ानून बना।

हिन्दुस्थान की ज़ाब्ता फ़ौजदारी के क़ानून की दफ़ा ५६२ के अनुसार प्रथम अपराधियों की प्रोबेशन पर रिहाई हो सकती थी। किंतु इस नये क़ानून के अनुसार फ़ौजदारी क़ानून की दफ़ा ५३२, ५६३ और ५६४ रद्द कर दी गई और उसका स्थान इस नए कानून ने ले लिया। इस कानून के अनुसार रिहाई दो प्रकार से हो सकती है। यदि किसी आदमी ने पहिली बार जुर्म किया है और वह जुर्म चोरी, ग़बन या धोखा देने का है या उस जुर्म की सज़ा दो साल से अधिक नहीं है तो यदि अदालत चाहे तो उस मुजरिम का चालचलन, पिछला रहन सहन मानसिक और शारीरिक दशा और उसके जुर्म के हलकेपन को ध्यान में रखते हुए उसे बिना किसी सज़ा के केवल चेतावनी या तम्बीह देकर छोड़ सकती है।

यदि मुजरिम पर ऐसा जुर्म साबित हुआ है कि जिस में मौत या काले पानी के अतिरिक्त कोई भी सज़ा दी जा सकती है और यदि अदालत की राय है कि उस आदमी को जेल न भेजा जाय तो वह उसे ज़मानत और मुचलके पर

कुछ शर्तों पर कुछ मीयाद के लिये जो तीन वर्ष तक ही हो सकती है छोड़ सकती है। इस तरह की रिहाई के पहिले अदालत को मुजरिम की उम्र, चालचलन, पिछला रहन सहन, मानसिक और शारीरिक दशा और कैसे जुर्म किया गया, इन सब बातों पर विचार करना पड़ता है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि जुर्म हल्का ही हो। रिहाई की शर्तों में मुजरिम और उसके ज़मानतदार को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि मुजरिम मीयाद के दौरान में कोई जुर्म नहीं करेगा, नेकचलन रहेगा, झगड़ा नहीं करेगा, और जब उसे हुकुम दिया जायगा अदालत के सामने सज़ा लेने के लिये उपस्थित होगा।

अदालत ज़मानत मुचलके पर मुजरिम को तभी छोड़ सकती है जब उसे विश्वास हो जाय कि उसके या उसके एक ज़मानतदार के पास अदालत के अधिकार की सीमा में या उस स्थान पर जहाँ मुजरिम रहेगा रहने के लिये उचित स्थान और काम करने के लिये उचित धंधा मौजूद है।

यदि मुजरिम की अवस्था २१ वर्ष से कम है और जो जुर्म उसने किया है उसमें केवल ६ महीने की या उससे कम सज़ा हो सकती है तो अदालत को उसे अवश्य ही नेक चलनी के ज़मानत मुचलके पर छोड़ना पड़ेगा। यदि अदालत न छोड़े तो उसको न छोड़ने का कारण लिखना पड़ेगा।

यदि मुजरिम की अवस्था २४ वर्ष से कम है और अदा-

लत ने उसको नेकचलनी के जमानत मुचलके पर छोड़ना निश्चय कर लिया है तो ऐसे मुजरिम को प्रोबेशन अफ़सर की सुपुर्दगी में छोड़ा जा सकता है। जो मुजरिम प्रोबेशन अफ़सर की देख रेख में छोड़े जाते हैं उन्हें कुछ अधिक शर्तों पर रिहाई मिलती है और उन्हें प्रोबेशन अफ़सर की देख रेख स्वीकार करनी पड़ती है। अपने रहने और काम करने का स्थान बताना पड़ता है और यदि उसमें कोई परिवर्तन हो तो उसकी सूचना देनी पड़ती है। ज़िले को छोड़कर जाने की उसे मनाही होती है और ज़िले के बाहर प्रोबेशन अफ़सर की लिखित आज्ञा से ही जा सकता है। प्रोबेशन पर छूटनेवाले को ईमानदारी से जीविका कमानी होगी, बदमाशों की संगत छोड़नी पड़ेगी और वह किसी तरह का नशा नहीं कर सकेगा, कोई जुर्म नहीं करेगा, किसी से झगड़ा नहीं करेगा, हरएक के साथ अच्छा बर्ताव करेगा और जब उसे बुलाया जायगा तब अदालत में सज़ा लेने के लिये हाज़िर होगा और उसे प्रोबेशन आफ़िसर की सभी आज्ञाओं का पालन करना पड़ेगा।

इन शर्तों को यदि प्रोबेशन पर छूटा हुआ अपराधी न माने तो प्रोबेशन अफ़सर को अदालत को सूचना देनी पड़ेगी और फिर उसे पुराने जुर्म की सज़ा दी जा सकेगी। अदालत चाहे तो पहले अवसर पर केवल जुर्माना ही करे। शर्तनामे की शर्तों को तोड़ने पर ज़मानतदार की ज़मानत भी ज़ब्त हो सकती है।

शर्तनामे की मियाद तीन वर्ष या कम जब तक अपराधी की अवस्था २५ वर्ष की न हो जाय हो सकती है। अदालत को अपराधी को अपने सामने ही प्रोबेशन अफ़सर के हाथ सौंपना पड़ेगा। यदि अपराधी का चालचलन ठीक न हो तो शर्तों की मियाद बढ़ाई जा सकती है। यदि उसका चालचलन ठीक रहे तो मियाद कम भी की जा सकती है और कुछ शर्तें भी उठाई जा सकती है। दर्जा दो और दर्जा तीन के मजिस्ट्रेटों को मुजरिमों को प्रोबेशन पर छोड़ने का अधिकार नहीं है परन्तु वे प्रोबेशन की रिहाई की सिफ़ारिश करके दर्जा अव्वल के मजिस्ट्रेट के पास भेज सकते हैं। जजों और हाईकोर्ट को भी अधिकार है कि वे अपील या निगरानी में मुजरिमों को प्रोबेशन पर छोड़ दें या प्रोबेशन के हुक्म को मन्सूख़ कर दें।

मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार है कि यदि वे अपराधी को प्रोबेशन अफ़सर की निगरानी में छोड़ने का हुकुम देने का निश्चय कर रहे हैं तो प्रोबेशन अफ़सर से अपराधी के चालचन, रहन सहन, घरबार और पड़ोस के विषय में जाँच करा लें और तब तक हुकुम न सुनावें जब तक प्रोबेशन अफ़सर की रिपोर्ट न आ जाय।

सरकार प्रोबेशन अफ़सरों को स्वयं नियुक्त कर सकती है या किसी सोसाइटी का प्रोबेशन अफ़सर नियुक्त करने का अधिकार स्वीकार कर सकती है। अवसर पड़ने पर अदालत किसी उपयुक्त आदमी को भी प्रोबेशन अफ़सर नियुक्त कर

सकती है। हमारे सूबे में सरकार ने स्वयं प्रोबेशन अफ़सर नियुक्त नहीं किये हैं। यू० पी० डिसचार्जड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी को प्रोबेशन अफ़सर नियुक्त करने के लिये प्रमाणित मान लिया है। प्रोबेशन अफ़सरों की योग्यता, भर्ती, वेतन और छुट्टी इत्यादि के नियम सरकार द्वारा ही स्वीकृत हैं। और जिन आदमियों को सोसाइटी नियुक्त करती है उनके लिये भी सरकार से स्वीकृति लेनी पड़ती है। प्रोबेशन अफ़सर की अवस्था २५ से ३५ वर्ष तक होनी चाहिए। उनको ग्रेजुएट होना आवश्यक है और उन्हें सूबे की भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए उनके चालचलन, योग्यता शिक्षा और प्रभाव ऐसे होने चाहिए कि उनका असर अपराधियों पर पड़े और वह सुधर जायँ। प्रोबेशन अफ़सर को देखना पड़ता है कि अपराधी शर्तनामों की शर्तों को मान रहा है या नहीं। अपराधी की सहायता भी करनी पड़ती है। उसकी शिक्षा या नौकरी का प्रबन्ध भी करना पड़ता है। उसे मन बहलाव के अच्छे साधन देने पड़ते हैं। अच्छे साथी से मेल कराना पड़ता है, नेक सलाह देनी पड़ती है, बीमारी में इलाज कराना पड़ता है और अन्य प्रकार की भी सहायता करनी पड़ती है। प्रोबेशन अफ़सर ही अपराधी का मित्र, मन्त्री और सहायक होता है। सज़ा के पहिले महीने में चार बार और फिर बहुवार अपराधी और उसके ज़ामानतदार से मिलना पड़ता है। वह अपराधी को कभी उपदेश देता है

और कभी कभी धमकी और घुड़कियाँ भी देता है और उसका उत्साह बढ़ाकर उससे शर्तनामे की शर्तों का पालन कराता है। उसे इस बात का यत्न करना पड़ता है कि अपराधी शीघ्र से शीघ्र सुधर जाय और समाज में नेकचलन होकर रहने लगे।

हमारे सूबे के आठ ज़िलों में ही अब तक प्रोबेशन अफ़सर नियुक्त हुए हैं। प्रोबेशन अफ़सर की सुपुर्दगी में अपराधियों को छोड़े जाने की दफ़ायें इन्हीं आठ ज़िलों में सरकार ने लागू की हैं। यू० पी० डिसचार्जड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी ने बहुत अच्छी तरह छाँटकर प्रोबेशन अफ़सरों को इन आठ ज़िलों में नियुक्त किया है। उनमें से सात इसी विषय पर विशेष शिक्षा लेने के लिये बम्बई भेजे गये थे। पहिली अक्टूबर १६३६ को इन सातों ने अपने काम का भार ग्रहण किया और तब से अपने अपने स्थान पर काम कर रहे हैं। आठवें प्रोबेशन अफ़सर की नियुक्ति हाल ही में हुई है।

प्रोबेशन अपने सूबे में नई वस्तु है। आरम्भ में काम में कठिनाई होती है। सब मजिस्ट्रेट प्रोबेशन को न तो ठीक तरह समझते हैं और न ठीक प्रयोग ही करते हैं। जनता की भी इस ओर अधिक रुचि नहीं है। प्रोबेशन अफ़सरों को अभी अधिक अनुभव भी नहीं है। फिर भी प्रोबेशन अफ़सरों ने थोड़े समय में बहुत अच्छा काम किया है। एक

वर्ष में लगभग २५० जवान लड़के उनकी सुपुर्दगी में छोड़े जा चुके हैं।

कुछ देशों में प्रोबेशन में दुबारा या तिबारा सज़ा पाये हुए अपराधियों को भी छोड़ा जा सकता है। परन्तु अपने सूबे के क़ानून में ऐसा नहीं है। कहीं कहीं प्रोबेशन अफ़सर की सुपुर्दगी में हर एक क़ैदी बिना अवस्था के नियम के छोड़ दिए जाते हैं। परन्तु अपने सूबे में केवल २६ वर्ष से कम अवस्था के आदमी प्रोबेशन अफ़सर की सुपुर्दगी में छोड़े जा सकते हैं।

प्रोबेशन की रिहाई से नीचे लिखे हुए लाभ होते हैं। १—अपराधी जेल जाने से बचता है और सुधारने का उसे एक और अवसर दिया जाता है। २—प्रोबेशन अफ़सर अदालत को अपराधी की ठीक दशा की सूचना देकर सहायता करता है। ३—अधिकतर लोग प्रोबेशन से सुधर जाते हैं। ४—प्रोबेशन से सरकार के खर्चे में बचत होती है।

प्रोबेशन की भलीभाँति आलोचना हुई है। आलोचकों ने नीचे लिखे हुए आक्षेप किए हैं।

१—प्रोबेशन में अपराधी का अधिक विचार किया जाता है और जिसको हानि होती है उसका बिलकुल विचार नहीं किया जाता है। २—यदि बिना ठीक जाँच किए हुए प्रोबेशन पर रिहाई होती है तो लोग दुबारा जुर्म करते हैं और माफ़ी से अनुचित लाभ उठाते हैं। ३—प्रायः यह पता

लगाना कठिन हो जाता है कि अपराधी प्रथम अपराधी है या नहीं। ४—प्रोबेशन अफ़सर प्रायः ठीक नहीं होते और प्रोबेशन निरर्थक हो जाता है।

प्रोबेशन की सफलता के लिये नीचे लिखे हुए नियमों को मानना आवश्यक है।

१—प्रोबेशन की रिहाई के पहिले भली भाँति जाँच होनी चाहिये।

२—हर अपराधी की अलग अलग जाँच करनी चाहिये और उसके सुधार चिकित्सा की योजना भी अलग तैयार करनी चाहिये।

३—प्रोबेशन की मियाद पहिले से निश्चित नहीं करनी चाहिये।

४—घर और पड़ोस ही की सहायता से अपराधियों का सुधार करना चाहिये।

५—अपराधी की जाँच पड़ताल और उसके सुधार की योजना में अपराधी की शारीरिक और मानसिक दशा का विचार रखना चाहिये।

६—अपराधी के सुधार की निश्चित योजना बनानी चाहिये और उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करना चाहिये।

७—इस सुधार की योजना में समाज के सभी साधनों से सहायता लेनी चाहिये।

८—प्रोबेशन अफ़सरों को इस काम की शिक्षा मिलनी चाहिये।

६—प्रोबेशन अफ़सरों को पर्याप्त वेतन मिलना चाहिये।

१०—अपराधी की देख-रेख में न तो शिथिलता होनी चाहिये और न बहुत दृढ़ता ही होनी चाहिये।

११—प्रोबेशन अफ़सर को सर्व प्रिय होना आवश्यक है और उसका रहन सहन ऐसा होना चाहिये कि सभी दर्जे के लोग उस तक पहुँच सकें और उसे उपयोगी आवश्यक सूचना देने में समर्थ हों।

१२—प्रोबेशन अफ़सर का दफ़तर सदर अदालत के पास ही किसी ऐसे घर में होनी चाहिये जो अदालत का भाग न हो परन्तु अदालत से दूर भी न हो।

१३—उसको ज़ीन सवारी और करने मोटर साइकिल चलाने का अभ्यास होना चाहिये।

१४—प्रोबेशन अफ़सर को आत्म रक्षार्थ बिना फ़ीस एक रिवालवर रखने का अधिकार होना चाहिये।

१५—प्रोबेशन अफ़सर को स्वस्थ होना चाहिये और उसे पैदल चलने और परिश्रम करने का अच्छा अभ्यास होना आवश्यक है।

चौबीसवां परिच्छेद

पैरोल

प्रोबेशन या आज़माइशी रिहाई और पैरोल अपराधियों सुधारने की दो नई रीतियाँ हैं। प्राय: लोगों को और पैरोल में भेद नहीं मालूम होता और प्रोबेशन तथा पैरोल शब्दों को बिना समझे अयुक्त स्थानों पर प्रयोग कर देते हैं। पैरोल में अपराधी की जेल या इसी तरह की अन्य संस्था से रिहाई की जाती है परन्तु अपराधी उसी संस्था के अधिकार में रहता है और इस बात की परीक्षा की जाती है कि वह अपराधी समाज में बिना देख-रेख के ठीक से रह सकता है या नहीं। अपराधियों के सुधारने की योजना में अन्तिम उपाय पैरोल का है और पहिला उपाय प्रोबेशन है।

पैरोल का उपाय अपने आप काम में नहीं लाया जा सकता। पैरोल जेल या रिफ़ारमेंटरी के साथ ही काम में आता है। पैरोल तभी सफल हो सकता है जब जेल या रिफ़ारमेंटरी में अपराधी को उचित शिक्षा दे दी गई हो। यदि जेल या रिफ़ारमेंटरी की शिक्षा और वहाँ के बर्ताव से अपराधी की समाज की ओर से भावना नहीं बदली है तो पैरोल

असफल हो जायगा। जेल की आबादी को कम करने का उपाय पैरोल नहीं है। स्वतंत्र समाज में अपराधी को फिर से सदा के लिये मिला देना ही पैरोल का मुख्य काम है। क़ैदी की भली भाँति जाँच पड़ताल करके उसे जेल भेजते हैं उसे वहाँ शिक्षा देते हैं और उद्योगधंधे सिखाते हैं। धीरे धीरे जेल में उसे ज़िम्मेदारी का काम देने लगते हैं। धीरे धीरे जैसे जैसे उसका चालचलन और बर्ताव सुधरने लगता है वैसे वैसे उस पर नियम ढीले होते जाते हैं और फिर उसे समाज में हिला मिला देने की चेष्टा की जाती है। यही अन्तिम उपाय पैरोल कहलाता है।

इङ्गलैंड में जब देश निकाले की सज़ा बंद की गई तो जेल क़ैदियों से भर गये। पैरोल की रीति से क़ैदियों को छोड़ कर जेल की आबादी को घटाया गया। इसे इङ्गलैंड में सबसे पहिले बर्मिंघंम जेल में कोनोची ने आरम्भ किया। पहिले बिना ठीक से जाँच के ही क़ैदियों को छोड़ दिया जाता था। क़ैदी जेल से छूट कर फिर जुर्म करते थे इसलिये पैरोल का जनता ने विरोध किया। आयरलैंड में क्रोफ़टन ने जेल की क़ैद और पूरी रिहाई के बीच में एक स्थिति निकाली जिसमें क़ैदियों को अधिक स्वतंत्रता रहती थी और यह देखा जाता था कि क़ैदी पूरी स्वतंत्रता के योग्य है या नहीं।

अमेरिका में जब क़ैदियों को बिलकुल अलग रखने का उपाय उनके सुधारने में असफल हुआ तब आयरलैंड की

देखादेखी अमेरिका में भी पैरोल का उपाय आरम्भ किया गया। १८६७ में मिस्टर वाइन्स और मिस्टर ड्वाइट ने अमेरिका की पार्लियामेंट को रिपोर्ट दी कि आयरलैंड में जो पैरोल की रीति आरम्भ की गई है वह क़ैदियों के सुधार के लिये बहुत उपयोगी है। इन्हीं लोगों के यत्न से अलमीरा रिफ़ारमेटरी खोली गई और पैरोल की रीति क़ैदियों के सुधार के लिये आरम्भ की गई।

इङ्गलैंड में क़ैदियों के सुधार के लिये पैरोल का तीन प्रकार से प्रयोग किया जाता है। १—जिन लोगों को किसी कठिन अपराध में तीन वर्ष या इससे अधिक सज़ा होती है तो उन्हें जब उनकी सज़ा का कुछ भाग कट जाता है पैरोल पर छोड़ा जाता है। पैरोल पर छूटे हुए आदमी को पुलिस को हर महीने अपनी सूचना देनी पड़ती है। २—जिन दुबारा क़ैदियों को 'प्रीवेन्टिव डिटेन्शन' एक्ट के भीतर रोका जाता है उन्हें भी पैरोल पर छोड़ दिया जाता है। ३—जो जवान लड़के बोर्स्टल में रखे जाते हैं उन्हें पैरोल पर छोड़ा जाता है। इन लड़कों का निरीक्षण बोर्स्टल एसोसिएशन के द्वारा होता है।

दुबारा क़ैदियों और बोर्स्टल से छूटे हुए जवान लड़कों का निरीक्षण सोसाइटियों द्वारा किया जाता है जो उन्हें काम वग़ैरह दिलवाने में सहायता देती है।

अमेरिका की सभी रियासतों में रिफ़ारमेंटरी और इंडसट्रियल स्कूल के लड़कों को पैरोल पर छोड़ा जाता है।

कुछ रियासतों में पैरोल क़ैदियों पर दयाभाव दिखाने का एक उपाय समझा जाता है। २० रियासतों में पैरोल समिति की राय से क़ैदियों को पैरोल पर छोड़ा जाता है। १५ रियासतों में पैरोल, जेल ही का एक अंग माना जाता है। केवल १४ रियासतों में पैरोल बोर्ड बने हैं। ६ रियासतों में इनके अवैतनिक सदस्य हैं और ३ रियासतों में यह काम एक अफ़सर के सुपुर्द है। ५ रियासतों में पैरोल बोर्ड के वैतनिक सदस्य हैं। कुछ रियासतों में छूटे हुए क़ैदियों से केवल चिट्ठी पत्री द्वारा सम्बन्ध रखा जाता है। कुछ रियासतों में क़ैदी किसी मित्र या काम के मालिक की सुपुर्दगी में ही पैरोल पर छोड़ा जाता है। १४ रियासतों में कोई पैरोल अफ़सर नहीं है। १३ रियासतों में केवल एक ही पैरोल अफ़सर है। ६ रियासतों में बहुत से पैरोल अफ़सर नौकर हैं जो पैरौल पर छूटे हुए क़ैदियों की देख भाल करते हैं। आजकल अमेरिका की जेलों में आधे से अधिक क़ैदी पैरोल पर छूटते हैं। बहुत सी रियासतों में ऐसे क़ैदी भी पैरोल पर छोड़े जाते हैं जिन्हें काले पानी की सज़ा होती है।

हमारे सूबे यू० पी० में भी क़ैदियों को पैरोल पर छोड़ा जाना आरम्भ कर दिया गया है। १९३८ में कांग्रेस गवर्नमेंट ने प्रिज़नर्स रिलीज़ आफ प्रोबेशन एक्ट बनाया। इस क़ानून में ऐसे क़ैदी जिनकी सज़ा का तीसरा भाग कट गया हो या जिन्होंने अपनी सज़ा के पाँच साल काट लिये हों और जिन्हें

कुछ विशेष जुर्मों में सज़ा न हुई हो, अपने सधर्मवाले आदमी या सोसाइटी के सुपुर्दगी में छोड़े जा सकते हैं। हर महीने कुछ लोग इस प्रकार बराबर छोड़े भी जा रहे हैं और एक आध क़ैदी को छोड़कर इन तीन चार वर्ष में किसी क़ैदी ने भी अपनी स्वतंत्रता का अनुचित उपयोग नहीं किया। क़ैदी की रिहाई कुछ शर्तों पर होती है। संरक्षक की ज़िम्मेदारी होती है कि वह देखे कि छूटा हुआ क़ैदी उन शर्तों का पालन करता है या नहीं। यदि क़ैदी उन शर्तों का पालन न करे तो संरक्षक को उसकी सूचना ज़िला मजिस्ट्रेट को देनी होती है और छूटे हुए क़ैदी को फिर जेल भेजा जा सकता है। जिन लोगों को क़त्ल, डाके या ऐसे ही किसी कठिन जुर्म में सज़ा होती है उन्हें इस प्रकार नहीं छोड़ा जा सकता। जेल से छूटने के लिये क़ैदी या वह आदमी जो उसका संरक्षक होना चाहता है जेल के सुपरिनटेनडेन्ट को उसकी रिहाई के के लिये अर्ज़ी देता है। जेल का सुपरिनटेनडेन्ट उस अर्ज़ी पर क़ैदी का जेल में कैसा चालचलन रहा है, अपनी राय कि क़ैदी पैरोल देने के योग्य है या नहीं लिखकर ज़िला मजिस्ट्रेट के पास भेजता है। ज़िला मजिस्ट्रेट अपनी और पुलिस सुपरिन-टेनडेन्ट की राय क़ैदी के छोड़े जाने के विषय में लिखता है और फिर अर्ज़ी सूबे की सरकार के पास भेज दी जाती है। सूबे की सरकार ने तीन आदमियों का एक बोर्ड बनाया है जिसके जेल विभाग के पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी, जेल मुहकमे के सेक्रे-

टरी और जेल इन्सपेक्टर जेनरल मेम्बर होते हैं। पार्लिया-मेंटरी सेक्रेटरी के न होने पर इन्सपेक्टर जेनरल और जेल सेक्रेटरी ही बोर्ड बना लेते हैं। इस बोर्ड की महीने में दो बार मीटिंग होती हैं और जेलों से आई हुई क़ैदियों की अर्ज़ियों पर विचार होता है। फिर बोर्ड क़ैदियों की रिहाई के विषय में अपनी राय सूबे की सरकार के पास भेज देता है। सूबे की सरकार जिन क़ैदियों को छोड़ना चाहती है उनकी रिहाई का हुक्म भेज देती है और यह क़ैदी उन आदमियों की सुपुर्दगी और निगरानी में छोड़ दिये जाते हैं जिन्होंने उनके संरक्षक बनने की अनुमति दी थी। डिस्चार्जड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी की ओर से नियुक्त प्रोबेशन अफ़सर भी इन क़ैदियों का संरक्षक बन सकता है। इस क़ानून में सूबे की सरकार को यह भी अधिकार है कि यदि वह चाहे तो किसी भी क़ैदी की पूरी सज़ा माफ़ कर दे या सज़ा कम कर दे या जो सज़ा की मियाद बाक़ी रह गई है उसे माफ़ कर दे और क़ैदी को कुछ शर्तों पर ज़मानत तथा मुचलके पर छोड़ दे। किन्तु यह अधिकार केवल छोटे जुर्म में थोड़ी सज़ा वाले नेक चलन क़ैदियों के पक्ष में ही ज़िला मजिस्ट्रेट के सिफ़ारिश करने पर काम में लाया जाता है। पैरोल पर हरएक क़ैदी को नहीं छोड़ना चाहिये। इसे सफल बनाने के लिये निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

१—क़ैदियों की शारीरिक तथा मानसिक दशा और उनके स्वभाव पर ध्यान रखना।

२—पैरोल पर छूटने के पहिले यह देखना आवश्यक है कि क़ैदी छूटकर नेक चलन रह सकेगा या नहीं। यह देखना आवश्यक नहीं है कि उसने कौन सा जुर्म किया था।

३—पैरोल पर उन्हीं को छोड़ना चाहिये जिनके छोड़ने से जनता यह न समझ सके कि इन पर आवश्यकता से अधिक दया दिखलाई गई है।

४—पैरोल पर छोड़ने के पहिले क़ैदी के लिये काम का प्रबन्ध करना आवश्यक है।

५—छूटने के बाद क़ैदी को उचित जगह पर बसाना चाहिये।

६—जेल या रिफ़ारमेटरी ही में क़ैदी को पैरोल के लिये तैयार कर लेना चाहिये।

७—पैरोल पर क़ैदियों को छूटने पर उनकी अच्छी तरह से निगरानी होनी चाहिये।

८—वैतनिक पैरोल बोर्ड और पैरोल अफ़सरों की नियुक्ति होनी चाहिये।

९—पैरोल बोर्ड के मेम्बरों को दंड शास्त्र और अपराध शास्त्र का ज्ञान रखना चाहिये।

१०—पैरोल अफ़सरों को इस काम की शिक्षा देनी चाहिये और उन्हें उचित संख्या में नियुक्त करना चाहिये।

११—पैरोल पर छूटे हुए क़ैदियों की निगरानी की ज़िम्मेदारी पैरोल बोर्ड पर ही होनी चाहिये।

१२—ग़ैर सरकारी और सामाजिक संस्थाओं की सहायता लेनी चाहिये ।

१३—पैरोल तब ही सफल हो सकता है जब उसके साथ में बिना मियाद की सज़ा का क़ानून भी बनाया जाय ।

पच्चीसवां परिच्छेद

बिना मियाद की सज़ा

आजकल यह मान लिया गया है कि सज़ा या जेल का मुख्य उद्देश्य मुजरिम का सुधार ही है जिससे वह सुधर कर सज़ा काटने और जेल से छूटने के बाद नेकचलन नागरिक बन जाय और अपनी जीविका ईमानदारी और मेहनत से कमा सके। यह बात फिर समझ में नहीं आती कि जब सज़ा का उद्देश्य इस प्रकार भविष्य की गोद में छिपा हुआ है तब किसी आदमी के लिये उसके जुर्म की सज़ा की मियाद पहिले ही से कैसे निर्णय की जा सकती है। जब मुलज़िम अदालत में जज या मजिस्ट्रेट के सामने आता है तो वह कैसे यह पहिले ही से जान सकता है कि यह मुलजिम कितने दिनों की सजा में सुधर जायगा। मजिस्ट्रेट या जज के लिये पहिले ही से यह जान लेना असम्भव बात है कि इतने दिनों की सज़ा मुलजिम की आदतों और चालचलन में इतना परिवर्तन कर देगी कि वह बिलकुल सुधर जाय। आदमी के भविष्य में क्या परिवर्तन होंगे इसका पता पहिले से लगा लेने की कोई विद्या नहीं है। दो आदमी या दो मुलज़िम एक से

नहीं होते। एक आदमी पर सज़ा का बहुत प्रभाव पड़ सकता है। शरम के मारे वह आत्महत्या तक कर लेता है। साथ ही दूसरे पर सज़ा का बिलकुल ही प्रभाव नहीं होता और वह उससे और अधिक ढीठ बन जाता है। एक आदमी के लिये जो काम सख्त है और कष्टदायक है दूसरे के लिये बिलकुल सरल ज्ञात होता है। आदमियों की बाह्य दशा और आन्तरिक आन्दुरूनी भावना दोनों ही का सज़ा के फल पर प्रभाव पड़ता है। और यह वस्तुएं नापी तौली नहीं जा सकती हैं।

यदि किसी डाक्टर से कहा जाय कि वह अपने अस्पताल में निमोनिया का मरीज सात दिन और प्लेग का मरीज दस दिन तक रख सकता है और उसे उतने ही दिन तक मरीज़ को अपने यहां रखने की आज्ञा मिलेगी तो लोग ऐसे हुक्म को मूर्खता ही कहेंगे। मरीज़ को अस्पताल में तब तक रखना चाहिए जब तक वह अच्छा न हो जाय। और किसी रीति से किसी मरीज़ को अस्पताल में रखे जाने की मियाद नहीं निश्चय की जा सकती है। इसीसे यह भी ज्ञात होता है कि किसी भी मुजरिम की उसके जुर्म के अनुसार पहिले से सज़ा की मियाद इस आशा से कि इतने दिनों में वह सुधर जायगा निश्चय करना उचित नहीं है। परन्तु यही नियम आज कल बर्ता जा रहा है। जुर्मों की सजा की मियादें पहिले से निश्चय कर दी जाती हैं और जेल के अधिकारियों से यह आशा की जाती है कि उसी मियाद के भीतर वह क़ैदियों को सुधार दें।

मुजरिमों को सुधारने की यह रीति अयुक्त है। सजा की मियाद जुर्मों पर नहीं बल्कि मुजरिम पर निश्चय होनी चाहिये। जब क़ैदी जेल में शिक्षा प्राप्त करले, उद्योग धंधे सीख जाय और धार्मिक और नैतिक शिक्षा का उस पर प्रभाव पड़ जाय और उसकी छूटकर नेक चलन होने की सम्भावना हो तभी उसे जेल से छोड़ना चाहिये।

कुछ विद्वानों की राय है कि सज़ा की मियाद पहले से निश्चित नहीं होनी चाहिये। आरम्भ में यदि मुलजिम पर जुर्म साबित हो तो उसे जेल बिना मियाद के भेज देना चाहिये। उसकी रिहाई तभी होनी चाहिये जब वह जेल में रहकर सुधर जाय। ऐसी दशा में जब क़ैदी की रिहाई केवल उसकी नेक-चलनी ही पर निर्भर रहेगी तब वह नेक चलन बनने का यत्न करेगा। क़ैदी को सबसे अधिक ध्यान अपनी सजा कम कराने की ओर होता है। और सजा कम कराने के लिये सब तरह का उद्योग करता है। बिना मियाद की सजा देकर क़ैदी को अपने सुधार ही पर ज़ोर देना पड़ेगा जिससे वह शीघ्र छूट सके।

अमेरिका की कुछ रियासतों में ऐसा क़ानून बना दिया गया है। परन्तु जेल के अधिकारियों को बिना मियाद के जेल में क़ैदियों को रखने का अधिकार नहीं दिया गया है। जुर्म साबित होने पर मजिस्ट्रेट सजा का कम से कम और अधिक से अधिक अवधि निश्चित कर देता है। मुजरिम को कम से कम निश्चित अवधि तक जेल में अवश्य रहना पड़ता है।

यदि उसका चाल चलन ठीक रहता है और उससे आशा की जाती है कि अब वह नेकचलन रहेगा तो वह छोड़ दिया जाता है। यदि उसका चालचलन ठीक नहीं होता तो उसे अधिक से अधिक निश्चित अवधि तक जेल में रखा जाता है। इस नियम से हानि यह है कि जेल से ऐसे मुजरिम छूट कर आ जाते हैं जिनका सुधार नहीं हो पाता और जो समाज में आकर फिर से जुर्म करते हैं।

परन्तु बिना मियाद के जेल में क़ैदी को रखने में भी दोष है। पैरोल पर छूटने की आशा से क़ैदी आपही अपना चाल चलन सुधारने का यत्न करता है। कुछ तो इस प्रकार शीघ्र सुधर भी जाते हैं। परन्तु कुछ नहीं सुधर पाते। इस कारण कोई क़ैदी तो बहुत ही शीघ्र छूट जायगा और किसी को बहुत दिनों तक जेल में रहना पड़ेगा। जब तक जेल में सुधार के इतने अच्छे उपाय न हों कि हर क़ैदी को सुधार की कुछ दिनों में आशा की जा सके तब तक क़ैदियों की रिहाई उनके सुधार ही पर निर्भर नहीं होनी चाहिये। और ऐसी दशा में जेल के अधिकारियों को क़ैदी की रिहाई का समय निश्चित करने का अधिकार देना किसी प्रकार उचित नहीं है।

छब्बीसवां परिच्छेद

छूटे हुए क़ैदियों की सहायता।

रिहाई के समय छूटे हुए क़ैदियों की सहायता के लिये किसी संस्था की आवश्यकता है यह सब ही समझने लगे हैं। जेल की शिक्षा और अनुशासन सर्वथा निष्फल हैं यदि छूटने के समय क़ैदी की सहायता न की जाय, और उसे दुनिया की कठिनाइयों और स्वतंत्रता में अकेला छोड़ दिया जाय। एक विद्वान् ने लिखा है कि क़ैदी का जीवन में सबसे भयानक समय वह नहीं होता जब उस पर सजा पड़ती है और उसे जेल जाना पड़ता है। परन्तु उसके जीवन का अधिक संकीर्ण समय वह होता है जब जेल का फाटक उसके लिये खुलता है और उसे फिर दुनियाँ में आने का अवसर मिलता है। महीनों या वर्षों तक उसे जेल में यातना भोगनी पड़ती है। अपने बालबच्चे, स्त्री, सम्बन्धी और मित्रों से बिछुड़ कर रहना पड़ता है। सब स्वादों से जिनका उसे अभ्यास हो चुका था हाथ धोना पड़ता है और समाज में उसका सम्मान और प्रतिष्ठा नष्ट हो चुकती हैं। छूटने के समय उसके पास आवश्यक ख़र्चे के लिये भी पैसा नहीं होता है। वास्तव में उसकी दशा दया के योग्य होती है।

जेल में जाकर क़ैदी बाहर की दुनिया से अलग हो जाता है और उसकी दशा चारपाई पर पड़े हुए बीमार से भी बुरी होती है। बाहर होनेवाली बातों की वार्ता उसके पास यदि पहुँचती भी है तो भी उसमें उसकी रुचि अधिक नहीं हो सकती। छूटने पर क़ैदी को पता चलता है कि उसकी क़ैद के दौरान में उसके मित्रों या सम्बन्धियों में कितने मर चुके हैं और यदि उसे पहिली ही मर्तबा सज़ा हुई है तो वह बाहर निकलने पर यह भी देखता है कि उसकी जान पहिचान वालों की दृष्टि उसकी ओर से फिर गई है और उसे यह जानकर और भी दुःख होता है।

प्रायः देखा गया है कि जेल की सज़ा क़ैदियों की शारीरिक दशा सुधार देती है परन्तु क़ैदियों की मानसिक दशा बिगड़ जाती है। जेल का सादा जीवन, नियमित समय पर उठना, बैठना, खाना, काम करना और सोना आदि सब शरीर को स्वस्थ करते हैं। परन्तु सम्बन्धियों और मित्रों से वियोग, हर छोटे से छोटे काम को नियम और क़ानून के अनुसार करना, साधारण से साधारण बात के लिये दूसरों का मुँह ताकना और बुरी संगत उनकी मानसिक शक्ति की तेज़ी को मन्द कर देती है। जेल में शासन और नियम पालन की शिक्षा तो उसे मिलती है परन्तु स्वाधीनता का भाव उसमें बिलकुल नहीं पैदा हो पाता है।

जेल से निर्लज्ज होकर क़ैदी छूटता है और छूटने पर

न तो उसको नौकरी मिलती है और न उसकी सहायता के लिये मित्र ही उपस्थित होते हैं।

यदि इस समय छूटे हुए क़ैदी की सहायता नहीं की जायगी तो वह फिर जुर्म करने लगेगा। एक तो उसके पास आवश्यक ख़र्च के लिये पैसा नहीं होता और उसे अपने ख़र्च के लिये रुपए की आवश्यकता होती है। भद्र और सम्मानित आदमी उससे घृणा करते हैं और इस कारण वह फिर अपने ही जैसे आदमियों से मिलने जुलने लगता है और फल यह होता है कि वह दुबारा जुर्म करके जेल जाता है और सदा के लिये समाज पर एक भार बन जाता है। जब जेल में रहता है तो समाज के रुपए ही से वह जेल में रक्खा जाता है और जब वह छूटता है तो फिर समाज ही की कुछ हानि करके दुबारा जेल जाता है।

छूटने के समय क़ैदी की सहायता करना बहुत आवश्यक है। इंगलैंड में १७९२ में क़ानून बना था जिसमें पादरियों को अधिकार दिया गया था कि वे क़ैदियों की सहायता करें। १८२३ के क़ानून के अनुसार जो क़ैदी नेकचलन होकर जेल से छूटे, उसे छूटने के समय कपड़ों के अतिरिक्त बीस शिलिंग तक नक़द दिया जा सकता है। काम करने के औज़ार भी क़ैदी को दिये जा सकते हैं। १८६२ के क़ानून के अनुसार डिसचार्ज्ड प्रिज़नर्स एड सोसाइटियों को सरकार ने स्वीकृत कर लिया और उसीके द्वारा क़ैदियों की मदद करने का हुक्म

हुआ। जस्टिसेज़ आफ़ दी पीस को अधिकार दिया गया कि वे इन सोसाइटियों के द्वारा फ़ी क़ैदी दो पाउण्ड तक की सहायता दे सकते हैं। १८७७ के जेल क़ानून में यही अधिकार प्रिज़न कमिश्नरों को दे दिया गया। १८७८ में २६ सोसाइटियां क़ैदियों की सहायता का काम कर रही थी। प्रिज़न कमिश्नरों ने १८८५ में यत्न करके ६३ सोसाइटियाँ खोल दीं। सरकार की ओर से छूटे हुए क़ैदियों की सहायता दो नियमों पर होती है। १—जेल से क़ैदियों को इनाम के रूप में जो रुपया मिलता है वह जेल के नियम के ही अनुसार मिलता है। इस रुपये के अतिरिक्त क़ैदियों की सहायता के लिये सरकार रुपया देती है। २—ग़ैर सरकारी सहायता जो इस काम में मिलती है उसकी अनुसार सरकार भी सहायता करती है।

१८६४ में ग्लेडस्टोन कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि हर एक जेल के साथ एक या अधिक क़ैदियों की सहायता करने वाली सोसाइटियाँ स्थापित हैं और कुछ प्रशंसनीय काम भी कर रही हैं। परन्तु उनके काम करने के न तो कोई सिद्धांत ही हैं और न उनके नियम ही एक प्रकार के हैं। उन सोसाइटियों का नियम पूर्वक संगठन भी नहीं है जिससे उनकी दी हुई सहायता के फल का पता चल सके। कमेटी ने बलपूर्वक कहा कि यह सोसाइटियाँ ग़ैर सरकारी ही रहें और इसमें अवैतनिक लोग ही काम करें परन्तु इन सोसाइटियों का सम्बन्ध एक सदर दफ़्तर से होना चाहिये जिससे इनके काम

में नियम तथा क्रम स्थापित हो जाय। लन्दन में एक कानफ्रेंस की गई जिसमें निश्चय किया गया कि सरकार द्वारा प्राप्त रुपया क़ैदियों को किस प्रकार बाँटा जाय जिससे उन्हें अधिक से अधिक सहायता पहुँच सके। जो कमेटियाँ केवल नाम ही के लिये थीं और काम नहीं करती थीं उन्हें दृढ़ बनाया गया। सोसाइटी के एजेंटों को क़ैदियों से जेल के भीतर मिलने का अधिकार दिया गया। अब हर जेल के साथ एक कमेटी है। इस कमेटी का प्रबन्ध मंत्री और खज़ांची के द्वारा होता है। कमेटी के वैतनिक नौकर होते हैं जो एजेंट कहलाते हैं। सरकार ने कमेटी के काम करने के नियम बनाये हैं कमेटी को उनका पालन करना पड़ता है। १९३१ में तय हुआ कि सोसाइटी को फ़ी क़ैदी दो शिलिंग की सहायता मिले। इस सहायता के अतिरिक्त १५०० पौंड की और सहायता मिलती है। १९१८ में सेंट्रल डिसचार्ज्ड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी खोली गई और अब यही सोसाइटी क़ैदियों की सहायता का प्रबन्ध करती है। सन् १९२५ में एक कमेटी छूटे हुए क़ैदियों को छूटने पर सहायता और काम दिलाने के लिये बनाई गई है।

हिन्दुस्थान में १८७७ की जेल कमेटी ने क़ैदियों की सहायता के लिये सोसाइटी खोलने की राय नहीं दी थी। उनका कहना था कि हिन्दुस्थान में क़ैदी को रिहाई के पीछे कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ती है। दूसरी बात उन्होंने यह कही थी कि हिन्दुस्थान के लोग क़ैदियों की भलाई में कोई भाग नहीं

लेंगे। १६२० की जेल कमेटी ने दोनों ही बातों को अयुक्त माना। उन्होंने लिखा कि क़ैदियों को छूटने के समय बहुत कष्ट और कठिनाई उठानी पड़ती है और देश में बहुत से ऐसे लोग हैं जो क़ैदियों की सहायता के काम में रुचि रखेंगे।

हिन्दुस्थान में सबसे पहिले हमारे ही सूबे में १८६३ में डिसचार्ज्ड प्रीजनर्स एड सोसाइटी खोली गई। बाद को कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, बर्मा और पंजाब में भी ऐसी कमेटियाँ खुलीं। यू० पी० कमेटी ने ५०,००० रु० भी जमा किया था। परन्तु इस कमेटी ने काम अधिक नहीं किया। ५०,००० रु० जेलों के इन्सपेक्टर जनरल के पास रहता है। और इसके सूद से पहिले जेल ही की ओर से छूटे हुए क़ैदियों की सहायता की जाती थी। यह सहायता कपड़े आदि के रूप में होती थी।

कांग्रेस गवर्नमेंट के समय से हमारे सूबे में भी डिसचार्ज्ड प्रिज़नर्स एड कमेटियों का फिर से संगठन किया गया। इसकी शाखायें हर ज़िले में खोली गई। लखनऊ में एक सेंट्रल कमेटी खोली गई। सेंट्रल कमेटी के चेयरमैन जेल विभाग के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बनाये गये। जेल विभाग के सेक्रेटरी को मंत्री और जेलों के इंसपेक्टर जनरल को ख़ज़ांची बनाया गया। सरकार के अन्य मुहकमों के अफ़सर उसके मेम्बर बनाये गये। एसेम्बली और कौंसिल के प्रतिनिधि और ग़ैर सरकारी चुने हुए मेम्बर भी सोसाइटी के मेम्बर हुए। कांग्रेस

गवर्नमेंट के इस्तीफ़े पर सोसाइटी के विधान में परिवर्तन किया गया और बाबू गोपीनाथ श्रीवास्तव जो पहिले पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी की दशा में चेयरमैन थे फिर से चेयरमैन चुने गये। डिसचार्ज्ड प्रिज़नर्स एड सोसाइटी की हर ज़िले में शाखायें खोली गई हैं। इन कमेटियों का चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट होता है। ख़ज़ांची जेल सुपरिनटेनडेंट होता है। पुलिस सुपरिनटेनडेंट, म्यूनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और ग्राम सुधार कमेटी के चेयरमैन, एसेम्बली, कौंसिल के सदस्य और जेलों के ग़ैर सरकारी निरीक्षक कमेटी के सदस्य होते हैं। अन्य आदमी भी वार्षिक चन्दा देकर सदस्य हो सकते हैं। मंत्री चुना जाता है जो प्रायः ग़ैर सरकारी होता है। कमेटी का प्रबन्ध एक प्रबन्धक कमेटी करती है। सोसाइटी की ओर से यदि कोई प्रोबेशन अफ़सर नियत किया जाता है तो वह कमेटी का उपमंत्री होता है और दफ़्तर का प्रबन्ध उसके द्वारा होता है।

सेंट्रल कमेटी को सरकार सहायता देती है। म्यूनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और कोर्टआफ़ वार्डस डिस्ट्रिक्ट कमेटियों को सहायता दे सकते हैं और देते भी हैं। सरकार ने नियम बना दिया है कि जेलों के ग़ैर सरकारी निरीक्षक सोसाइटी ही की सिफ़ारिश पर चुने जावेंगे। सरकार ने प्रथम अपराधी क़ानून के अन्दर, प्रोबेशन अफ़सरों को नियत करने के लिये सोसाइटी को उचित संस्था मान लिया है। बोर्स्टल एक्ट

और प्रिज़नर्स रिलीज़ आन प्रोबेशन एक्ट के अन्दर जो लोग रिहा होंगे उनके लिये यह कमेटी प्रोबेशन अफ़सर नियुक्त कर सकती है।

इस कमेटी का काम छूटने के समय क़ैदियों की सहायता करना है। सबसे बड़ी सहायता जो क़ैदी को मिल सकती है वह यह होती है कि उसे कोई ऐसा मित्र मिल जाय जो उसके दुख दर्द को सुने और कष्ट में उसकी सहायता करे तथा नेक सलाह दे। इस कमेटी को जेल, रिफ़ारमेटरी और बोर्स्टल के अधिकारियों से मिलकर काम करना चाहिये। सोसाइटी को अपने काम में जात पांत, धर्म इत्यादि का भेद न करना चाहिये। हर धर्म और जाति के क़ैदियों की बिना भेदभाव के सहायता करनी चाहिये। सोसाइटी के एजेन्टों को जेल में जाकर रिहाई से एक महीना पहिले क़ैदियों से अलग बातचीत करनी चाहिये। क़ैदी के छूटने पर उसका इरादा क्या है, क्या काम करना चाहता है, उसे क्या भय है यह सब सुनना चाहिये। मुलाक़ात के बाद उसके सम्बन्धियों और मित्रों से मिलकर पता लगाना चाहिये कि क़ैदी कहाँ तक सच कहता है। रिहाई पर यदि हो सके तो उसकी नौकरी का प्रबन्ध करना चाहिये। यदि क़ैदी दूसरे ज़िले को जाना चाहता हो तो वहाँ की सोसाइटी को उसकी सहायता के लिये पत्र भेजना चाहिये, जिस दिन क़ैदी जेल से छूटे उसे उस दिन जेल के फाटक पर मिले और यदि उसे पहिनने के कपड़े की आवश्य-

कता हो तो उसके लिये कपड़े का प्रबन्ध करे। जहाँ तक हो सके क़ैदी को सोसाइटी के प्रभाव में ले आये और उसे अपने पुराने साथियों के चंगुल में न फँसने दे जिनके कारण उसे जेल जाना पड़ा था। क़ैदी को नौकरी दिलवाने या काम से लगाने का यत्न किया जाय और जब तक उसे काम न मिले तब तक उसके रहने और खाने का प्रबन्ध कर दिया जाय।

छूटे हुए क़ैदियों के लिये नौकरी ढूँढना सहज काम नहीं है। हज़ारों की संख्या में ईमानदार मज़दूर बेकार पड़े हैं। फिर भी मिलों, कारखानों और रेलवे इत्यादि में यत्न करने पर नौकरी मिल सकती है। प्रायः नौकर रखने वालों को क़ैदियों को नौकर रखने में हिचक होती है। परन्तु ऐसे अवसरों पर अच्छे क़ैदियों की ज़मानत सोसाइटी को करनी चाहिये। क़ैदियों को स्वयं भी नौकरी ढूँढने का यत्न करना चाहिये। जो नौकरी उन्हें दिलवाई जाती है उसे वे प्रायः छोड़ देते हैं। स्वयं ढूंढी हुई नौकरी पर जमकर काम करते हैं। जो क़ैदी कुछ धंधा जानते हैं उन्हें उनके पेशे के औज़ार खरीद देने चाहिये। बाहर जाने वालों को रेल का किराया दे देना चाहिये। पहिनने के कपड़े या जूते भी सहायता में दिये जा सकते हैं।

जिन क़ैदियों का घर नहीं है उनके रहने और खाने का थोड़े दिनों के लिये प्रबन्ध सोसाइटियों को करना चाहिये। छूटे हुए क़ैदियों के टिकने के लिए मकान होना बहुत आवश्यक है जिसमें थोड़े दिनों के लिये ऐसे क़ैदी टिक सकें जो जेल

से छूटने के बाद कहीं जा नहीं सकते हैं। इस बात पर भी बहुत मतभेद है कि इस प्रकार के मकान खोले जायँ या नहीं। कुछ लोगों का विचार है कि ऐसे मकान में पुराने क़ैदी फिर मिलेंगे और नये नये जुर्म करने की योजना करेंगे। परन्तु यदि क़ैदियों को थोड़े ही दिनों के लिये उनमें रहने दिया जाय तो हानि नहीं है। बम्बई की कमेटी ने इस प्रकार का घर खोला है और अब अपने सूबे में भी कानपुर की कमेटी ने एक घर क़ैदियों के लिये खोला है।

क़ैदियों को काम दिलाने के बाद उनसे सम्बन्ध रखना बहुत आवश्यक है। प्रायः क़ैदियों का काम छूट जाता है या वे बीमार हो जाते हैं। ऐसे अवसर पर उनकी सहायता करनी चाहिये। लगातार काम में उनकी रुचि पैदा करनी चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो इस बात का भय लगा ही रहेगा कि कहीं वह क़ैदी अपने जेल के पुराने साथियों में फंसकर फिर कोई जुर्म करके जेल न चला जाय। क़ैदियों के घरेलू झगड़े और झंझटों को भी सोसाइटी के एजेन्टों को निपटाना चाहिये। यदि हो सके तो जब क़ैदी जेल में हो तब उसके आश्रितों को भी सहायता देनी चाहिये।

हर एक क़ैदी को रिहाई पर सहायता की आवश्यकता नहीं होती। हमारे देश में अधिकतर जो लोग जेल जाते हैं वह देहातों के रहने वाले होते हैं और खेती बारी करते हैं। उनको समाज में फिर से मिला देना बहुत कठिन नहीं होता।

आसपास में दो चार गावों के बिरादरी के लोग ही उनका समाज हैं और बिरादरी को खाना देकर ऐसे लोग फिर समाज में मिल जाते हैं। जो लोग कोई धंधा जानते हैं, जैसे बढ़ई, कुम्हार, लुहार, मोची वह भी जेल से छूटने पर अपने धंधे में लग जाते हैं और उन्हें समाज में मिलने में अधिक कठिनाई नहीं होती। जिन लोगों के सम्बन्धी और मित्र होते हैं और वे सहायता के लिये तैयार होते हैं उन्हें भी सोसाइटी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। कुछ लोग अपने ही पैरों पर खड़े होना चाहते हैं। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिन्हें जुर्म करने ही में अच्छा लगता है। उनकी सहायता करना निष्फल है।

राजनैतिक क़ैदियों को जेल से छूटने पर कोई अपयश नहीं उठाना पड़ता और प्रायः जेल से छूटने पर उनका सम्मान बढ़ जाता है। इस कारण उन्हें वह कठिनाई नहीं उठानी पड़ती जो साधारण क़ैदियों को उठानी पड़ती है।

कुछ ऐसे भी क़ैदी होते है जिनकी मानसिक दशा ठीक नहीं होती या कम बुद्धि वाले होते हैं। इनके लिये नौकरी लगाना असम्भव है। क्योंकि यह कोई काम ठीक से नहीं कर सकते। इनके मन का विकास इतना कम भी नहीं होता जो वे लोग पागल प्रमाणित कर दिये जायँ। इनकी सहायता करना निष्फल है। इनको रखने के लिये अलग प्रबन्ध होना चाहिये जहाँ इनकी चिकित्सा की जा सके। कुछ लोगों के

इस प्रकार का शारीरिक कज होता है कि जिसके कारण वे कुछ काम नहीं कर सकते। उनके भी रखने का अलग प्रवन्ध होना चाहिये।

कुछ क़ैदी इतने बूढ़े हो जाते हैं कि बुढ़ापे के कारण कोई काम नहीं कर पाते। जेल उनके लिये स्वर्ग के बराबर है। जेल ही में उन्हें खाना कपड़ा और रहने के लिये स्थान मिलता है और काम भी साधारण करना पड़ता है। यदि वे छोड़ दिये जाते हैं तो यत्न कर के शीघ्र ही जुर्म करते हैं कि वे फिर जेल में आ जायँ। इस प्रकार उनका जेल में सदा आना जाना लगा रहता है। सोसाइटी ऐसे क़ैदियों को भी अधिक सहायता नहीं दे सकती।

हमारे देश में औरतों की संख्या जो जेल जाती हैं बहुत कम है और उन्हें छूटने पर सोसाइटी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु जिन्हें सहायता की आवश्यकता हो तो उन्हें अवश्य सहायता मिलनी चाहिये।

परन्तु कुछ क़ैदी ऐसे हैं जिन्हें सहायता की बहुत आवश्यकता होती है। पढ़े-लिखे क़ैदी जो सरकार या कम्पनियों की नौकरी में थे उन्हें जेल से छूट कर साधारण नौकरी भी मिलना कठिन हो जाती है। ऐसे क़ैदियों को भरसक सहायता मिलनी चाहिये। पढ़े लिखे लोगों की हमारे देश में संख्या कम है और पढ़े-लिखे लोग बहुत ही कम जेल जाते हैं। ऐसे लोग यदि जेल में कोई काम सीख लें तो उन्हें काम मिलने में कम कठिनाई होती है।

सहायता की सबसे अधिक आवश्यकता जवान लड़कों और कम अवस्था के आदमियों को है। ऐसे लोगों की पूरी सहायता की जानी चाहिए। जवान लड़कों से ही दुबारा क़ैदी और पेशेवर मुजरिम बनते हैं। यदि पहिली ही सज़ा के पीछे किसी भी मुजरिम का सुधार किया जाय तो सदा के लिये एक व्यक्ति सुधर जाता है और एक पेशेवर मुजरिम से समाज की रक्षा हो जाती है। जेल से छूटने पर सहायता करके नौकरी दिलवा कर इन लड़कों को ईमानदारी के रास्ते पर लगाना आवश्यक है।

क़ैदियों की सहायता करने से सरकार को भी आर्थिक लाभ होता है। हमारे सूबे में ३०,००० के लगभग क़ैदी हैं। उनमें २० फ़ी सैकड़ा दुबारे है। हर क़ैदी पर ७० या ७५ रु० हर वर्ष खर्च करना पड़ता है। यदि ठीक से काम किया जाय और क़ैदियों की सहायता की जाय तो दुबारा क़ैदियों की संख्या बहुत कम की जा सकती है। इससे सरकार को जेल के खर्चे में बचत होगी और समाज को उतने ही मुजरिमों से भय कम हो जायगा।